THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

जिनाय नमः

श्री जैन नाटकीय रामायण

(अर्थात)

श्री रविषेणाचार्य कृत श्री पद्मपुराणजी का निचोड़

लेखक व प्रकाशक

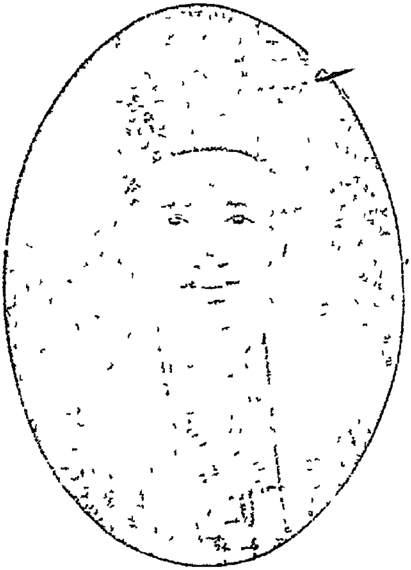

श्री कुँ० विमलप्रकाश जैन अग्रवाल
धामपुर (बिजनौर) निवासी हाल अजमेर

लेखक की बिना आज्ञा प्रकाशित करना मना है ॥

प्रथम संसकरण १००० } दीपावली वीर नि० सं० २४६२ अक्टुबर सन् १९३५ { न्यौछावर १=) मात्र

पुस्तक मिलने का पता:—ला० छुन्नामलजी जैन मदारगेट अजमेर

भूमिका।

प्रिय पाठक गण,

मुझे अत्यन्त हर्ष है कि मैं आपके सन्मुख अत्यन्त परिश्रमके पश्चात ये पुस्तक रखने में सफल हुआ हूं। मैंने इसमें जो भी रचा है वो सब श्री १०८ श्री रविषेण आचार्य प्रणीत श्री पद्मपुराणजी के आधार पर। यद्यपि यह ग्रन्थ बहुत बड़ा और विस्तार पूर्वक है किन्तु फिर भी आज कल की आवश्यक्ता के अनुसार ही उसमें से चुन चुनकर लोगों के हृदय से असत्यता को दूर करने और सत्य वृतांत का प्रकाश करने के लिये अत्यन्त संक्षेप से रचना की है। इसमें और तो सब बातों पर उन्हीं पर प्रकाश डाला गया है जो आज कल प्रचलित हैं। विशेष बातें केवल इतनी ही दिखाई गई हैं जो कि प्रचलित नहीं हैं किंतु उनकी आवश्यक्ता थी, जैसे रावण का जन्म उसका राज्य तथा कैलाश पर्वत का उठाना यज्ञों की उत्पत्ती कब और किस प्रकार हुई, हनुमान का जन्म और रावण से उसका क्या सम्बन्ध था, जनक की राजधानी पर म्लेच्छों का उत्तर की ओर से हमला, लव कुश का जन्म सीता की अग्नि परिक्षा।

इसमें पांचों भागों में पांच नकल रखी गई हैं सो वो भी सुधार की दृष्टी से हैं किसी द्वेष वश नहीं हैं। फिर भी यदि इस पुस्तक में की कोई बात चुभने वाली हो तो क्षमा करें।

प्रार्थी:—विमल

समर्पण

श्रीमान् माननीय फूपाजी, (ला० मुसद्दीलालजी सर्राफ किरतपुर बिजनौर) आपने मेरे प्रति जो जो उपकार किये हैं मेरे लिये भांति भांति के कष्ट सहे हैं तथा ज्ञान की प्राप्ती कराई है जिससे मैं आज इस अवस्था में आ सका हूं। उसका मैं अत्यन्त आभारी हूं और ऋणी हूं। यदि मैं उस ऋण से छूटना चाहूं तो जन्म जमान्तर में भी नहीं छुट सकता। किन्तु मुझे आपने इस प्रकार उन्नत बनाया, उसके फल स्वरूप मैं अपनी तुच्छ बुद्धी की इस कृति को आपके कर कमलों में समर्पण करता हूं। आशा है आप इसे हृदय से अपनायेंगे।

आपके उपकारों के भार से नम्रीभूतः—
'विमल'

साथ ही साथ मैं (श्री प्रद्युम्न कुमारजी रईस सहारनपुर पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस, सेठ मदन-मोहनजी जैन उज्जैन तथा श्री रा० ब० द्वारकाप्रसादजी नहरौर) इन सज्जनों के उपकार का आभारी हूं। आप सज्जनों ने मुझे ज्ञान प्राप्त करने में जिस प्रकार समय समय पर सहयोग दिया है, उसे मैं अपने सारे जीवन में नहीं भूल सकता। मैं आशा करता हूं आप सज्जन वृन्द अपने इस बालक की टूटी फूटी भाषा को पढ़कर हर्ष मनायेंगे

धन्यवाद

सब से प्रथम धन्यवाद तो उस देवाधिदेव वीतराग भगवान को है जिसका स्मरण करके प्रारंभ करने से संपूर्णता को प्राप्त हुई।

द्वितिय धन्यवाद पूज्य पिताजी (बा० खुन्नामलजी रिटायर्ड गुड्स क्लर्क) का है। जिनकी छत्र छाया में मैंने यह पुस्तक लिखी और प्रकाशित की।

तृतीय धन्यवाद श्री डा० गुलाबचन्दजी पाटनी का है जिन्होंने मुझे इस पुस्तक के लिखते समय उत्साहित किया और जो सदा मुझे उन्नत मार्ग पर लगाने के इच्छुक रहते हैं।

चतुर्थ धन्यवाद बा० बिरधीचन्द्रजी रारा (जिन्होंने गानोंका संशोधन किया) तथा पं० बनारसीदासजी प्रतिष्ठाचार्य का है। आप सज्जनोंने अपना अमूल्य समय देकर यह देखा कि कहीं धर्म विरुद्ध बात तो नहीं आई है।

इसमें दूसरे और पांचवें भाग में श्रीमान ज्योतिप्रसादजी की कर्ता खण्डन लावनी और द्यानतरायजी का सीता का भजन ये दो चीजें रखी गई हैं इसके लिये उक्त सज्जनों को धन्यवाद है।

संशोधन में जो अशुद्धियां रह गई हैं उनके लिये मुझे दुख है, पाठक गण मुझे उसके लिये क्षमा करें और शुद्ध करलें।

मुझे बना दो।

केकसी—नहीं बेटी तू नहीं मैंही बनूंगी मेरी लाल, (उसे उठाकर उसका मुँह चूमती है) मेरी प्यारी चन्द्रनखा।

कुम्भकर्ण—वाह जी वाह तुम तो इसे ही गोदी चढाओ। हमभी गोदी चढेंगे।

रावण—तो मैं भी गोदी चढूंगा।

विभीषण—देखो भाई साहब आप सबसे बडे हो। आप गोदी मत चढो। माताजी को कष्ट होगा।

रावण—(विभीषण को गोदी लेकर) मेरे प्यारे विभीषण तुम बडे धर्मात्मा हो। (कुम्भकर्ण को मां से लेकर) आओ कुम्भकर्ण तुम भी मेरी गोदी आ जाओ, माताजी को कष्ट मतदो।

(इतने ही में ऊपर से बाजों की आवाजें आती हैं बहुत हल्ला सुनाई देता है, आकाश मार्ग से सेना जा रही है रावण के सिवाय तीनों माता से चिपट जाते हैं। रावण दृढता से ऊपर को देखता रहता है, वह अभी केवल बच्चा ही है। धीरे धीरे सब बन्द होजाता है।)

रावण—माताजी, यह आकाश मार्ग से किसकी सेना जा रही है।

केकसी—बेटा ये वैश्रवण की सेना है। जो तेरी मोसी का बेटा है।

रावण—माता, यह मालूम होता है अभिमान से चूर्ण हो रहा है ।

केकसी—हां पुत्र यह बहुत पराक्रमी है । सब विद्यायें इसको सिद्ध हैं यह सब पृथ्वी पर श्रेष्ठ है । राजा इन्द्र का लोक पाल है । इन्द्र ने तुम्हारे दादा के बड़े भाई का युद्ध में हरा कर उन्हें कुल परम्परा से चली आई राजधानी लँका से निकाला और इसको वहां रक्खा है ! इसी लका के लिये तुम्हारे पिता अनेक उपाय करते हैं किन्तु वह प्राप्त नहीं कर सके । हम लोग अपने स्थान से भृष्ट हैं और अनेक प्रकार का चिन्तायें सहते हुये इधर उधर फिरते हैं । पुत्र हमें वह दिन देखने की अभिलाषा है जब तुम अपने दोनों भाइयों सहित अपना यश जग में फैला कर वैश्रवण को और अभिमानी राजा इन्द्र को हरा कर लँकापुरी में फिर से सुख पूर्वक राज्य करोगे । अपने बड़ों की सम्पत्ति को प्राप्त करोगे ।

विभीषण—माता आप इतने दुख भरे बचन क्यों बोलती हो आपने वीर पुत्रोंको जन्म दिया है । हमारे बड़े भाई साहब रावण का पराक्रम कुछ कम नहीं है । इनकी एक ही फटकार से वह लंका को छोड़ कर भाग जायगा ।

रावण—हे माता मैं गर्वके बचन नहीं बोलता, किंतु तो भी इतना अवश्य करूँगा कि पृथ्वी पर के सारे विद्याधर भी आदि

एकत्र होकर मुझसे युद्ध करें तो हार ही मान कर जायेंगे। किन्तु हमारे कुल में पहले विद्या साधने की रीति चली आई है। इस लिये पहले मैं विद्या साधने के लिये दोनों भाइयों को साथ लेकर बन में जाता हूँ।

केकसी—जाओ, पुत्र तुम सबसे पहले अपने कुल की रीत निभाओ।

(तीनों पुत्र माता को नमस्कार करके जाते हैं)

आओ बेटी चन्द्रनखा तुम्हारे पिता के पास चलें।

(दोनों चली जाती हैं।)

दृश्य समाप्त।

अँक प्रथम—दृश्य छटा

(भयानक बनमें तीनों भाई ध्यान में लीन हैं। नाना प्रकार के डरावने शब्द हो रहे हैं। भूत पिशाच आदि आ आ कर नाचते हैं। उनका ध्यान नहीं डिगता फिर एक देव अपनी दो स्त्रियों सहित आता है।)

१ स्त्री—अहा! ये क्या ही सुन्दर युवक हैं। इनकी ये अवस्था खेल कूद के योग्य है। बन में बैठकर तप करने योग्य नहीं है।

२ स्त्री—इनके माता पिता कैसे निर्दई हैं जो उन्होंने ऐसे युवकों को बनमें जाकर तप करने की आज्ञा दी।

१ स्त्री—(पास में जाकर) हे युवकों ! ये अवस्था तुम्हारे लिये तप करने की नहीं है। उठो ! अभी कुछ नहीं बिगडा है, तुम लोग अपने घर जाओ।

२ स्त्री—क्यों तुम लोग अपने इन कोमल शरीरों को कष्ट दे रहे हो, बोलो ?

१ स्त्री—अरे, यह तो बिल्कुल पत्थर की शिलाके समान अचल हैं।

२ स्त्री—क्या किसी कारीगरने लकडी के खिलौने बना कर तो नहीं रख दिये जिससे स्त्रियां आयें और इन्हीं पर मुग्ध हों।

देव—नहीं ये रत्नश्रवा के तीनों पुत्र हैं। यहां पर विद्या साधने के लिये आये हुवे हैं। ये मूर्ख हैं। इनकी बालक बुद्धि है। मैं अभी अपने सेवकों को बुलाकर इन्हीं का ध्यान डिगाता हूँ।

(ताली बजाता है, कुछ देव आकर उपस्थित होते हैं।)

देखो जिस प्रकार भी बने तुम इन्हों का ध्यान डिगाओ।

राक्षस—जो आज्ञा महाराज।

(देव अपनी दोनों स्त्रियों सहित एक ओर खड़ा होजाता है। वह तीनों निश्चल बैठे हैं। देव लोग नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हैं। उनके कानों में बहुत भयावने

बाप—लेकिन राजमल तो बहुत छोटा है वह तो अभी चौदह का ही है। और उसके पास जाते भी शर्माता है।

मां—बस एकही बात पकडली, आज कल के छोरे आस्मान से बातें करते हैं। आपके सामने वह ऐसा ढोंग बनाता है जिससे आप उसे सीधा समझें। वैसे वह बडा गुन्ना है। तुम्हारे हमारे सब के कान काटले।

बाप—काटता होगा, मुझे तो ताज्जुब होता है कि गर्भ कैसे रह गया। अरे याद आया, गर्भ नहीं होगा। वैसे ही पेट में खराबी होगई होगी सो महावारी बन्द होगई है। किसी को दिखाया भी ?

मां—तुम्हें तो सिवाय वहम के और ताज्जुब के दूसरा काम ही नहीं, दिखाया कैसे नहीं, दाईने तीन महीने का बताया है।

बाप—अच्छा जाओ (इतने लोगों के सामने मत कहो वरना ये हंसी उडायेंगे)

(चली जाती है)

राजमल—(आकर) पिताजी, क्या सोच रहे हो, खुशी मनाओ। अबतो बहू के छोरा होगा! मैं उसे खूब खिलाया करूँगा।

बाप—(चपत मार कर) छोरा होगा २ लगाई, चौदह बरस का बैल हो गया अभी तक खाक की भी अकल नहीं आई।

(राजमल रोता है। बाप मनाता है। राजमल उठ जाता है। चुप हो जाता है)

राजमल—आपने मुझे क्यों मारा?

बाप—बेटा मैंने कोई दूसरा समझा था। अच्छा तुम अब गेंद नहीं खेलते? खूब खेला करो खाया करो, तुम्हें यहां किस बात की कमी है।

राजमल—आप मुझे नई गेंद लिवा देना, तब मैं म्युनिसपिल्टी के ग्राउन्ड में खेलने जाया करूँगा।

बाप—वहां जाने की क्या जरूरत है, तुम्हारे बैल खाने की जमीन ही गेंद खेलने को काफी है।

राजमल—नहीं पिताजी यहां नहीं। यहां तो मेरी गेंद उड़न छू होजाती है।

बाप—बेटा, उड़न छू किसे कहते हैं।

राजमल—वाह, पिताजी आप उड़न छू का भी मतलब नहीं समझते।

बाप—नहीं बेटा तू बतलादे क्या बात है।

राजमल—देखो पिताजी सुनो, एक दिन मैं गेंद खेल रहा था सो, वह दूसरी तरफ जाकर भुस की कोठरी में जा पड़ी, जब मैं वहां पर लेने गया तो बहूजी और कल्लू वहां पड़े हुवे थे। मैंने कल्लू से पूछा कि यहां गेंद आई है? उसने कहा कि

यहां गेंद नहीं आई। अगर आती भी है तो उड़न छू होजाती है। इस लिये अब कभी भी यहाँ गेंद लेने न आना। इस लिये पिताजी यहाँ पर खेलकर कौन अपना नुकसान करे।

पिताजी—(आश्चर्य से) कौन कल्लू!

राजमल—वही काला कल्लू जो बैलोंको भुस खिलाता है।

पिताजी—अच्छी बात है। मैं अभी जाकर उसे अपने घर से निकालता हूँ।

(चला जाता है, राजमल रह जाता है)

राजमल—अहाजी अब तो गेंद आयगी।

बहू—(आकर) प्राणनाथ!

राजमल—जाजा, फिर गेंद का नाम सुनकर उडन छू करने आगई।

बहू—नहीं मैं गेंद उडन छू नहीं करूँगी। मैं तुमसे प्यार करूँगी।

राजमल—अच्छा प्यार करेगी तो पहले मुझे गोदी चढाले।

बहू—अब तुम बडे हो गये। अब मैं गोदी नहीं चढाती,

राजमल—बडा मैं ही थोडे ही हो गया तू भी तो हो गई। और तेरे तो अब छोरा होगा, मुझे खिलाने को दिया करेगी?

बहू—खिलाने को क्या वह तो तुम्हारा ही होगा।

राजमल—कहीं लडकों के भी छोरे होते हैं? बावली कहीं की।

बहू—प्राणनाथ, आप नाराज न हों, मैं तो आपकी सती स्त्री हूँ।

राजमल—जैसी सीता सती थी वैसी ही है?

बहू—इसमें क्या कुछ संदेह है?

राजमल—ठीक रामचन्द्रजी कालेथे! उनकी स्त्री सीता सती थी। लक्ष्मण उनका सेवा किया करते थे। ऐसे ही हमारे यहां कल्लू है उसकी स्त्री तुम हो। और तुम अपने को सती कहती हो, तब तो मुझे तुम्हारी पूजा करनी चाहिये। क्यों कि किताबों में लिखा है कि सती की सेवा करना परम धर्म है।

बहू—तुम तो मेरी हँसी उड़ाते हो! कैसा कल्लू! कल्लू को मैं क्या जानूं।

राजमल—पिताजी कल्लू को घर से निकाल रहे हैं तुम्हें भी उनका वन के लिये साथ करना चाहिये। मैं तो उसी के साथ जाऊँगा।

(चला जाता है। बहू को सोच होजाता है)

बहू—हाय मेरे माता पिता ने मुझे इससे व्याह कर मेरी तकदीर फोड दी। मेरी बहन शान्ती की सगाई की थी, उसका

दूल्हा उससे चार बरस बडा था। वह सुख से अपने पती के साथ प्रेम पूर्वक रहती है। यहां पर आकर बेचारे कल्लू का सहारा था। उसको भी अब ये निकाल रहे हैं। अब मैं अपनी बाली उमर किसके संग बिताऊँगी।

गाना

बाली उमर नादान, छोटासा मेरा बालमा।
रंग नहीं जानत, ढंग नहीं जानत, ठंग नहीं जानत।
प्रेम का है अनजान, नन्हा सा मेरा बालमा ॥बा०॥
जोबन मेरा छल छल छलके, छल छल छलके।
पीया मिलनको जीया ललके, जीया ललके।
तड़फत हूं हैरान, आवे ना मेरा बालमा ॥बाली०॥

(सामने से रामू को आते देख कर)

बहू—रामू आरहा है, (रोने लगती है)

रामू—बहूजी क्या बात है ? कहिये तबियत तो ठीक है।

बहू—हां जरा पैर मं दर्द है।

रामू—अगर सरकार का हुकम हो तो पैर दबा दूँ ?

बहू—हां जरा दरद जाता रहेगा।

(रामू पैर दबाता है। वो फिर रोने लगती है)

रामू—क्यों बहूजी अब कहां दर्द है।

गाना

श्री इन्द्र देव महाराजा, बज रहा खुशी का बाजा।
हां गाओ, हां गाओ, हर्षित होकर यश गाओ ॥
जिनकी महिमा अगणित है, सबही में जिनका हित है।
हां गाओ, हां गाओ, हर्षित होकर यश गाओ ॥

(पटा क्षेप) दृश्य समाप्त

अँक द्वितिय—दृश्य छटा

(वानर वंशी महाराजा सूर्यरज का किष्किन्धा में दर्बार)
(पास में ही उनके दोनों पुत्र बाली और सुग्रीव बैठे हैं ।)

सूर्यरज—पुत्र बाली, तुम राज कार्य में सर्वथा योग्य हो। मैं अब वृद्ध होगया हूँ । यह संसार महा दुख दाई है । नहीं मालूम मैं कितनी बार चौरासी लाख योनियों में भ्रमा हूँ । मैंने यह मनुष्य जन्म पाया है। इसको सफल करना चाहिये । तुम इस राज्य सिंहासन के स्वामी बनो मैं बन में जाकर तपस्या करूँगा । और कर्मों को काटने का उपाय करुंगा।

बाली—महाराज, मैं यद्यपि इस कार्य के लिये सर्वथा अयोग्य हूँ किन्तु आपकी आज्ञा का उलंघन करने में सर्वथा असमर्थ हूँ।

सूर्यरज—पुत्र! तुम्हारी पितृभक्ति से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। जो मैं तुम्हें राज्य तिलक करता हूं। (राज्यतिलक करता है) बेटा सुग्रीव! तुम्हें मैं युवराज पद देता हूं। बाली, इस बात का सदा ध्यान रखना कि प्रजा किसी प्रकार दुख न देखे। तुम्हारे चाचा रक्षरज के पुत्र नल और नील उनको भी तुम अपना भाई समझ कर ही उनसे व्यवहार करना!

सुग्रीव—पिताजी आप हम लोगों को अकेला छोड़ कर जाते हैं इससे मुझे बड़ा दुख होता है।

सूर्यरज—पुत्र इसमें दुःख की क्या बात है। यह तो हमारी परम्परा से चली आई नीति है। मैं तो अपना भला करने जा रहा हूं। संसार में रहते २ मैं थक गया हूं सो उससे विश्राम पाने के लिये बन में जारहा हूं। तुम अपने बड़े भाई बाली को अपना सब कुछ समझो। वह किसी प्रकार तुम्हारे ऊपर आपत्ति नहीं आने देगा।

बाली—पिताजी! आप हमें छोड़ कर बन में जा रहे हैं। इस समय हमें दुख और आनन्द बराबर होते हैं।

बाली और सुग्रीव का गाना।

जा रहे छोड़ कर हो बन को,
कुछ दुःख भी है आनंद भी है।

हम पिता कहेंगे अब किसको,
इसका बस हमको रंज भी है ॥
अब तक आनन्द उड़ाते थे,
चिन्ता हमको कुछ भी ना थी।
रह गये अकेले हम दोनों,
अंधेर भी है और चन्द भी है ॥
जाकर तुम बन में तप द्वारा,
कर्मों की सेना जीतोगे।
अविकार राज्य को पाओगे,
बस इस ही से आनन्द भी है ॥

सूर्यरज—पुत्र, तुम दोनों बड़े ही बुद्धिमान हो। इस समय संसार की दशा मेरी आंखों के सामने चित्र पट बना रही है।

वह देखो नरकों के प्राणी, दुख उठा रहे कैसे कैसे।
वह रही रक्त की नदियां हैं, गिर रहे अंग कट कर कैसे ॥ १
हा, भूख प्यास चिल्लाते हैं, दाना पानी नहिं पाते हैं।
निज करनी के फल पाते हैं, नहीं कह सकता हूँ किन जैसे ॥ २
तिर्यंचगती में भी देखो, सब प्राणी दुःख उठाते हैं।

हैं बोझ खींचते अरु पिटते, भूखे प्यासे दुखिया भैंसे ॥ ३
जो बंधे कसाई के घर में, भय खाते खैर मनाते हैं।
किन्तु कटते हैं बेचारे, उसके हाथों भुट्टे जैसे ॥ ४
जंगल में भी जो रहते हैं, वो एक एक से डरते हैं।
आखेट खेलने जो जाते, निर्दई होकर मारें ऐसे ॥ ५ ॥
कोई कहे देव सुख पाते हैं, वो भी ईर्षा से जलते हैं।
जब आयू थोड़ी रहजाती, रोते विधवा नारी जैसे ॥६॥
मनुजों में भी ये ऊँच नीच, का भाव सदा दुख देता है।
इक राजा बनकर बैठा है, एक मांग रहा धेले पैसे ॥ ७ ॥

पर्दा गिरता है। दृश्य समाप्त

अंक द्वितिय—दृश्य सातवां

कुम्भकरण—(भागा आकर) कहां गया, कहां गया वह दुष्ट खर दूषन ?

विभीषण—(दूसरी ओर से आकर) वह निकल गया। हमारी बहन चन्द्रनखा को हर कर ले गया।

कुंभकरण—मैं उसे इसका फल दूंगा। अभी उसके नगर पर धावा बोल कर उसे हराऊंगा और बहन को वापिस लाऊंगा।

बिभीषण—जाने दीजिये भाई साहब। वह बहुत बलवान

है हमारे से नहीं जीता जायगा। उसे चौदह हजार विद्यायें सिद्ध हैं। दूसरे इस समय बड़े भाई साहब भी उपस्थित नहीं हैं।

कुंभकरण—क्या हुआ, यदि मैं युद्ध में लड़कर मर भी जाऊँगा तो कोई बात नहीं, किन्तु उससे युद्ध अवश्य करूँगा।

रावण—(आकर आश्चर्य से) क्या बात है। तुम लोग क्यों घबरा रहे हो ?

विभीषण—महाराज राक्षस वंशी महापराक्रमी राजा खरदूषन हमारी बहन चन्द्रनखा को छल से उठा ले गया।

रावण—क्या कहा बहन को उठा ले गया ? उसने इतना बड़ा काम किसके बूते पर किया। क्या उसे मेरे बलका पता नहीं है। मैं अभी जाकर उसे छुड़ाकर लाता हूँ।

विभीषण—भाई साहब की आज्ञा होतो सेना सजाई जाये।

रावण—नहीं मैं अकेला ही उसके लिये काफी हूँ। तुम दोनों यहां रहकर नगर की रक्षा करना।

(जाने लगता है। पीछे से मन्दोदरी आकर पैर पकड़ लेती है)

रावण—क्यों मन्दोदरी तुम मुझे क्यों रोकती हो। क्या एक क्षत्राणी का यही धर्म है कि वह रण में जाते हुवे पतीको रोके।

मन्दोदरी—नहीं पतिदेव, मेरा यह धर्म नहीं है कि मैं

आपको रण में जाने से रोकूं।

रावण— तो फिर?

मन्दोदरी—एक पतीवृता नारीका यह धर्म है कि वह आपत्ति में पड़ने से अपने पती की रक्षा करे।

रावण—कैसी आपत्ति। रावण के लिये क्या किसी ने आपत्ति का नाम सुना है?

मन्दोदरी—यह सच है प्राणनाथ, किन्तु वह चौदह हजार विद्याओं का स्वामी है। आप उससे कदापि नहीं जीत सक्ते।

रावण—मन्दोदरी तुम पतिवृता स्त्री होकर अपने पती को हतोत्साहित करती हो।

मन्दोदरी—नहीं इसमें एक और भी रहस्य है।

रावण—वह क्या?

मन्दोदरी—वह यह कि यदि आप उससे पराजित होगये तो आपका मान भंग होगा, और यदि वह युद्धमें हार गया तो आपकी बहन विधवा होजायगी। वह दूषित हो चुकी है। यदि आप उसे ले भी आयँगे तो कोई दूसरा नृपति स्वीकार नहीं करेगा। इस प्रकार आपका घोर अपयश फैलेगा। इस लिये आप मेरा कहना स्वीकार कीजिये और उसके प्रति अपना वात्सल्य भाव दर्शाइये। क्यों कि आपकी बहन के लिये बिना खोजे ही वह बहुत योग्य बर मिल

गया है। आपके धन्य भाग्य हैं। जो ऐसे पृथ्वी पर श्रेष्ठपुरुष से आपकी बहिन का गंधर्व विवाह हुआ।

रावण—प्रिये तुम सत्य कहती हो। मैं तुम्हारी बात को स्वीकार करता हूं तुम्हारे जैसी विचार वान शुभ मंत्रणा देने वाली नारी संसार में बहुत कम जन्म लेती हैं।

(सब चले जाते हैं)

अँक द्वितिय—दृश्य आठवां

(बाली का दर्बार)

दूत—(प्रवेश करके) महाराज की जय हो। लँकापुरी से रावण का दूत आया है। आपसे भेंट करना चाहता है।

बाली—उसे आदर पूर्वक यहां बुला लाओ।

(दूत जाता है रावण का दूत आता है)

रावण का दूत—महाराज बाली की जय हो।

बाली—कहो महाराजा रावण सकुटुम्ब सुखी हैं? वहां से क्या समाचार लाये हो?

दूत—महाराज की कृपा से सब प्रसन्न चित्त हैं। महाराजाधिराज रावण ने आपके पास समाचार भेजे हैं कि आपके पिताजी जिनको हमने संकट से बचा कर राज्य दिया था अब वह बन में दीक्षा ले गये हैं। हम आपके प्रति सहानुभूति प्रगट करते हैं और आज्ञा करते हैं कि आप हमारे यहां आकर हमें प्रणाम करो

हमारा प्रेम आपके प्रती आपके पिता से भी अधिक है। आप हमें अपनी बहिन श्रीप्रभा ब्याहो और नमस्कार करो जिससे परम्परा से चली आई मित्रता निभती चली जाय।

बाली—तुमने जो कहा सो मैंने सुना। मैं और सब बातें स्वीकार करता हूं किन्तु मेरी यह प्रतिज्ञा है कि सिवाय देव शास्त्र और गुरु के किसी को मस्तक नहीं नवाऊंगा मैं तुम्हारे साथ लँकापुरी को चल सकता हूं अपनी बहन श्रीप्रभा का बिवाह रावण से कर सकता हूं। किन्तु प्राण जाने पर भी अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता।

दूत—हे बानर वंश में श्रेष्ठ, तुम रावण के वचनों का पालन करो। राज्य पाकर गर्व न करो। या तो दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम करो या आयुध पकड़ो। या तो रावण को शीष नवाओ या खैंचकर धनुष चढ़ाओ। या तो रावण को आज्ञा को कर्ण आभूषण करो नहीं तो धनुष का पिनच खैंचकर कानों तक लाओ, या तो रावण के चरणों के नखों में मुख देखो। या खड्ग रूपी दर्पण में मुँह देखो। अर्थात या तो जाकर उन्हें शीस नवाओ, या युद्ध के लिये तैयार होजाओ।

योद्धा—अरे दुष्ट दूत क्यों ऐसे कठोर वचन स्वामी के लिये बोलता है। मालूम होता है तेरी मृत्यु निकट है। ले मरने को तैयार होजा।

बाली—नहीं, इसे मत मारो। इसमें इसका कोई अपराध नहीं है। जिसका अपराध है, जिसके बूते पर यह बोल रहा है, मैं उसे ही जाकर मजा चखाता हूं।

मंत्री—महाराज शान्त होइये। रावण की समानता आप नहीं कर सकते। वह इस समय बहुत बलवान है। सारे पृथ्वी मण्डल पर श्रेष्ठ है। आप उससे युद्ध करके पराजय को प्राप्त होंगे।

बाली—मंत्री तुम यह क्या शब्द कह रहे हो। मनुष्य एक वस्तु को तभी तक सबसे सुन्दर गिनता है जब तक वह उससे सुन्दर वस्तु नहीं देख लेता। मेरा बल पराक्रम तुम्हें ज्ञात नहीं है। (तलवार खींचकर) मैं अभी उसका सारा अभिमान चूर करुंगा। (तलवार छूटकर गिरती है) यह क्या, मेरे हाथ में से खड़ग क्यों छूट पड़ा ? बस बस हो चुका, मैंने जितना राज्य करना था कर लिया। मेरे हाथ इस बात के लिये राजी नहीं होते कि जिनसे मैं नित्य-प्रती मन्दिर में जाकर पूजन प्रक्षाल करता हूँ। उनसे लाखों जीवों की हत्या करुं। इस कारण मैं अब राज्य कार्य के योग्य नहीं।

सुग्रीव—भाई साहब आपके विचार एक दम कैसे बदल गये ? रणवीर होकर आप धर्मवीर क्यों बने जारहे हैं ? आपके विना इस राज्य भार को कौन सम्हारेगा।

बाली—भाई सुग्रीव, मै तुम्हें राज्यतिलक करता हूँ। तुम जैसा उचित समझो वैसा करना। चाहे युद्ध करना, चाहे जाकर उसको प्रणाम करना। मैं ऐसे संसार में जिसमें एक मनुष्य दूसरे का विरोधी है, रहना नहीं चाहता। मैं भी पिताजी की तरह दिगम्बरी दीक्षा धारण करूँगा।

सुग्रीव—नहीं भाई साहब, यह नहीं हो सकता। आपके आसरे पर मुझे पिताजी ने छोड़ा अब आपभी मुझे अकेला छोड़ कर जारहे हैं। पिताजी तो वृद्ध होगये थे इस लिये वह बन में गये आप तो अभी युवक ही हैं।

बाली—सुग्रीव तुम चिन्ता न करो। मुझे इस सत्कार्य में जाने से न रोको मुझे संसार भयावना दिख रहा है। लो मैं तुम्हें राज्यतिलक करता हूं। सुख पूर्वक राज्य करना। (राज्य तिलक करते हैं)

सुग्रीव—आप मुझे अकेला छोड़ कर जा रहे हैं मुझे दुःख होता है।

गाना

आज मैं संसार में हूं, हा! अकेला रह गया।
भ्रात के जाने से मेरे, चित्त में दुख बह गया॥
इक तो वियोग पिताका था, फिर आप भी जाने लगे।
आपही बतलाईये अब, किससे नाता रह गया॥

पर्दा गिरता है। दृश्य खतम होता है। द्वितिय अंक समाप्त।

अंक तृतीय

दृश्य प्रथम

स्थान—कैलाश पर्वत की तलहटी

(कैलाश के ऊपर बहुत से जिन चैतालय बने हुवे हैं। बाली मुनि तपस्या कर रहे हैं। रावण अपनी स्त्री और मंत्री सहित आता है।)

रावण—चलते चलते मेरा विमान क्यों रुक गया? मंत्रीजी क्या आप इसका कारण बता सकते हैं?

मंत्री—महाराजाधिराज, यह कैलाश पर्वत है। यहां पर अनेक जिन चैत्यालय हैं। महा मुनि बैठे हुवे तपस्या कर रहे हैं इनमें यह शक्ति है कि कोई भी विमान बिना वन्दना किये हुवे उलांघ कर नहीं निकल सकता।

रावण—अच्छा मैं समझा, जिन धर्म का बहुत उच्च महत्त्व है। (पर्वत की ओर देख कर) यह सामने कौनसे मुनि तपस्या कर रहे हैं? मालूम होता है यह बाली है इसने मुझसे वैर निकालने के लिये ही मेरा विमान रोका है।.........अरे दुष्ट बाली! तू क्यों यह झूठी दिखावटी तपस्या कर रहा है। तू कषायों से प्रज्वलित हो रहा है और वीतरागता का ढोंग रचता है। तूने मुझसे वैर निकालने के लिये मेरा विमान रोका है। अच्छा देख मैं तुझे अभी इसका फल देता हूं।

(कैलाश पर्वत को खोदता है । उसके अन्दर घुस कर पर्वत को उठाता है । सारी प्रथ्वी पर भूकम्प आजाता है ।)

बाली—मालूम होता है यह सब रावण का कर्तव्य है । मुझे अपनी कोई चिन्ता नहीं । चिन्ता इन जिन चैत्यालयों की है पर्वत को हानि पहुंचने से इन्हें हानि पहुंचेगी ।

(पैर के अंगूठे को दबाते हैं । रावण पर्वत के नीचे दब जाता है । बिल्कुल कछुवा बन कर हा हा कार करता है । देव मुनि के ऊपर फूल बर्षाते हैं । रावण की रानी बाली से प्रार्थना करती है)

रानी—छोड़िये छोड़िये भगवन ! आप परम कृपालु हैं । पति के मरण से मैं विधवा कहलाऊंगी । दया कीजिये ।

(बाली पैर के अंगूठे को ढीला छोड़ते हैं । रावण बाहर निकल कर आता है ।)

रावण—क्षमा, क्षमा भगवान क्षमा, मैंने जो यह घोर अपराध किया इसके लिये मुझे क्षमा कीजिये । आप परम तपस्वी हैं आपने जो यह व्रत धारण किया था कि मैं सिवाय देव शास्त्र और गुरु के किसी को नमस्कार नहीं करूंगा सो वह आपका व्रत अटल है । आपका नाम भी बाली है और आपके गुण भी बली हैं । मेरी मूर्खता थी कि मैंने आपके सच्चे स्वरूप को न

समझा। आपने मुझे प्राण दान दिया उसके लिये मैं कहां तक आपकी स्तुति कर सकता हूं।

बाली—यदि तुम इस घोर अपराध का प्रायश्चित लेना चाहते हो तो भगवान की भक्ती में मन लगाओ जिससे यह जीव उनके पदको प्राप्त करता है।

रावण—धन्य है आपको, आपके लिये शत्रु और मित्र एक समान हैं।

धन्य धन्य गुरु देव आपको, करते हो सबका कल्याण।
वीतरागता है दृढ तुमको, शत्रु मित्र सब एक समान॥
अनहित करता के हित करता, शत्रू के हो मित्र तुम्हीं।
परिषह विजयी, हित उपदेशी, शान्ति के हो चित्र तुम्हीं॥
निज पर के हित साधन में तुम, निश दिन तत्पर रहते हो।
ऐसे ज्ञानी साधु तुम्हीं हो, दुख समूह को हरते हो॥
आया गुरु शरण में तेरी, अपराधी अन्यायी हूँ।
दूर होंय सब दुष्कृत मेरे, तुम पर्वत मैं राई हूँ॥

धरणेन्द्र—(प्रगट होकर) रावण, मैं भगवान का भक्त हूं। और इन श्री १०८ मुनिराज बाली महाराज का शिष्य हूँ। मैं तेरी भक्ती से प्रसन्न हूँ। तुझे भाई समझकर यह अमोघ विजया नामक शक्ती देता हूं। यह संकट में तेरे काम आयेगी। इसका वार

कभी खाली नहीं जायगा। तेरे मारने वाले पर भी यह अवश्य अपना असर दिखायेगी।

रावण—मैंने अपने अपराध क्षमा कराने के लिये गुरु देव की प्रार्थना की थी, इस लिये नहीं, कि तुमसे शक्ती ग्रहण करूँ, यदि तुम मुझे भगवान की भक्ती के उपलक्ष में यह देते तो मैं कभी इसे ग्रहण नहीं करता। क्यों कि जिसकी भक्ती से मोक्ष के सुख मिलते हैं तो मैं ऐसी छोटी सी वस्तु को लेकर क्या करता। किन्तु तुम भाई के नाते से दे रहे हो। इस लिये इसे सहर्ष स्वीकार करता हूं।

सब मिलकर गाते हैं।

जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र

पर्दा गिरता है।

अँक तृतिय—दृश्य द्वितिय

(बिल्कुल फटे भेष में राजमल की बहू आती है।)

बहू—अन्धकार, अन्धकार, आज मेरे लिये चारों ओर

अन्धकार है। पक्षियों, तुम्हें, शरण है। पशुओं, तुम्हारे लिये भी शरण है। जरासी चींटी के लिये इस संसार में शरण है। किन्तु मैं अशरण हूं। मैं कुल्टा हूं! पापिनी हूं!! कलंकिणी हूं!! पतिदेव, मैंने तुम्हें काम के आवेश में आकर त्याग दिया। आह आज मुझे सारा संसार त्यागे हुवे है। कहां गये, कहां गये? मेरे धन और यौवन के साथी कालू और रामू। जिन्होंने मुझे इस अवस्था तक पहुँचाया। मेरे विनाश कर्ता कहां हैं? रामू! तूने मुझे सारी उमर निभाने का वचन दिया था। अब तू क्यों मुझे छोड़ बैठा है? नहीं, नहीं, तेरा कोई अपराध नहीं है। तो फिर मैं किसका अपराध कहूँ? ये सब मेरा ही अपराध है। नहीं, नहीं, ये अपराध दुष्ट माता पिता का है। मेरे साथ की सहेलियां अपने पतियों के संग चैन से रहती हैं। और पतिव्रता कहलाती हैं। मेरा बेजोड़ विवाह करके माता पिताने मुझे कलंकिणी बना डाला। हे ईश्वर मैं तुमसे यही वर मांगती हूँ कि ऐसे निर्बुद्धि अन्धे माता पिता को कभी भी संतान न हो। मेरा अन्तःकरण कहता है मुझे दुलहिन बनाने वाले माता पिता का नाश हो। मेरा जोड़ा मिलाने वाले नाई का नास हो मेरे फेरे डालने वाले पुरोहित के घर में यही दशा हो जो मेरी हो रही है। ओ अन्धे पुरोहित! सब के सब निर्बुद्धी थे तो क्या हुआ। तू तो पढ़ा लिखा था। नीति का जानकार था वेदों का ज्ञाता था।

क्या तुझे यह नहीं सूझा कि मैं यह क्या करा रहा हूं। हे भारत माता तू ऐसे लोभी स्वार्थ में अन्धे पुरोहितों को क्यों जन्म देती है? ओ समाज के पंचो, तुम लोगों ने मेरे विवाह में लड्डू कचौड़ी खाये और अपनी थौंदों पर हाथ फेरा। किन्तु किसी ने मेरे भविष्य की ओर ध्यान नहीं दिया। तुम लोगों को मेरा यही श्राप है कि तुम्हारी उन थौंदों में कीड़े पड़ें। जो दशा आज मेरी हो रही है वैसे ही तुम्हें भी कोई आश्रय देने वाला न मिले। आज भारत वर्ष में अबलाओं की यह क्या दुर्दशा हो रही है? समाज हमें पशु समझती है, जिधर चाहती है ढकेल देती है। धन के लालच में मां बाप हमें बूढों से ब्याह देते हैं। हमारे विधवा होने पर समाज हम से दुराचार करती है। बाद में ठुकराती है और हमें कलंकिणी बना कर हमारे ऊपर थूकती है। क्या कहीं हम अबलाओं का न्याय नहीं है?

गाना

आज निर आश्रय हूं मैं, यह क्या मेरी तकदीर है।
पेट खाली उघड़ा तन, यह क्या मेरी तकसीर है॥
ब्याह किया छोटे पती से, मात पित ने हाय मम।
थी जवानी मुझमें जब, कैसे बंधे मेरि धीर है॥

छोड़ कर मैंने पती रामू के संग शादी करी।
होगया जेवर खतम, तब कौन किसका मीर है॥

(कुछ लोग उधर से होकर निकलते हैं वह पैसा
मांगती है। इसके पल्ले में थूक देते हैं। लड़के
आते हैं वह उसे ढेले मारते हैं। नारियां
आती हैं वह नाख पर कपडा रख
कर बच कर निकलती हैं।)

सब लोग मुझ पर थूकते, लडके हैं ढेले मारते।
नारी सिकोड़ति नाख हैं, यह क्या मेरी तकदीर है॥

(उसके पिता और ससुर उस रास्ते से आते हैं)

ससुर—आजकल कहीं चैन नहीं।

पिता—घर से चले कि हरिद्वार में जाकर शान्ति मिलेगी यहां पर यह भिखमंगे जान खाये जाते है।

अबला—अरे दुष्टों तुम्हें हरिद्वार में नहीं तुम्हें सातवें नरक में शान्ति मिलेगी।

ससुर—ओ स्त्री, क्या बकती है चुप रह।

पिता—आजकल इन भिखमंगों के दिमाग चढ़ गये हैं। समझते हैं कि हमें गरीब जान कर हरएक कोई छोड़ देता है। इससे मन चाही बक देते हैं।

अबला—तुम लोग अन्धे हो। तुम्हारी आंखें नहीं हैं।

यह केवल दो सुराख हैं जो तुम हमें भिखमंगा समझते हो। हम तुम्हारे अत्याचारों के शिकार हैं।

समझो न भिखमंगी हूं मैं, मैं आग की पुतली हूं वो।
करदे भसम एक आह से, मैं प्रलय की कारी हूं वो॥
नमूना अत्याचारों का, तुम्हारे सामने हूं मैं।
तुम आंखें खोल कर देखो, तुम्हारी कामनी हूं मैं॥

पिता—हैं, कौन ? क्या तू सचमुच मेरी पुत्री कामनी है। बता बेटी इस तेरे भाग्य में मेरा क्या अपराध जो तू मुझे कोसती है।

ससुर—और देखो तो कैसी बेशरम है, ससुरे के सामने ऐसे मुंह खोले हुवे पटापट बोल रही है।

अबला—अपराध ? मुझसे अपराध पूछते हो ? तुम्हीं ने तो मुझे इस अवस्था तक पहुंचाया है।

ससुर—अरे कुछ तो शरम कर।

अबला—बस, बस, चुप रह, ओ लोभ के पुतले, अन्याय के बाप। बता मैं तुझसे क्या शरम करूं। माता पिता से शरम करी तो मेरी यह अवस्था हुई। तुझसे शरम करी तो मेरा धर्म नष्ट हुआ।

पिता—बेटी, बता मैंने तेरे लिये क्या नहीं किया। मैंने

तुझे बड़ लाड़ से पाली । इतना रुपया खरच करके तेरा विवाह किया ।

अबला—तुमने सब कुछ किया । किन्तु कुछ भी नहीं किया । तुमने अपना अन्तिम कर्तव्य जो मेरे लिये योग्य पती ढूंढने का था उसे पूरा नहीं किया । उसी का यह परिणाम है कि मेरी आज यह अवस्था है ।

ससुर—यदि तू घर पर रहती तो यह अवस्था कैसे होती, यह सब रामू के साथ भागने का फल है अब तू भुगत ।

पिता—देखो सामने से आदमी आरहे हैं । वह अगर यह बात जान जायंगे तो हमारी हंसी ेगी ।

ससुर—चलो वह सामने से सुधारक का बच्चा भी आ रहा है ।

पिता—पुत्री तेरा कल्याण हो ।

अबला—पिताजी तुम्हारा नाश हो (दोनों चले जाते हैं ।

सुधारक—(आकर) भाइयों देखा सुधार का फल । यह बड़े बूढ़े हम युवकों को पागल बताते हैं । आप लोग सोचिये । पागल हम हैं या ये ?

अबला—भाई तुम कौन हो ?

सुधारक—अपनी दृष्टी में समाज सेवक । शिक्षित समाज

की दृष्टी में सुधारक ओर बूढ़ों की दृष्टि में वेवकूफ हूं।

अबला—तुम जाते जाते क्यों रुक गये ?

सुधारक—तुम्हारा दुख सुनने के लिये।

अबला—इससे क्या लाभ ?

सुधारक—लाभ यही कि तुम्हें शान्ति मिले।

अबला—तुम मुझे कैसे जानते हो ?

सुधारक—जिस दिन तुम व्याह कर लाई गई थीं, तभी से मैं तुम्हें जानता हूं। तुम्हारे व्याह को रोकने का मैंने बहुत प्रयत्न किया था किन्तु मेरी एक न सुनी गई। तुम्हारे ससुर ने कहा कि मैंने यह कार्य सुधार का किया है।

अबला—भाई क्या मैं तुमसे अब कुछ आशा कर सकती हूं।

सुधारक—बहन, आप मेरे घर चलें। मैं आपको अपनी धर्म बहन बनाकर रखूँगा। जो कुछ मुझसे उपकार बन पड़ेगा वो भी यथा शक्ती करूँगा।

अबला—भारत माता! तुझे धन्य है। आज भी तेरे पुत्र ऐसे परोपकारी हैं। (सुधारक से) चलो भाई में तुम्हारे साथ चलती हूँ।

(दोनों जाते हैं।)

दृश्य समाप्त.

अंक तृतिय—दृश्य तीसरा

(साधू और ब्रह्मचारी दोनों आते हैं।)

बृ०—कहिये साधुजी कुछ देखा ?

सा०—तुम लोग महा झूँठे हो।

बृ०—वो कैसे ?

सा०—तुमने रावण की एक दम इतनी तारीफ कर डाली। उसे तुम जैनी बताते हो। जैनी होकर भी कोई रावण के जैसे दुष्कर्म कर सकता है ?

बृ०…साधू महाराज यह आपका कहना सत्य है कि जैनी होकर दुष्कर्म नहीं कर सकता। किन्तु पांचो अंगुलियों का नाम अंगुलियां ही है। एक ही हाथ के आश्रय हैं। किन्तु कोई छोटी है कोई बड़ी है। उसी प्रकार जिन धर्मके अनुयाई पुरुष भी बहुत से, इन्द्रियों के वशीभूत होकर बुरे काम भी करते हैं और बहुत से अच्छे काम भी करते हैं। जिन धर्म का काम मनुष्य को रास्ता बताने का है उस पर चलाने का नहीं है। यह मनुष्य को स्वयं अधिकार है कि वह चले या न चले।

साधू—लेकिन तुमने उसकी इतनी तारीफ क्यों की ?

बृ०—सर्वज्ञ भगवान वीतरागी होते हैं। वह निःप्रयोजन होते हैं : उनमें यह बात नहीं होती कि द्वेष वश किसी मनुष्य की बुराई ही बुराई करें। या प्रेम वश किसी की प्रशंसा ही

प्रशंसा करें। उनके ज्ञान में जैसा झलकता है उसी के अनुसार वह कथन कहते हैं।

साधू—खैर यह भी सही। मैंने माना। किन्तु तुमने बाली को यहां तपस्या करते दिखाया है। वहां हमारे यहां तुलसीदासजी ने उसे रामचन्द्रजी के हाथ से मारा गया बताया है। कहिये कितना जमीन आसमान का फरक है।

वृ०—साधूजी, हमारे जितने पुरुष भी हुवे हैं। वह सदा अपने धर्म पर कायम रहे हैं। और आजकल भी हिन्दुस्तानमें पुरुष अपने धर्म पर कायम हैं। यह मैं नहीं कहता कि पुरुष दुराचारी नहीं थे या नहीं हैं। वह सब कुछ थे और सब कुछ हैं। वह सर्प जैसे बाहर टेढ़ा मेढ़ा फिरता है। और अपने बिल में सीधा घुसता है उसी प्रकार थे। बाहर भले ही उन लोगों ने अत्याचार किये किन्तु घर में सदाचार पूर्वक रहे। सुग्रीव की रानी सुतारा को वह अपनी बेटी समझते थे।

साधू—तो फिर राम ने बाली को मारा, क्या यह झूठ है।

वृ०—नहीं झूठ नहीं है किन्तु उलट फेर है।

साधू—वह क्या?

वृ०—वह आपको अभी मालूम पड़ जायगा। आज हम केवल इतनी ही लीला दिखाकर समाप्त करेंगे। आज हम यह दिखादेंगे कि वास्तव में यह क्या मामला है।

श्री वीराय नमः।

जैन नाटकीय रामायण।

द्वितिय भाग।

अंक प्रथम

दृश्य प्रथम

स्थान

(क्षीरकदम्ब की स्त्री की कुटिया। अपने गमलों में पानी दे रही है।)

गाना

नहीं आये पिया, मोर फाटे हिया।

(इतने ही में उसका पुत्र पर्वत आ जाता है)

माता—क्यों पर्वत तू अपने पिता को कहां छोड़ आया?

पर्वत—माता! मैं, वसू और नारद तीनों पिताजी के साथ गये थे सो रास्ते में पिताजी ने दिगम्बर मुनियों को बैठे देखा। उन्हें प्रणाम किया।

मता—फिर क्या हुआ?

पर्वत—उनमें से एक मुनी ने कहा कि यह चार जीव हैं। एक गुरु और तीन शिष्य। जिन में से एक गुरु और एक शिष्य तो भव्य हैं ये जग में अपना और पराया उपकार करेंगे। २ शिष्य जगत में महा मिथ्यात्व फैलाने वाले हैं। ये नरक गामी होंगे।

माता—वह दो कौन कौन ?

पर्वत—पिताजी ने पूछा किन्तु मुझे पता नहीं कि उन्हों ने बताया या नहीं बताया।

माता—किन्तु यह तो बताओ कि तुम्हारे पिताजी कहां रह गये ?

पर्वत—उन्होंने हम तीनों को उपदेश देकर बिदा कर दिया। और स्वयं......

माता—स्वयं क्या ?

पर्वत—स्वयं दिगम्बर मुनी......

माता—हाय, मेरा तो भाग्य फूट गया। अब मैं बिना पती के कैसे रहूंगी। (रोती है) हे पती देव तुमने मेरे यौवन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अब मैं कहां जाऊं क्या करूं ? दुष्ट मुनियों ने मेरे पती को मोह लिया। क्या मैं वहां जाकर उनसे घर लौटने के लिये प्रार्थना करूं ? किन्तु वह कभी भी मुझे दिलासा देकर मेरे साथ नहीं आयेंगे। हे पती देव, कुछ

नहीं तो इस घर की दीन अवस्था पर तो बिचार किया होता।

पर्वत—माता धैर्य धरो। पिताजी कल्याण के मार्ग पर लग गये हैं।

माता—दुष्ट तू यही चाहता होगा कि मैं अकेला रहकर मन माने ढोल बजाऊंगा। मुझे कहता है धैर्य धरो पिता को वहां छोड़ कर यहां आ बैठा हाय पतिदेव। (रोती है)

नारद—(आकर) गुरु माता आप इतनी व्याकुल क्यों हो रही हैं? हमारे गुरु सर्व शास्त्र पारंगत थे। वह संसार की बुरी भली अवस्था को पहचानते थे। उन्होंने अपना कल्याण करने के लिये वैराग्य को धारण किया है। कोई ऐसा कार्य नहीं है जिसे वह छोड़ गये हों। हमें तीनों को उन्होंने पूर्ण विद्वान बना दिया है। अपने बाद अपने प्रतिनिधी पर्वत को छोड़ गये हैं। जो कि इस समय हर प्रकार का भार सम्हाल सकता है। आपको तो उनका कल्याण सुन कर प्रसन्न होना चाहिये।

हा, भगवन हमारे लिये वह समय कब आयेगा कि हम भी मुनि पद ग्रहण करके अपनी आत्मा की उन्नति करेंगे।

माता—पुत्र नारद, तुम्हारे बचन सुन कर मुझे हर्ष होता है किन्तु जब पती का बियोग विचारती हूं तो (आंखों में आंसू लेकर) मेरा कलेजा फटता है। उन्होंने

अपना हित सोच लिया। वैराग्य को धारण किया किन्तु मुझे...
(आखों में आसू पोंछ कर) हमेशा के लिये रुला गये।

नारद—माताजी आप व्याकुल क्यों होती हैं। आप भी अपना कल्याण कीजिये। शान्ति पूर्वक रह कर धर्म चिन्तवन कीजिये। जब स्त्री का पती मर जाता है। तब उसे दुःख होता है किन्तु गुरुजी धर्म मार्ग पर लग कर अपनी आत्मा से कर्म मैल धो रहे हैं। किसी के जीते जी उसका रन्ज करना, यह उचित नहीं। आप बुद्धिमती हैं। बुद्धी से काम लीजिये।

माता—मैं बहुत अपने कलेजे को सम्हालती हूं किन्तु

(रोने लगती है)

नारद—मित्र पर्वत मुझे कार्य वश जाना है तुम माता जी को धैर्य बंधाओ। मताजी प्रणाम।

माता—जाओ पुत्र, मैं अब न रोऊंगी।

(नारद चला जाता है। पर्वत और माता रह जाते हैं)

पर्दा गिरता है।

दृश्य समाप्त

अंक प्रथम—दृश्य दूसरा

(एक पचास वर्ष की आयू वाले भारी बदन के बाबूजी आते हैं। जो कि अप टू डेड फैशन में हैं। चश्मा लगाये हुवे हैं। टोप पहने हैं)

बाबूजी—हमारा भाग्य बहुत बुरा है। हमारी वाइफ हमें बुढ़ापे में रंडुआ कर के चल बसी। अहा, उसकी बाणी कितनी मधुर थी। मुझे कितना प्यार करती थी? यह मैं ही जानता हूं। महीने भर मर पच कर जब मैं अपनी तनख्वाह के १६०) लाकर उसे देता था तो एक ही मुस्कान से मेरी महीने भर की थकावट दूर कर देती थी। हाय अब वह सुख कहां? वह मुस्कान कहां? वह आनन्द कहां?

एक क्लर्क—(आकर) कहिये बाबूजी कौनसे आनन्द को याद कर रहे हैं?

बाबूजी—भाई कौनसे क्या, जब मैं बच्चा था। तो मेरी मां मुझे गोदी में बिठाती थी। अपने हाथ से खिलाती थी। मुझे अपने कलेजे से चिपटाती थी। (सांस भरकर) भाई उसी आनन्द को याद कर रहा हूं। बेचारी वह तो मर गई अब हमें रोना पड़ रहा है।

क्लर्क—बाबूजी मुझे तो आपके कहने में कुछ झूंठ मालूम पड़ रहा है।

बाबूजी—झूंठ ही सही भाई तुम जो चाहे समझलो। मेरा दुख तो मैं ही जानता हूं।

क्लर्क—जब तक आपकी श्रीमती जी रहीं.........

बाबूजी—(मुंह बना कर) भाई मेरी उसका नाम मत

व०—मैं बचन देता हूं।

मा०—तो सुनो "पर्वत और नारद में यह संवाद छिड़ा है कि अज का ठीक अर्थ क्या है। पर्वत कहता है कि अजका अर्थ छेला है। नारद कहता है कि अज का अर्थ बिना छिलके के चावल हैं।

व०—किन्तु माता, बचन तो नारद का ही सत्य है। गुरुजी ने तो हमें यही अर्थ बताया है जो नारद कहता है।

मा०—होते २ उनमें यहां तक होगई कि कल राजा. वसु से इसका न्याय करायेंगे। और जो सत्य होगा वह झूंठे की जिव्हा काट लेगा।

व०—इस प्रकार तो पर्वत की ही जिव्हा कटेगी।

मा०—किन्तु तुम मुझे बचन दे चुके हो।

व०—यह मुझे घोर नरक में डालने वाला है। उस समय मैं सभा में राज सिंहासन पर बैठ कर यह झूँठा न्याय कैसे करूँगा?

मा०—मैं समझती हूं कि पर्वत झूँठा है किन्तु मेरे पती ने वैराग्य धारण कर लिया है। यदि पर्वत की जिव्हा कट जायगी तो मेरे लिये दूसरा सहारा नहीं है। पुत्र तुम अपने बचन को निबहाना।

व०—माता, आप निश्चिन्त रहिये। मैं दी हुई गुरु

दक्षिणा वापिस नहीं ले सकता।

मा०—अच्छा पुत्र तुम्हारा कल्याण हो। मैं अब जाती हूं। (जाती है)

(सभासद लोग आ आ कर बैठते हैं। नाच गाना शुरु होता है। परियां आती हैं।)

नाच गाना

आओ सखीरी, गाओ सखीरी, मिल के सभीरी।
आनंद मनाओ, जिया हरषाओ॥
दुखड़ा निकालो, आफत कु टालो गलबंय्या डालो।
आनंद मनाओ, जिया हरषाओ॥

सिपाही—महाराजधिराज की जय हो। श्री नारदजी और पर्वतजी पधारे हैं।

व०—उन्हें सम्मान पूर्वक राज्य सभा में ले आओ।

(दोनों आते हैं। वसू गले मिलता है। आसन देता है) कहिये आप लोगों ने मेरे ऊपर आज कैसे कृपा की?

प०—जब गुरुजी हमें पढ़ाया करते थे। तब वह यज्ञ के विषय में कहा करते थे। कि " अजैर्यष्टव्यं ,, अर्थात अज जो बकरी का बच्चा उससे यज्ञ करना चाहिये। किन्तु यह नारद उसमें अपनी नारदी लीला रचता है।

ब०—क्यों नारदजी आप इस विषय में क्या कहते हैं?

ना०—मैं जो बात सत्य है उसे कहता हूं ।

व०—वह क्या ?

ना०—वह यह कि गुरुजी अज का अर्थ बिना छिलके के चावल करते थे । जो बोने से न उग सके । उस में हिंसा का नाम भी नहीं था । और पर्वत ऐसी बात कहता है जो हिंसा से परिपूर्ण है । गुरुजी कभी ऐसा उपदेश नहीं दे सकते थे ।

प०—राजन ! मैं सत्य कहता हूं ? या ये सत्य कहते हैं ? आप इस बात का न्याय कीजिये जिसका बचन असत्य निकलेगा उसकी जिव्हा काट ली जायगी ।

व०—क्यों नारदजी आप इसमें सहमत हैं न ?

ना०—मैं तनमन से सहमत हूँ ।

व०—यदि आपके विरुद्ध में न्याय होतो आप जिव्हा कटाने को तयार हैं न ?

ना०—यदि मेरा बचन असत्य होगा तो मैं अवश्य जिव्हा कटा लूंगा ।

व०—कहिये पर्वतजी आप को भी स्वीकार है न?

प०—मैं इसे मन बचन काय से स्वीकार करता हूं ।

व०—तो सुनिये, पर्वत का बचन सत्य है ।

(सिंहासन टूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ता है ।)

सभासद लोग—महाराज सत्य बोलिये। वरना आप नरक गामी बनेंगे।

ना०—झूंठा न्याय करने से तुम्हारा सिंहासन टूट गया। यदि कल्याण चाहते हो तो अब भी सत्य बोल दो वरना आप के वचन प्रमाण जो अत्याचार जब तक संसार में होते रहेंगे तब तक आप नरक में से नहीं निकल सकेंगे यदि आप को अपना कल्याण करना हो और जीव हिंसा बचानी हो। तो जो गुरुजी ने कहा है वह सत्य कह दीजिये।

व०—(पृथ्वी पर पड़ा हुआ) पर्वत का वचन सत्य है।

(सिंहासन पृथ्वी फट कर उसमें समा जाता है। साथ २ वसु भी जाता है)

सभासदी—यह पर्वत महा पापी है। इसने राजा से झूंठ बुलवा कर उसे नरक में भेजा। हम लोग नारदजी की जिव्हा नहीं किन्तु तुम्हारी जिव्हा काटेंगे।

(पर्वत भाग जाता है)

ना०—देखो जिव्हा कटने के भय से भाग गया।

सभासदी—हम अभी पकड़ कर लाते हैं।

ना०—जाने दो, जो जैसा करेगा वैसा भुगतेगा।

(सब लोग फटी हुई पृथ्वी की ओर देखते हैं)

पर्दा गिरता है।

अंक प्रथम—दृश्य पांचवा

(ब्रह्मचारी और साधू आते हैं)

ब्र०—कहिये साधूजी आप सब तमाशा देख रहे हैं न?

सा—मैं सब देख रहा हूं और समझ रहा हूं। मेरे आत्मा से अज्ञान का पर्दा हट रहा है। किन्तु एक बात मुझे आपसे और पूछनी है।

ब्र०—वह क्या!

सा०—वह यह कि नारद का जो यहां पर बयान आया, क्या ये वही नारद है जो दुनियां में अपनी नारदी लीला के लिये प्रसिद्ध है?

ब्र०—नहीं, यह वह नारद नहीं है। यह तो नाम से नारद है।

सा—तो सच्चा नारद कौन है?

ब्र०—उसके विषय में अगाड़ी बतायेंगे।

सा०—आपके यहां अर्यिका किसे कहते हैं?

ब्र०—जो स्त्री वैराग्य को धारण करके आत्म कल्याण करती हैं। उन्हे अर्यिका कहते हैं।

सा०—क्या वह भी नंगी रहती हैं?

ब्र०—नहीं वह नंगी नहीं रहतीं।

सा०—किन्तु आपतो कहते हैं कि नग्न होने से ही मोक्ष

व०—मेरे मा बापों ने मुझे यह नहीं देखा कि हम किसे दे रहे हैं। दुष्टों ने धन के लोभ में आकर मुझे इससे ब्याह कर सदा के लिये विधवा बना दी हाय अब मैं किस का सहारा पकड़ूं ?

(गिरती है। लड़का सम्हाल कर अपनी जंघा पर उसका सर रख लेता है। मुंह के आंसू पूंछता है। हवा करता है)

ल०—हे ईश्वर, क्या इन अबलाओं का भारत वर्ष से न्याय उठ गया ? बेचारी की जो आयू सुख भोगने की थी उसी में विधवा हो गई। बिना माता पिता का बच्चा और बिना पती की विधवा स्त्री जो दुख भोगती है उसे कोई नहीं जान सकता।

व०—हाय, वीरसिंह ! मं अब किस प्रकार अपना जीवन बिताऊंगी ?

वीरसिंह—माता. चिन्ता न करो। तुम मेरे पास सुख से रहो मैं यथायोग्य तुम्हारी सेवा करूँगा।

व०—किन्तु तुम्हारी बहू मुझे अपने घर में कैसे रहने देगी ?

वी०—उसका कोई फिकर मत करो मैं सब भुगत लूंगा। अच्छा मैं अब जाता हूं। (जाता है)

ब०—वीरसिंह जैसा मनुष्य होना दुर्लभ है। बेचारा मुझसे कितना प्रेम रखता है।

वीरसिंह की बहू—(आकर) हां मैं भी जानती हूं जैसा प्रेम वो रखते हैं। मेरे सुसरे को तु खा गई अब हम लोगों के ऊपर मेहरबानी रखो।

ब०—अरी बहू ! तु कैसी बातें करती है। मुझे क्या ये अच्छा लगताथा कि मैं विधवा हो जाऊं।

वी०की ब०—अच्छा क्या, तूतो पूरी डाकन है। तेरे बाप ने तुझे दो हजार में बेची है।

ब०—देख बहू ऐसा मत कह। मुझ दुखिया को और दुखी न कर।

वी० ब०—अब तो हमारी बातें भी छुरी सी लगती हैं। बस मेरे पती को फुसला रखा है। खबरदार जो मेरे घर में रही।

ब० तो मैं कहां जाकर रहूं ?

वी० ब०—चूल्हे में, भाड़ में, भट्टी में। और अगर कोई जगह न मिले तो कूवे में।

ब०—तो क्या मैं आत्महत्या करलूं।

वी० ब०—तेरे जीने से फायदा ही क्या है जो मरने से नहीं होगा।

बहू—नहीं ये तो कभी न होगा कि मैं आत्महत्या करलूं।

वीरसिंह की बहू—तो कहीं जा, घर २ भीख मांग लेकिन मेरे घर में तेरे लिये जगह नहीं है।

बहू—अच्छी बात है मैं जाती हूं। तुम सुखी रहना।

(चली जाती है)

वी० की ब०—अच्छा हुआ चली गई। खाली में ही सेर भर आटे का खरच पड़ा करता। रात दिन की हाय २ रहा करती। मैंने भी किस होशियारी से निकाली। वाहरी में। (भाग जाती है)

अंक द्वितिय—दृश्य तीसरा

(पर्दा खुलता है)

(अत्यन्त दुर्बल अवस्था में अंजना बैठी है। पास में वसन्त तिलका सखी भी बैठी है।)

अंजना—(रोती हुई) हाय, आज बाईस वर्ष बीत गये पती के दर्शन नहीं हुवे। माता पिता ने सोच विचार कर मेरे लिये बहुत योग्य वर ढूंढा है। मेरे पती महा निगुण हैं। मेरे पूर्व भव के कर्मों से मुझे दुःख मिल रहा है। क्या मैंने किसी के जोड़ में विघ्न डाला था ? जिसका फल मैं भोग रही हूं। पती में मेरे कोई दोष नहीं वह तो सर्वथा गुणवान हैं।

वसंत तिलका—सखी अंजना, तुम स्त्री रत्न हो ; पती

ने तुम्हें त्याग रखा है। वह इतना बड़ा उनका अपराध भुला कर तुम उलटी उनकी प्रशंसा कर रही हो। धन्य हो तुम्हें। तुम सरीखी स्त्री इस भारत माता की कोख में ही जन्म लेती हैं।

अंजना का गाना

कर्म ने मुझको रुलाया, हाय अबला जान कर।
मुझको प्रीतम ने तजी क्या, दोष मेरा मान कर॥
होगये बाइस बरस, मेरे विवाह को ऐ सखी।
क्या कभी मुझको पती, दर्शन न देंगे आन कर॥
हँस के ना बोले कभी, संग में न मिलकर बात की।
देखा नहीं मेरी तरफ, उनने कभी भी ध्यान धर॥

बसंत तिलका—सखी, धैर्य्य धरो। तुम बाइस बरस से रोते २ इतनी दुर्बल हो गई हो। न मालूम कब तक तुम्हारे भाग्य में और रोना लिखा है। किन्तु अब मुझे आशा होती है कि वह शीघ्र ही तुमसे मिलेंगे।

पवनँ जय—(आकर स्वगत) आज मुझे अपने जीवन में रणभूमी में जाकर कौशल दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ है। रावण वरुण से युद्ध कर रहा है। मैं आज उसकी सहायता के लिये जारहा हूं। मैं वरुण को दिखाऊंगा कि रावण से वैर

करने में क्या फल मिलता है। वीरों के लिये युद्ध से बढ़ कर प्रियवस्तु दूसरी नहीं है। हम रावण के अधिपत्य में हैं वह हमें अपना मित्र समझता है। मैं उसे मित्रता का पूरा साथ देकर दिखा दूंगा। वरुण को उसके चरणों पर न लेटा दूं! तो मेरा नाम भी पवनकुमार नहीं है।

(अन्जना को देख कर चलते से रुक कर)

हे पापिनी तूने मुझे रण में जाते हुवे अपनी सूरत दिखा कर अपशकुन किया है।

(अंजना खड़ी होजाती है पती की ओर देखती है। प्रेम से गद्गद् होती है)

ओ दुष्टा तू बड़े घराने की बेटी होकर भी ढीट बनती है। मेरे सामने से नहीं हटती।

अंजना—आज मेरे अहोभाग्य हैं कि आपने मुझे दर्शन दिये और मुझसे बोले। आप कैसे भी कठोर बचन क्यों न बोलें वही मेरे लिये अमृत रूप है। मैं आपकी दासी हूं। आप मेरे पूज्य देवता हैं।

पवनकुमार—ओ कुल्टा नारी तुझे मुझको युद्ध में विलंब करते हुये लाज नहीं आती

अंजना—हे; प्राणनाथ, जब आप यहां विराजते थे तब भी मैं वियोगनी ही थी किन्तु आपके निकट होने से मेरे

हृदय को शान्ति थी। अब आप दूर जारहे हैं। मैं आपके विरह में कैसे जीऊंगी

पवन०—(अंजना को ठुकरा कर) चल हट कलंकिणी

(चले जाते हैं)

अंजना—हाय, गये, मेरे दिवाकर भगवान अस्ताचल की ओर चले गये न मालूम कब लौट कर आयेंगे। जिस प्रकार दिन, विना सूर्य के। रात्री, विना चन्द्रमा के। नहीं शोभती उसी प्रकार मेरा जीवन भी इस संसार में निष्फल है।

बसंततिलका—सखी धैर्य धरो! इस संसार में दुख के बाद सुख और सुख के वाद् दुख अवश्य आता है। अविनाशी सुख तो केवली भगवान को ही प्राप्त होता है। तुम्हारे बचपन के दिवस सुख से कटे थे। अब तुम्हें दुख मिल रहा है। याद रखो। सुख भी अवश्य ही प्राप्त होगा।

गाना

सदा दिन एकसे बहना, किसी के भी नहीं रहते।
जगत प्राणी कभी सुखपा, कभी अति दुःख हैं सहते॥
ये हैं संसार धोखे का, नहीं इसका भरोसा कुछ।
कभी होकर मगन फूलें, कभी आंखों से जल बहते॥

न घबरावो कभी दुख में, घड़ी सुख की भी आयेगी।
कभी सुख है कभी दुखहै, यही ज्ञानी सदा कहते॥

पर्दा गिरता है।

अंक द्वितिय—दृश्य चौथा

(पवनकुमार और प्रहस्त दोनों आते हैं)

पवनकुमार—मित्र प्रहस्त, हम लोग यहां मानसरोवर पर ठहरे हैं, इसकी भूमी को देख कर मुझे विवाह समय की याद आरही है। अहा उस चकवी को देखो। अपने प्रीतम के न मिलने से कैसी तड़फ रही है। जब इसको पति के एक रात के विरह में ही इतनी तड़फन है तो हाय, उस अंजना सती को जिसे छोड़े हुवे बाइस बरस होगये क्या ढंग होगा। मैं अत्यन्त मूर्ख हूं जो सखी के अपराध पर उस अबला को छोड़े हुवे हूँ। हाय, मेरे बिना वह सती किस प्रकार जीती होगी। मैने उसे इतने कठोर शब्द कहे किन्तु उसने मेरी प्रशंसा ही की। वह सच्ची पतीव्रता स्त्री है। मैं विना उससे मिले अब आगे नहीं बढ़ सकता। रण से लौट कर आने तक वह अवश्य ही अपने प्राण दे देगी।

प्रहस्त—मित्र, तुमने यह बिचार बहुत ही उत्तम किया है। बेचारी अंजना के आज शुभ कर्म का उदय है। जो तुमने ऐसा

विचार किया । किन्तु तुम माता पिता से रण के लिये आज्ञा लेकर आये हो । तुम्हारा अब लौट कर जाना उचित नहीं ।

पवन—किन्तु मेरा तो उससे मिले बिना जीना ही दुर्लभ है । अहा, कैसी प्यारी सूरत है । वह कितनी सुन्दर है । संसार में उसकी बराबरी करने वाली दूसरी नहीं मिलेगी। कितनी कोमल हैं मानो सारी कोमलता की वह कोष है ।

प्रहस्त—मित्र आकुलित न होइये मैं अभी इसका उपाय करता हूं । हम लोगों को यहां से छिपे तौर से जाना पड़ेगा । मैं अभी सेनापती को बुलाता हूं । आप उससे कहना कि हम सुमेरु पर्वत की यात्रा के लिये जारहे हैं । तुम सेना का ठीक प्रबन्ध रखना ।

पवन—अच्छी बात है जाओ ।

(प्रहस्त जाता है । सेनापती सहित आता है ।)

सेनापती—(प्रणाम करके) श्रीमान् ने सेवक को १ पहर रात्री गये किस लिये स्मरण किया है ?

पवन—हम लोग सुमेरु पर्वत की यात्रा के लिये जारहे हैं । सुबह होने तक लौट आयेंगे । तुम सेना का प्रबन्ध ठीक रखना ।

सेनापती—जैसी आज्ञा ।

(सेनापती रह जाता है । दोनों चले जाते है) पर्दा गिरता है

अंक द्वितिय—दृश्य पांचवा

साधू और ब्रह्मचारीजी आते हैं।

ब्रह्मचारी—कहिये साधूजी कुछ देखा ?

सा०—मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि रावण को सहायता देने के लिये हनूमानजी के पिता पवनकुमार क्यों गये ?

ब्र०—साधूजी, मालूम होता है आपके हृदय से अभी यह नहीं गया है कि रावण राक्षस था और हनूमान वानर थे। मैं आपको स्पष्ट कर चुका हूं कि न तो रावण राक्षस ही था और न हनूमान वानर ही थे। राजा लोग हमेशा संकट में एक दूसरे की सहायता करते हैं। रावण ने राजा प्रहलाद के पास सहायता के लिये पत्र भेजा था; सो उसी के लिये वह गये थे।

सा०—अब मैं समझ गया। अगाड़ी तुम क्या क्या और दिखाओगे।

ब्र०—अब हम पहले पवनकुममार का अंजना से मिलन दिखायेंगे। फिर किस प्रकार सासू के दोष लगाने से गर्भवती अंजना घर से निकल कर जंगलों में दुख पाती है। और वहां उसके हनुमानजी जन्म लेते हैं ये दिखायेंगे। इसके पश्चात हनूमानजी की बाल्यावस्था का वृतान्त स्पष्टतया दिखाकर इस भाग को समाप्त करेंगे। अगले भाग में राम के पिता दशरथ का वृत्तान्त और राम की उत्पत्ती दिखायेंगे।

सा०—तो चलिये दिखाइये। मेरा चित्त देखने के लिये उमंगें ले रहा है।

[दोनों जाते हैं पर्दा खुलता है एक पलंग पर अन्जना सो रही है। पास में ही पृथ्वी पर बसंततिलेका सो रही है। अन्जना करवटें बदल रही है। हाय, पतिदेव, कर रही है प्रहस्त अन्दर आता है। अन्जना उठ कर बैठती है बसन्त तिलका को जगाती है]

अंजना—बसंततिलका, बसंततिलका, उठ जाग, देख रात्री के समय में यह कौन पर पुरुष मेरे घर में घुस आया।

[बसन्ततिलका जागती है। आंखे मलती है। प्रहस्त हाथ जोड़ता है]

प्र०—हे सती मैं तुम्हारे पति का मित्र प्रहस्त हूं। तुम डरो मत। मैं तुम्हारे पति के आने की सूचना लाया हूं।

अंजना—मैं महा पुण्यहीन हूं। पती के सुख से कोसों दूर हूं। मेरे ऐसे ही पाप कर्म का उदय है। तुम क्यों मेरी हँसी करते हो। सच है जिसको पती ने ही बिसार दिया उसकी कौन हँसी न करेगा। मैं अभागिनी परम दुखी हूं। मेरे लिये इस सन्सार में सुख कहां ?

प्र०—हे सती रत्न, अब तुम्हारे अशुभ कर्म के उदय गये तुम्हारे प्रेम का प्रेरा हुआ तुम्हारा प्राणनाथ तुमसे मिलने के लिये आया।

अंजना—हैं ! पतिदेव, पतिदेव, (दौड़ कर उनसे चिपट जाती है) बताओ, बताओ, अब तक तुम मुझसे क्यों नहीं बोलते थे। क्यों रूठे हुवे थे। (रोती हुई)

(प्रहस्त और बसन्ततिलका बाहर चले जाते हैं)

पवन—(आंखों में जल भर कर) प्रिये, मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने अभी तक तुम्हें नहीं पहचाना था। चकवी को देखने से तुम्हारे लिये मेरे हृदय में प्रेम के बादल उमड आये।

अंजना—अब मैं आपको अपने से अलग न होने दूंगी।

पवन—नहीं प्रिये, मैं रण में जाते हुवे तुमसे मिलने आया हूं। मुझे माता पिता देखेंगे तो मेरी हंसी करेंगे। मुझे सूर्य निकलने से पहले यहां से चला जाना अत्यन्त आवश्यक है।

(दोनों पलंग पर बैठ जाते हैं। पर्दा गिरता है)

अंक द्वितिय—दृश्य छटा

(रावण और वरुण आते हैं)

रावण—दुष्ट वरुण ! तूने मेरी आज्ञा का लोप किया है समझले अब तेरी मृत्यु निकट है।

वरुण—ओ अभिमानी रावण, जा, युद्ध में तेरे जैसे कायरों का काम नहीं है। यह युद्ध भूमी वीरों के लिये है।

रावण—तुम्हें अभी मेरे बल का पता नहीं है।

सभी भूमी हिला डालूं, मैं अपने शस्त्री बाणों से।

गिरा दूं पर्वतों को मैं, सुखा सागर दूं बाणों से ॥
पता तुमको नहीं कैलाश को मैंने उठाया था ।

वरुण—पता है बालि मुनि ने एक गूंठे से दबाया था ॥
करी तारीफ उसकी लाज तक तुमको न आई है ।
न कर अभिमान उस पर शक्ती जो देवों से पाई है ॥

रावण—यदि बाली मुनि ने दबादिया तो क्या हुआ ।
जो विजयी इन्द्रियों के कौन उनसे जीत सकता है ॥
जिन्हें है आत्म बल उनसे न कोई जीत सकता है ।

यदि तुम देवीशक्ती का ताना देते हो तो मैं तुमसे युद्ध करने में देवी शक्ती का प्रयोग नहीं करूंगा। इन भुजाओं के बल से ही तुझे जीतूंगा तभी मेरा नाम रावण है ।

वरुण—मैं तेरी गीदड़ धमकी में आने वाला नही हूं । यदि कुछ बल रखता है तो मेरे सामने आकर दिखा । वीरों की तरह युद्ध में लड़ कर अपना कौशल दिखा ।

रावण—अधिक बढ़ कर न बोल । तुझे अपने सौ पुत्रों का घमंड है । मेरे आधीनस्थ सब राजाओं को इकट्ठा हो जाने दे । सब आ चुके हैं केवल राजा प्रहलाद अभी तक नहीं आये हैं

पवन— (आकर) राजा प्रहलाद का पुत्र मैं पवनकुमार उपस्थित हूं । मेरे लिये आज्ञा कीजिये कि इसका अभिमान चूर्ण करूं । वीर लोग अपनी भलाई अपने मुख से नहीं करते उनकी

वीरता की परिक्षा रण क्षेत्र में होती है। जो गर्जते हैं वह बरसते नहीं। जो बरसते हैं वह गर्जते नहीं।

रावण—पवनकुमार, तुमको मैं धन्यवाद देता हूं। जो तुमने समय पर आकर मेरी सहायता की। (वरुण से) अब मेरे सब बाहू मेरे साथ हैं। आ युद्ध कर।

वरुण—आज बड़े दिनों के बाद मुझे यह मौका मिला है कि मैं तुझ जैसे वीर पुरूष से युद्ध करने के लिये उद्यत हुआ हूं।

रावण—हे सिद्ध भगवान मैं अपनी कार्य सिद्धी के लिये तुम्हें नमस्कार करता हूं। ॐ नमः सिद्धेभ्य।

(युद्ध का बाजा बजना प्रारम्भ होता है। रावण और वरुण आपस में लड़ रहे हैं। पवनकुमार भी दूसरे योद्धाओं से लड़ रहे हैं। युद्ध का दृश्य भयानक होता है। पर्दा गिरता है)

द्वितिय अंक समाप्त

अंक तृतिय—दृश्य प्रथम

[भयानक वन में पर्वत के नीचे एक शिला पर अंजना बच्चे सहित लेटी हुई है। बसन्तमाला उसके पैर दबा रही है।]

बसन्तमाला—सखी, कर्मों की बड़ी विचित्र गती है। चारण मुनि ने बताया कि तुमने पूर्व भव में जिन प्रतिमा का

अविनय किया था उस ही का फल तुम्हें मिल रहा है। उधर सासू ने दोष लगा कर घर से निकाली। पिता के घर गई वहां भी शरण न मिली। यहां आये मुनी महाराज के दर्शन से कुछ शान्ति मिली। फिर सिंह के पन्जे से बहुत कठिनाई से बचे। ये सब कर्मों का फल है।

अंजना—सखी, मैं तुम्हारी बहुत आभारी हूं कि तुम मुझे हर संकट में सहारा देती हो। हा मेरा भाग्य, जब तक पति देव की कृपा नहीं थी तब मैं किस प्रकार व्याकुल रहती थी। किन्तु फिरभी घर में रहती थी। पति देव की कृपा हुई जिस प्रकार वर्षा ऋतु में कभी सूर्य उदय होकर फिर छिप जाता है। अब मैं बन बन मारी फिर रही हूं।

बसन्तमाला—देखो, सखी ऊपर कोई विद्याधर चला जा रहा है। मुझे तो इससे भय मालूम होता है।

अंजना—हाय, अब यह अवश्य ही मेरे इस पुत्र रत्न को उठा कर लेजायगा। हाय, मेरा कैसा बुरा भाग्य है।

(रोती हुई)

(इतने ही में हनूरुह द्वीप का राजा प्रतिसूर्य। उसकी राणी और ज्योतिषी आते हैं।)

राजा—(अंजना से) मैं ऊपर विमान में बैठा हुआ जा

रहा था । आपका रुदन सुन कर मेरा कलेजा भर आया । मैंने विमान पृथ्वी पर उतारा । आप किसी उच्च कुल की पुत्री तथा वधू प्रतीत होती हो । कृपा करके आप मुझे अपने वन में आने का कुल हाल बताइये ।

अंजना—क्षमा कीजिये, आपत्ती के समय में अपने कुल का नाम बताना उसका नामडुबाना है। मैं अपने मुखसे न कहूंगी।

राजा—(वसन्ततिलका से) ये नहीं बतातीं तो कृपया आप बताइये ?

वसन्तमाला—ये राजा महेंद्र की पुत्री अंजना हैं । आदित्यपुर के राजा प्रहलाद के लड़के पवनकुमार इनके पति हैं । उन्होंने विवाह से बाइस बरस इन्हें छोड़े रखा । किन्तु जब वह रावण की सहायता के लिये जारहे थे । तब मानसरोवर के तट पर चकवी की विव्हलता को देख कर उन्हें अंजना से प्रीति उपजी । वह रात्री में ही छुपे २ अंजना के महल में आये । और अपने कड़े और मुद्रिका इन्हें दे गये । जब इन्हें ६ माह बीत गये । सासू ने इन्हें गर्भवती देख मुद्रिका आदि पर विश्वास न कर इन्हें घर से निकाल दिया । पिता के पास गई वहां भी इन्हें शरण न मिली ! यहां आई इस गुफा में चारण मुनि विराजे थे । उनसे पूर्व भव पूंछा । जब वह यहां से चले गये, तब हम दोनों उसमें रहीं हमें एक सिंह ने सताया जिससे

एक देव ने बचाया ।

राजा—पुत्री, अंजना मने अभी तक तुम्हें नहीं पहचाना था सो क्षमा चाहता हूं । तुम मेरी भानजी हो । मैं हनूरूह द्वीप का राजा प्रतीसूर्य हूं ।

अंजना—(एक दम उठकर) हैं, क्या आप मेरे मामा हैं ? (रोती हुई, मामा के पैर पकड़ती है ।) (मामी उस बच्चे को उठा लेती है)

बसन्तमाला—हे मामीजी, आपके साथ में यह ज्योतिषी जी हैं । कृपया इनसे कहिये कि पुत्र के ग्रह बतावें ।

ज्योतिषी—पुत्री, तुम मुझे यह बताओ कि इसका जन्म किस समय का है ।

बसन्तमाला—आज अर्ध रात्रीको पुत्रका जन्म हुआ है ।

ज्योतिषी—(पत्रा खोल कर) सुनिये, "चैत्र बदी अष्टमी की तिथि का जन्म है । श्रवण नक्षत्र है । सूर्य मेष का उच्च स्थानक विषै बैठा है । और चन्द्रमा वृष का है । और मंगल मकर का है । बुध मीन का है । बृहस्पती कर्क का है । सो उच्च है । शुक्र तथा शनिश्चर दोनों मीन के हैं । सूर्य पूर्ण दृष्टि से शनी को देख रहा है । और मंगल दश विश्वा सूर्य को देखै है । और ब्रहस्पती पन्द्रह विश्वा सूर्य को देखै है । और सूर्य दश विश्वा ब्रहस्पती को देखै है । चन्द्रमा को पूर्ण दृष्टि से

ब्रहस्पती देखे है। ब्रहस्पती को चन्द्रमा देखे है। ब्रहस्पती शनिश्चर को पन्द्रह विश्वा देखे है। और शनिश्चर ब्रहस्पती को दश विश्वा देखे है। और ब्रहस्पति शुक्र को पन्द्रह विश्वा देखे है। और शुक्र ब्रहस्पतीको पंद्रह विश्वा देखे है। इसके सब ही ग्रह बलवान बैठे हैं। सूर्य और मंगल दोनों याका अद्भुत राज्य बतलाते हैं। ब्रहस्पति और शनी बतालाते हैं कि ये वैराग्य को धारण कर मुक्ती पायेंगे। यदि एक ब्रहस्पति ही उच्च स्थान बैठा होय तो सर्व कल्याण की प्राप्ती का कारण है। और ब्रह्म नामा योग है। और मुहूर्त शुभ है। इस लिये यह अविनाशी सुख को प्राप्त करेगा। इसके सबही ग्रह बहुत बलवान हैं। यह बहुत पराक्रमी बालक है।

राजा—आपने इस पुत्र के नक्षत्र बताये। बड़ा उपकार किया। लीजिये यह भेंट स्वीकार कीजिये। (गले का हार देता है) (अंजना से) चलो पुत्री तुम मेरे साथ हनूरूह द्वीप को चलो वहीं यह पुत्र वृद्धी पायेगा।

अंजना—मैं अपने को धन्य समझती हूं जो आप मुझे अपना सहारा दे रहे हैं। हे पुत्र तुम चिरजीवी होओ। तुम्हारे पैदा होते ही मेरे सारे दुःख नष्ट होते दिखाई दे रहे हैं।

(सब चले जाते हैं। कुछ देर बाद उस पर्वत पर हनूमान आकर गिरते हैं। पर्वत फट जाता है। हनूमान एक

शिला पर पड़े हुवे पैर का अंगूठा चूसने लग जाते हैं ऊपर से सब हा हा कार मचाते हैं। अंजना रोती है)

अंजना—हाय, अनेकों दुख सह कर यह पुत्र प्राप्त हुआ था। मैं अभागिनी इसे भी खो बैठी। हाय मेरा कैसा बुरा भाग्य है। (सब उतर कर आते हैं) (राजा पुत्र को देख कर आश्चर्य करता है)

राजा—धन्य है इस बालक को। इसके गिरने से पर्वत चूर २ होगया। यह अवश्य ही चर्म शरीरी और मोक्ष का गामी है।

अंजना—(गोद में उठा कर) मेरे लाडले बच्चे, (आंसू पूंछती हुई मुंह चूमती है)

राजा—यह बालक बन्दनीक है। हम सब इसको नमस्कार करते हैं। मैं इसका नाम श्री शैल रखता हूं। क्योंकि इसके गिरने से शैल जो पर्वत वह चूर २ होगया।

अंजना—यह हनूरूह द्वीप में वृद्धि पाने जा रहा है। इस लिये मैं इसका नाम हनूमान रखती हूं।

ज्योतिषी—आप लोग कुछ भी नाम रखें। मैं तो इसे बज्रांग कह कर पुकारूंगा। क्यों कि मुझे इसके समान बल में इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं दीखता।

बसन्तमाला—ऐसे होनहार बालक को जिस नाम से भी पुकारा जाय वही इसके लिये उत्तम है। ये महावीर। है

राजा—अच्छा चलो, अब हम सब लोग चलें।

(सब चले जाते हैं। पर्दा गिरता है)

अंक तृतिय—दृश्य द्वितिय

कौमिक

(अगाड़ी एक लंगड़ा घिसटता चल रहा है। उसके पीछे उसकी अन्धी औरत है उसके पीछे उसका अन्धा लड़का है)

गाना

देदे देदे रे बाबा देदे।
अन्धों को पैसा देदे।
मुहताज को पैसा देदे।
लंगड़े को पैसा देदे।
देदे देदे रे बाबा देदे।

(फटे कपड़े पहने हुवे हाथ मे लकड़ी लिये हुवे अन्धी के रूप में बहू पैसा मांगती हुई आती है। उसकी लकड़ी लंगडे के लग जाती है। लंगड़ा उससे लकड़ी छीन कर उसे मारता है।)

बहू—अरे कोई बचाओ २ इस दुष्ट ने मुझे मार डाला हायरे, बारे, मरी रे।

लोभीलाल—अन्धी बूच, तुझे दीखता नहीं। सामने

लकड़ी घुमाती हुई चलती है ।

औरत—अगर मैं समाकी होती तो चूंडा पकड़ कर घसीटती ।

बहू—अरी मरी री, हायरी, कोई बचाओ ये मुझ अन्धी को मारे डालते हैं ।

१ आदमी—(आकर) ये क्या हल्ला मचा रखा है ? क्यों भाई तुम इस बेचारी को क्यों मारते हो ।

लोभीलाल—अजी साहब, ये औरत देख कर भी नहीं चलती ।

बहू—देखकर चलती तो अन्धी ही क्यों कहाती ।

आदमी—क्यों भाई तुम कौन हो और तुम्हारी ये दशा किस प्रकार से हुई ।

लोभीलाल—क्या कहूं, एक बार मैं सैकिंड क्लास में बैठा हुआ जा रहा था, मेरे कपड़े मैले देखकर एक अंग्रेजने मुझे उसमें से धक्का दे दिया सो मेरी टांग टूट गई । उसमें सारा रुपया खर्च होगया ।

आदमी—और तुम्हारा ये लड़का और स्त्री कैसे अन्धी होगई ।

लोभीलाल—ये चाट बहुत खाते थे सो इसकी आंखें खराब होगई । मेरे पास इस समय एक छदाम भी नहीं है ।

आदमी—(बहू से) क्यों बहन तुम किस प्रकार इस दशा को पहुंची !

बहू—ये दुष्ट मेरे माता पिता हैं। इन्होंने मुझे दो हजार में एक बूढ़े से व्याह दी मेरी बड़ी बहनों को भी इसने बूढ़ों से व्याही उसीका नतीजा ये इस रूप में भुगत रहे हैं। व्याहके ६ महीने बाद ही में मेरा पति मर गया मैं विधवा होगई।

आदमी—हाय, हाय, मैं भारत की अबलाओं की यह क्या दशा सुन रहा हूं।

औरत—उसके तीनों लड़कों ने मुझे घर से निकालदी। मेरी आंखें फूट गई मैं अन्धी हो गई मुझे कोई सहारा न रहा और आज मेरी यह अवस्था हो रही है।

आदमी—हाय, आज. भारत की क्या दुर्दशा हो रही है। बूढ़े कन्याओं से विवाह करके उन्हे विधवा बनाते हैं जिसका एक साक्षात परिणाम यह उपस्थित है। अन्धे माता पिता इस बात को नहीं सोचते कि अगाड़ी क्या होना है। लालच में आकर मुफ्त का पैसा खाने के लिये बूढ़ों के साथ कन्याओं को बेच देते हैं। आज कल वैवाहिक दोष दिनों दिन उन्नती कर रहे हैं। बी. ए. पास लड़की को उसका बाप किसी बनिये के हाथ व्याहता है जो नित्य प्रति अपने पती से बैठकें लगवाती हैं। और उसे अपना गुलाम बना कर रखती हैं। जब तर्क यह

कुप्रथायें बन्द न होंगी भारत की उन्नति होना असम्भव है। माता पिता जिसके निर्दोष होते हैं सन्तान भी हनूमान के समान निर्दोष पैदा होती है।

पर्दा गिरता है।

अंक तृतिय—दृश्य तृतिय

(अन्जना और पवनकुमार बैठे हुवे हैं)

अंजना—मैं आपके दर्शन पाकर अपने सारे दुख भूल गई।

पवन—मैं क्षमा चाहता हूं कि तुम्हें मेरे ही कारण इतने कष्ट उठाने पड़े। दुष्ट माता ने तुम्हें घर से निकाला। आह जब मैं तुम्हारे दुखों के ऊपर ध्यान करता हूं तो मेरा दिल दहलता है वह शेर कितना भयानक होगा?

अंजना—मेरे तो यह सब दुष्कर्मों का उदय था जो मैंने अभी तक भोगे! किन्तु आपसे मिलने की आशा में मैं अपने प्राण रखे रही। आपने मेरे लिये कितने कष्ट सहे। बन २ में मुझे ढूंढते फिरे। मेरे विरह में सब कुछ त्याग दिया आपका मेरे ऊपर अतुल्य प्रेम है।

पवन—तुम्हारे मामाजी यदि न पहुंचते तो सचमुच मेरी जान चली जाती उनकी मेरे ऊपर कितनी असीम कृपा है! मुझे वह यहां लाये तुमसे मिलाप कराया।

अपराध नहीं किया जो उसे सताया जाय!

वरुण—सचमुच रावण। तुम महा उदार मनुष्य हो। तुम से जो वैर करे वह मूर्ख है। तुम वीरता नीति क्षमा के अवतार हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं। और प्रतिज्ञा करता हुं कि अब कभी तुमसे युद्ध न करुंगा।

रावण—(सिपाही से) इनके बन्धन खोलदो।

(बन्धन खुलने पर वरुण रावण के पैर छूना चाहता है किन्तु रावण नहीं छूने देता। अपने कलेजे से लगाता है)

तुम मेरे छोटे भाईके समान हो। तुम्हें मैं हृदय से लगाता हूं। हमारी तुम्हारी शत्रुता युद्ध में थी अब नहीं रही। अब भाई २ का व्यवहार है। हनूमान तुम इनके पुत्रों को बन्धन से मुक्त करो।

हनूमान—जैसी आज्ञा (सिपाहीसे) इनके सब पुत्रों को जाकर छोड़दो।

वरुण—रावण मैं आपसे अत्यन्त प्रसन्न हूं। मैं अपनी पुत्री की सगाई आपसे करता हूं। मुझे हनूमान का बल देख कर आश्चर्य होता है, ये बहुत ही महापुरुष हैं,

रावण—पुत्र हनूमान, तुम हमें बताओ तुमने कितनी विद्यायें साधी हैं।

हनूमान—मैंने आपकी कृपा से अब तक केवल ९९ विद्यायें साधी हैं।

रावण—मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम्हें मैं अपनी बहन की पुत्री की सगाई करता हूं। और कुण्डलपुर का राज्य देता हूं!

हनूमान—आप मेरे लिये इतना सन्मान दे रहे हैं! मैं अपना सौभाग्य मानता हूं।

ड्राप गिरता है

द्वितिय भाग समाप्त

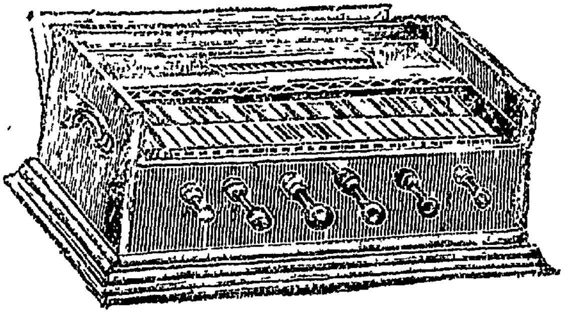

श्री जैन नाटकीय रामायण

तृतिय भाग

अंक प्रथम—दृश्य प्रथम

स्थान—स्वयंबर

(सब राजा लोग बैठे हुवे हैं। बीच में शुभ मती
केकई का पिता बैठा है। परियां आती हैं।
गाती हुई और नाचती हुई)

गाना

गाओ मंगल मनाओ महेश से हां
स्वयंवर है सखी, सुकुमारी का।
शुभ मती अरु पृथू की दुलारी का॥
आये राजा सभी देश देश से हां
शोभते हैं मुकुट शीश रत्नों के।

शोभते राज में ढेर रत्नों के ॥
शोभती है सभा भेष, भेष से हां। आये०

(केकई को आते देख कर)

कौमुदी सी लखो केकई आगई।
देवियों सी दिपै, सुन्दरी आगई ॥
सूर्य फीका हुआ, इनके तेज से हां। आये०

(सब गाकर चली जाती हैं। एक द्वारपाल खड़ा होकर कहता है)

द्वारपाल—हे देश विदेश से आये हुवे महाराजाओं। आपको इस कौतुक मंगल नामक नगर में इस लिये कष्ट दिया गया है कि श्रीमान महाराजा शुभमती जिनकी महाराणी पृथु श्री की केकई नामकी कन्या आप लोगों में से अपने लिये वर वरे।

सखी—(केकई से) हे कुमारी ये जनकपुरी से आये हुवे महाराज जनक हैं। (दूसरे को बताकर) ये अयोध्यापुरी से आये हुवे महाराज दशरथ हैं। ये सर्व गुण सम्पन्न सर्व विद्याओं में निपुण तथा सब भांति से योग्य हैं।

(केकई राजा दशरथ के गले में वर माला डाल देती है)

१ राजा—हमें दशरथ और केकई का जोड़ा देखकर अत्यन्त हर्ष है। जैसी योग्य कन्या है वैसा ही उसे वर मिला है;

हम इस युगल की वृद्धी की भावना भाते हैं।

२ रा राजा—(क्रोध से) ऐ शुभमती, तेरी कन्या महा निर्लज्ज है। बड़े बड़े योग्य राजाओं के होते हुवे इसने एक विदेशी के गले में जिसका कोई ठिकाना नहीं, वर माला डाली है। हम इस कन्या को बलात हर कर ले जायेंगे।

३ रा राजा—नहीं आपको यह नहीं चाहिये। कन्या ने जिसे अपना पति बना लिया है वही उसका पती है, चाहे वह कैसा भी क्यों न हो।

२ रा राजा—नहीं हम कभी इस बातको स्वीकार नहीं करे सकते। शुभमती को हमसे युद्ध करना पड़ेगा।

शुभमती—(दशरथ से) हे राजा दशरथ आप रथ में बिठाकर केकई को लेजाइये। मैं इससे यहां युद्ध करता हूं।

दशरथ—कदापि नहीं। मैं इस दुष्ट को स्वयं मार भगाऊंगा, इसके सारे अभिप्रायों को धूल में मिलादूंगा।

केकई—पिताजी, आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं पति देव के लिये रथ लाऊं।

शुभमती—जाओ शीघ्रता से रथ लेकर आओ। तुम युद्ध विद्या में निपुण हो। आज तुम्हारी परीक्षा है। तुम्हें ही रथका सार्थी बनना पड़ेगा।

केकई—जो आज्ञा (चली जाती है)

२ रा राजा—अरे दशरथ ! तू क्या घमंड करता है। ये तेरा यौवन मैं क्षणभर में मिटा दूंगा। तुझे पृथ्वी पर सुला दूंगा।

दशरथ—तुम नीच हो जो ऐसा कार्य करते हो तुम्हें अभी हारकर भागना पड़ेगा। वीरों की यह नीती नहीं होती कि पर स्त्री को हरने के लिये वह उद्यम करें। यदि केकई को लेना था तो स्ववंम्बर न होने देते। महाराज शुभमती से पहले ही उसे क्यों न मांगली ?

२ राजा—पत्नी नहीं वह अभी क्वांरी है। मैं उसे अवश्य ही हर कर ले जाउंगा।

दशरथ—मालूम होता है कि आप किसी पाठशाला में नहीं पढ़े हैं। घोड़ों की घुड़साल में बंधे हैं। आपको यह भी मालूम नहीं कि कन्या जिस समय बर के गले में बर माला डाल देती है वह उसी समय से पत्नी कहलाने लगती है।

२ राजा—मालूम होता है तेरी मृत्यु निकट है जो तू ऐसे अपमान के बचन बोलता है।

दशरथ—कहने से क्या होता है यह तो अभी मालुम हो जायगा।

(केकई रथ लाती है। वह रथ में अगाड़ी बैठी है। घोड़ों की रस्सी सम्हाल रखी है)

केकई—आइये, रथ में बैठ कर युद्ध कीजिये । इस पापी को इसकी धूर्त्तता का फल दीजिये ।(दशरथ रथमें बैठता है)

कहिये किधर को ओर रथ चलाऊं ?

दशरथ—रथ उसी ओर चलाओ जिस ओर से यह अभिमानी मारा जा सके ।

(रथ चलता है युद्ध होता है पर्दा गिरता है ।)

अंक प्रथम—दृश्य द्वितिय

कौमिक

(एक मारवाड़ी फेशन में सेठजी आते हैं)

सेठजी—जहां देखो आज कल शिक्षा का बोल बाला है वास्तव में शिक्षा ही एक ऐसा विषय है । जो मनुष्य को मनुष्य बना देता है । दूसरे देशों में स्त्री शिक्षा का कितना अधिक प्रचार है । वहां पर स्त्रियों को समान अधिकार दिये जाते हैं । स्त्रियां स्वतन्त्रता पूर्वक गमन करती हैं । हे ईश्वर हमारे भारतवर्ष को वह घड़ी कब प्राप्त होगी ?

१ सज्जन—(आकर) हे ईश्वर भारत को कभी भी वह घड़ी प्राप्त न हो जिसमें स्त्रियों के मुंह पर बारह बजने लगें ।

सेठजी—मालूम होता है आप स्त्री शिक्षा के विरोधी हैं ।

सज्जन—मालूम होता है आप स्त्री शिक्षा के पोषक हैं।

सेठजी—ऐसे शुभ कार्य का पोषक कौन नहीं होगा। दूसरे देशों में स्त्री शिक्षा का कितना अधिक प्रचार है।

सज्जन—मैं मानता हूं कि दूसरे देशों में स्त्री शिक्षा का अत्यधिक प्रचार है और बिना स्त्री शिक्षा के प्रचार के कोई देश उन्नत भी नहीं हो सकता। किन्तु····

सेठजी—किन्तु क्या ?

सज्जन—वह यह कि दूसरे देशों में स्त्रियों को वहीं की भाषा सिखाई जाती है। वहां पर मुश्किल से एक करोड़ एक में एक स्त्री ऐसी निकलेगी जो विदेशी भाषा पढती हो। किन्तु भारत बर्ष की देवियां केवल अपना जीवन अधर्म के गढ़े में डालने के उद्देश्य से विदेशी भाषा पढ़ती हैं। इसका आज कल जो परिणाम हो रहा है वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। दूसरे देशों में जहां पर विवेक का और शील का नाम मात्र भी नहीं वहां का दृष्टांत सामने रख कर बालिकाओं को बिगाड़ना ये कहां का न्याय है।

सेठजी—जब आप विदेशी भाषा का इतना विरोध करते हैं तो पुरुष उसे क्यों पढ़ते हैं ? जिस काम को पुरुष करें उस काम को स्त्रियों को क्यों नहीं करना चाहिये ?

सज्जन—आज कल हमारे देश में विदेशियों का शासन है। उनके कार्य की समालोचना करने के लिये हमें उनकी भाषा पढ़नी आवश्यक है। किंतु फिर भी पुरुषों को चाहिये कि विदेशी भाषा पढ़ते हुवे भी अपने देषी विवेक और सभ्यता को न त्यागें। आपने कहा कि जिस कार्य को पुरुष करते हैं उसको स्त्रियां क्यों नहीं कर सकतीं? सुनिये। पुरुष युद्ध करते हैं। स्त्रियां क्यों नहीं करतीं? पुरुष व्यापार करते हैं स्त्रियां क्यों नहीं करतीं? पुरुष तपस्या करते हैं स्त्रियां क्यों नहीं करतीं? क्योंकि उनमें बल वुद्धी पूर्वापर विचार सहन शीलता आदि गुण नहीं होते।

सेठजी—झांसी की महारानी ने युद्ध किया था। मीरा बाई ने तपस्या की थी उन्हें आप बिल्कुल भुला ही रहे हैं।

सज्जन—एक हजार पुरुषों का दृष्टांत जहां उपस्थित हो वहां यदि १ स्त्री का दृष्टांत आजाय तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि वह कार्य सब स्त्रियों ने किया होगा।

सेठजी—तो मैं क्या करूं, मैं तो अपनी लड़कीको कालेज में पढ़ा रहा हूं। इससाल वह बी. ए. के तीसरे वर्ष है में। यदि उससे कहूं कि पढ़ना छोड़ दे तो भी वह नहीं छोड़ती। भाई मेरे पास रुपया है तो मैंने सोचा कि उसे इसी तरह सदुपयोग

में लगाना चाहिये। शिक्षा की बराबर कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है।'

सज्जन—आपकी पुत्री की आयू इस समय कितनी होगी।

सेठजी—उसकी आयु इस समय बाईस वर्ष की है।

सज्जन—उसके पती क्या कार्य करते हैं। तथा उसके कितने बच्चे हैं?

सेठजी—वह कहती है कि मैं महारानी ऐलीजाबेथ सरीखी कुवांरी ही रहूंगी। इस लिये उसने अभी तक ब्याह नहीं कराया है।

सज्जन—किन्तु आप उसकी बातों में आगये न?

सेठजी—तो आप ही बताइये मैं क्या करूं?

सज्जन—आप याद रखिये! वह आपके माथे पर कलंक का टीका लगाने की तैयारी कर रही है।

सेठजी—कहीं शिक्षा देने का भी ऐसा बुरा परिणाम होता है? आप कृपया ऐसे शब्द मुंह से न निकालिये। वरना आपके लिये बुरा होगा।

सज्जन—ये तो आप स्वयं देखलगे कि बुरा होगा या अच्छा और किसके लिये होगा। क्षमा कीजिये मैं जाता हूं।

(चला जाता है।)

सेठजी—मुझे भी आज कल कुछ छोरी के बुरे ढंग दीख रहे हैं। हे ईश्वर मेरी छोरी को सदा सुबुद्धि हो।

छोरी—(आकर) फादर आप सदा मेरे लिये ईश्वर से भला चाहते हैं। आपकी बराबर इस दुनिया में मेरा दूसरा हित चिन्तक नहीं है।

सेठजी—कहो बेटी मोहनी आज कल तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है।

मोहिनी—पिताजी मेरी पढ़ाई आज कल बहुत अच्छी चल रही है। कालेज का प्रिंसिपल और सब प्रोफेसर मुझे बहुत चाहते हैं। मैंने एक समय सभा में कालेज छोड़ने का प्रस्ताव रखा था इस पर वो लोग रंज करने लगे और मुझे कालेज में रहने के लिये सबने विवश किया। आज मुझे फिर एक मीटिंग में जाना है। मैं आपको इनफार्म करने आई हूं ताकि मेरे जाने पर आप मुझे ढूंढते न फिरें।

सेठजी—इनफार्म किसे कहते हैं।

मोहिनी—(हँसकर) पिताजी आप बहुत भोले हैं। कहिये तो मैं आपको एक घंटा इंगलिश पढ़ा दिया करूं। इनफार्म कहते हैं इत्तला करना।

सेठजी—मोहिनी! यदि तू बजाय इत्तिला के आज्ञा शब्द कहती तो क्या हर्ज था?

मोहिनी—पिताजी आपने मुझे पहले से ही कह रखा है कि मुझे आज्ञा लेने की कोई आवश्यक्ता नहीं है। दूसरे यदि मैं आज्ञा मांगूं और आप न दें, तो मेरा जाना रुक जाय। कहिये मैं चली जाऊं न मीटिंग में ?

सेठजी—(स्वगत) बस अब ये छोरी बिगड़ गई। वास्तव में मेरे सिर पर कलंक का टीका लगायेगी।

मोहिनी—पिताजी ! आप क्या सोच रहे हैं। मुझे उत्तर दीजिये। मीटिंग के लिये देर होरही है।

सेठजी—आज मेरी कुछ तबियत खराब है। मैं चाहता हूं कि तुम आज कहीं मत जाओ।

मोहिनी—आपकी तबियत में मैं क्या कर सकती हूं। आप मुझे मीटिंग में जाने से क्यों रोकते हैं। आप कहें तो मैं उधर से उधर ही डाक्टर को बुलाती लाऊंगी।

सेठजी—मोहिनी मैं तुम्हारा पिता हूं। क्या तुम आज इतना भी नहीं कर सकती कि मेरे लिये रुक जाओ।

मोहिनी—यदि मैं किसी बुरे काम के लिये जाती हो तो आप मुझे रोकते। अब मैं कदापि नहीं रुक सकती हूं।

गुडबाई (चली जाती है)

सेठजी—इन सुधार कों का—नाश—हो ! इन्होंने मुझे

भपारे पर चढा २ कर मेरा घर बर्बाद कर दिया।

(चला जाता है। मोहिनी दूसरी ओर से सतीष को साथ लिये हुवे आती है)

मोहनी—सतीष देखो तुम और मैं दोनों एक दूसरे के प्रेम में जकड़े हुवे हैं। दोनों में से किसी का भी बिवाह नहीं हुआ है। दोनों एक ही क्लास के हैं।

सतीष—किन्तु तुम्हें अपने दिये हुये टायम से २ मिनट की देर क्यों होगई?

मोहिनी—उस बूढे बापने तबियत खराब का ढोंग बनाकर मुझे रोकना चाहा था। इसी से देर होगई। मैं क्षमा चाहती हूं।

सतीष—मेरी तबियत तो इस समय मिल कर गाने को चाहती है। आपकी क्या राय है?

मोहनी—क्या मोहनी कभी गाने में आज तक पीछे हटी है?

सतीष—तो शुरू कीजिये।

मोहिनी—प्रस्ताव आपका ही है। आप ही नेता बनिये।

(दोनों मिल कर गाते और अंग्रेजी नाच नाचते हैं)

गाना

सतीष—मोहिनी मोह लिया तेरे काले बालों ने।

मोय घायल है किया तेरी नोखी चालों ने ॥
मोय प्रेमी बना भरमायारे ॥ मोय ० ॥

मोहनी—अधकटी मूंछ तुम्हारी है गजब का चेहरा।
जब से कालिज में गई मोह लिया मन मेरा ॥
मोय रूप तेरा यह भाया रे ॥ मोय ० ॥

दोनों साथ (एक दूसरे से)

तुम ही ने पहले मुझे प्रेम में फंसाया है ।
झूठ बोलो हो तुम्हीने तो ये सिखाया है ।
खर जाने दो ये झूठी मायारे ।
प्रेमियों के निकट प्रेम आया रे ॥

(दोनों भाग जाते है)

अंक प्रथम—दृश्य तृतिय

(ब्रह्मचारी और साधू आते हैं)

ब्र०—कहिये साधूजी आपकी सब समझ में आ रहा है न ?

साधु—जब दशरथजी का स्वयंवर में दूसरे राजाओं से युद्ध हुआ तो उसके पश्चात क्या हुआ ।

ब्र०—सुनिये जिस समय स्वयंबर में युद्ध छिड़ा उस समय

केकई की चतुरता से और अपने पराक्रम से महाराज दशरथ ने सबों को मार भगाया। पश्चात केकई के गुणों से प्रसन्न होकर वर मांगने को कहा। केकई ने उस वर को राजा के पास धरो हर रख दिया। इसके पश्चात अयोध्या में इनकी सब से बड़ी रानी कौशल्या से श्री रामचन्द्र का जन्म हुआ। जिन्हें पद्म और बलभद्र भी कहते हैं। इसके पश्चात सुमित्रा से लक्ष्मण का जन्म हुआ। केकई से भरत का जन्म हुआ। और सब से छोटी रानी सुप्रभा से शत्रुघन का जन्म हुआ।

साधु—रामायण में तो शत्रुघन का जन्म सुमित्रा से ही बताया है।

ब्र०—रामायण की प्रत्येक बात सच नहीं मानी जा सकती। किन्तु जैन शास्त्र पद्मपुराण ऐसे आचार्य के द्वारा लिखा गया है जो स्वार्थ से बिल्कुल परे थे। जिनको इतना ज्ञान प्राप्त था। कि वो भूत काल सम्बन्धी बातों को स्पष्ट जान सकते थे। हमें उन्हीं के वचन प्रमाण हैं।

सा०—अब आप कृपा करके सीता के विषय में दिखलाईये

ब्र०—पहले रामचन्द्र और तीनों भाइयों की विद्या प्राप्ती दृश्य दिखा कर फिर सीता के विषय में दिखलाउंगा। यह पद्म पुराण बहुत बड़ा शास्त्र है। यदि इस की एक एक बात स्टेज पर दिखाई जाय तो करीब एक माह चाहिये। इस लिये मैं जनक

और उनकी रानी विदेहा के विषय में आपको परिचय कराये देता हूं । सुनिये !

सा०—कहिये मैं बराबर सुन रहा हूं ।

ब्र०—राजा जनक की स्त्री विदेहा के गर्भ से पुत्र और पुत्री का जन्म हुआ । कोई देव पूर्व काल के वैर से उसके पुत्र को उठा लेगया । और मारना चाहा किन्तु फिर उसे दया आ गई । और उसे गहने पहना कर जंगल में छोड़ गया । कोई एक परणलब्धी नामक विद्याधर उस रास्ते से आया । और वह उसको उठा लेगया । और अपनी स्त्री को दे कर अति लाड़ प्यार से उसे पाला । उसका नाम भामंडल रखा । इधर पुत्र का हरण देख कर रानी विदेहा कैसे २ विलाप करती है । इसको इस दृश्य के पश्चात दिखाया जायगा ?

सा०—रामायण में केवल सीता का जन्म ही दिखाया है किन्तु आपने उसके विषय में सब बता दिया । एक बात यह पूछनी है कि सीता को वैदेही कहा है क्यों कि वह किसी के देह से उत्पन्न नहीं हुई थी । हल चलाते हुवे खेत में गड़ी हुई मिली थी । यह क्या बात है ?

ब्र०—सुनिये, सीता का नाम वैदेही इस लिये पड़ा है कि वह विदेहा रानी की पुत्री थी । हल चलाते हुवे पृथ्वी में से सीता निकली ! यह बात असंभव है ।

सा०—मैं भी यही सोच रहा था कि यह बात सम्भव नहीं हो सकती। चलिये खेल शुरु होने दीजिये।

(दोनों चले जाते हैं)

अंक प्रथम—दृश्य चौथा

(गुरुजी बालकों को पढ़ा रहे हैं। पहले स्वयं
बोलते हैं। फिर बालक बोलते हैं)

कक्का कितना ही भय आवे, क्षत्री पुत्र नहीं घबरावे।
खख्खा ख्याल प्रजा का राखे, स्वयं चाहे वो दुःख उठावे।
गग्गा ज्ञान धरम नित पाले, झूठ बचन मुख से नहीं काले।
घघ्घा घर पर के नहीं जावे, पर नारी से शील बचावे।
चच्चा चाहे जावें प्रान, जाय ना पर क्षत्री आन।
छच्छा छोटों से रख प्रेम, पालन कर वृद्धों का नेम।
जज्जा जीव दया नित पाल, दुष्टों से दुखियों को काल।
झज्झा झूठा सब संसार, जीव दुखी हों बारंबार।
टट्टा टूटें कर्म किंवाड़, खुल जावे मुक्ती की आड़।

गुरु—अच्छा रामचन्द्र बताओ कि पांच पाप कौन से हैं ?

रामचन्द्र—सुनिये !

मन वच काया से जीवों को दुख देना हिंसा कहते।
माया रचना अप्रिय कहना झूंठ बचन इसको कहते।

गुरु—लक्ष्मण अगाड़ी तुम बोलो।

लक्ष्मण—विना दिये पर वस्तू लेना, नाम इसी का चोरी है। व्यभिचार है पाप चतुर्थ नर जीवन की डोरी है।

गुरु—भरत अगाड़ी तुम बोलो।

भरत—इच्छित वस्तू खूब बढ़ाना, परिग्रह कहलाता है। इन पापों का सेवन वाला, नर नरकों में जाता है।

गुरु—शत्रुघन तुम चारों कषायों के नाम बोलो।

शत्रुघन—क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय हैं। इनके वश होकर जीव अनेक दुःख पाता है।

गुरु—रामचन्द्र, तुम बताओ कि शिकार खेलना चाहिये या नहीं?

रामचन्द्र—गुरुजी! शिकार इस लिये नहीं खेलना चाहिये कि इससे बेचारे अनाथ असहाय और दीन पशुओं का वध होता है।

गुरु—युद्ध करना चाहिये या नहीं? बताओ लक्ष्मण!

लक्ष्मण—यदि अपने देश अपने धर्म, अपनी जाति और अपने बन्धुओं पर कोई आपत्ति आ रही हो तो उससे बचने के लिये युद्ध अवश्य करना चाहिये।

गुरु—किन्तु उसमें लाखों मनुष्यों का वध होता है।

लक्ष्मण—मैंने माना कि उसमें वध होता है और वो

हिंसा है, किन्तु हमारा जैन धर्म यह नहीं बताता कि आपत्ति के काल में मुंह छिपाकर कायर बनकर बैठ जाना ग्रहस्थी लोग अणुव्रती होते हैं। उनसे जो ग्रहस्थी में पाप होते हैं। वह उन्हें विवश होकर करने पड़ते हैं। यह बात अवश्य है कि हमें किसी पर बलात्कार नहीं करना चाहिये। किसी का धन देश या नारी हड़पने के लिये युद्ध करना जिन धर्म के खिलाफ है।

गुरु—वास्तव में लक्ष्मण तुम नीति और धर्म शास्त्र में निपुण हो। जाओ अब मैं तुम्हें छुट्टी देता हूं।

(सब बच्चे भाग जाते हैं पर्दा गिरता है)

अंक प्रथम—दृश्य पांचवां

(विदेहा रानी तुरत की पैदा हुई सीता को लिये सो रही है। जाग कर पुत्र को देखती है उसे न देख कर वह व्याकुल होती है। पलंग के नीचे देखती है। दासी को बुलाती है)

विदेहा—कमला ! कमला ! जल्दी आ।

कमला—(आकर) क्या आज्ञा है महारानी जी ?

विदेहा—जा सारे महलमें मेरे पुत्र को ढूंढ। न मालुम कौन मेरे पास से सोते हुये पुत्र को उठा ले गया ? (कमला जाती है। मेरे बच्चे को कौन उठा लेगया ? हाय ! मैं क्या करूं। उसे कहां ढूंढूं। (कमला आती है) क्यों लाई मेरे बच्चे को ?

कमला—महारानीजी महल में तो कहीं नहीं है । पहरे दारों से पूंछा वो भी कहते हैं कि यहां कोई भी नहीं आया ।

बिदेहा—तब तो अवश्य ही उसे कोई देव उठा कर ले गया । अरे दुष्ट! तू मुझे भी मेरे बच्चे सहित क्यों न उठा लेगया हाय न मालूम मेरा बच्चा किस अवस्था में कहां होगा ? नौ माह तक कष्ट सहा किन्तु फिर भी पुत्र का मुख न देख सकी । हाय पुत्र का हरण मेरे लिये मरण तुल्य है । न मालूम उस दुष्ट देव ने उसे कहां पटका होगा (रोती है)

जनक—(आकर) क्यों कमला ! तुम्हारी महारानी क्यों रोती हैं ?

कमला—महाराजाधिराज, रात्री को महारानी के सोतेहुये इनके पुत्र को कोई दुष्ट देव हर कर ले गया है । इसीसे ये इतनी व्याकुल हैं ।

जनक—संसार में हर एक प्रकार का बियोग सहा जा सकता है । किन्तु स्त्रियों के लिये पती और पुत्र का वियोग असह्य होता है । मेरे राज्य का तो दीपक ही बुझ गया (दुखी होता है) नहीं, नहीं, इस समय मुझे स्वयं न दुखी होना चाहिये । किन्तु दुखसागर में डूबी हुई रानी को समझाना चाहिये

विदेहा—हे स्वामी! आप किसी प्रकार मुझे पुत्रसे मिलाओ, मैं उसके बिना नहीं रह सकती ।

जनक---प्रिये तुम चिन्ता न करो। तुम्हारा पुत्र बहुत सुख से है। वह कहीं न कहीं पर अवश्य वृद्धी पा रहा होगा। मैं तुम्हें उससे अवश्य मिलाउंगा। इस पुत्री को ही पुत्र मान कर धैर्य धारण करो।

विदेहा का गाना

किस तरह धीरज धरूं, जब पुत्र ही मेरा नहीं।
गाय को बछड़े बिना क्या चैन आती है कहीं॥
नौ महीने कष्ट सह कर लाल पा कर खो दिया।
होगये दोनों अलग हैं वो कहीं और मैं कहीं।
जान सकती हैं व्यथा मेरी वही बस नारियां॥
पुत्र जिन ने एक पाकर खोदिया अब रो रहीं।
जन्म लेता ही नहीं तो धीर मुझको थी यही॥
किन्तु हो करके उदय वो छिप गया जा कर कहीं॥

पर्दा गिरता है

अंक प्रथम—दृश्य छटा

(महाराजा दशरथ का दर्बार। राम लक्ष्मण भी बैठे हैं)

१ दूत—(आकर) महाराजाधिराज की जय हो। जनक पुरी से एक दूत आया है।

दशरथ—उसे तुरन्त मेरे सामने उपस्थित करो। (दूत जाता है जनक का दूत आता है।) कहो क्या समाचार लेकर आये हो?

दूत—महाराजाधिराज की जय हो। कैलाश पर्वत के उत्तर की ओर म्लेच्छ लोगों का वास है। सातों व्यसन उनमें पाये जाते हैं। कुछ ही दिन हुवे कि महाराजा जनक का पुत्र किसी देव के द्वारा हरा गया था। उसके दुख से वो दुखी थे कि इतने में ही म्लेच्छ लोग बहुत बड़ी सेना लेकर सारे आर्य देशों को उजाड़ते हुवे मिथिलापुरी आगये हैं। वहां पर वो घोर उपद्रव मचा रहे हैं। किसी के द्वारा जीते नहीं जाते। सबको अपने ही धर्म में मिलाना चाहते हैं। आपसे उन्हें भगाने के लिये महाराज ने प्रार्थना की है।

दशरथ—पुत्र पद्म तुम राज्य का भार सम्हालो। मैं जाकर उनको भगा कर आता हूं। यदि मैं युद्ध में मारा भी गया तो कोई चिन्ता नहीं। क्षत्रियों का धर्म ही युद्ध करना है।

रामचन्द्र—यह कदापि नहीं हो सकता कि मेरे होते हुवे आप युद्ध के लिये जांय। मैं जाकर उन म्लेच्छों को अभी भगाता हूं।

दशरथ—तुम बच्चे हो, युद्ध में जाने योग्य नहीं हो। तुम यहीं पर सुख से तीनों भाइयों सहित राज्य कार्य सम्हालो !

रामचन्द्र—पिताजी ! आप यह न समझें कि बच्चा होने के कारण मैं युद्ध नहीं कर सकता। अग्नि की चिनगारी कितनी जरासी होती है किन्तु वही सारे वनको भस्म कर देती है, क्या उगता हुआ सूर्य अपार अंधकार को नष्ट नहीं कर देता ? आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं भाई लक्ष्मण सहित युद्ध में जाकर उन म्लेछों से प्रजा की रक्षा करूंगा।

लक्ष्मण—पिताजी आप हमें आज्ञा देनेमें कुछ भी संकोच न कीजिये। रण क्षेत्र में जाते ही हम लोग उन्हें मार कर भगा देंगे।

दशरथ—यदि तुम दोनों भाइयों की इच्छा है तो जाओ रण क्षेत्र में जाकर राजा जनक की सहायता करो।

(दोनों पुत्र दूत सहित पिता को नमस्कार कर चले जाते हैं)

(पर्दा गिरता है।)

अंक प्रथम—दृश्य सप्तम

(राजा जनक और म्लेक्ष सर्दार आता है)

म्लेछ—या तो तुम हमारे साथ रोटी बेटी व्यवहार करो हमारे वर्ण में आकर मिलो। वरना हम लोग दूसरे देशों की तरह

तुम्हारे देश को भी उजाड़कर फेंक देंगे।

जनक—कदापि नहीं, चाहें सारा देश क्यों न उजड़ जाय किंतु मैं तुम लोगों म्लेच्छोंके साथमें जिनमें जीव दयाका नाम मात्र भी नहीं है। रोटी बेटी व्यवहार कदापि नहीं कर सकता। मैं क्षत्री हूं। क्षत्री लोग धर्म की रक्षा के लिये हैं न कि धर्म को दूसरों के हाथ सौंपने के लिये। जब तक एक बच्चा भी क्षत्री जाति का बचा रहेगा वह तुम्हारे हाथों से धर्म को बचायेगा।

म्लेच्छ सर्दार—यदि तुम राजी नहीं होते हो तो युद्ध के लिये तैयार हो जाओ।

जनक—मैं सदैव युद्ध के लिये तैयार हूं। क्षत्री लोग युद्ध से नहीं डरते।

मिटते हैं धर्म पर जो, क्षत्री कहाते जग में।
रहता है जोश हरदम, क्षत्री की हर एक रग में॥
निज देश धर्म जाती, अबलाओं को बचाकर।
मरते हैं वीर रण में, शत्रू के बाण खाकर॥

(पर्दा खुलता है। दोनों ओर की सेना खड़ी हुई है युद्ध के बाजे बजते हैं। दोनों ओर से युद्ध प्रारम्भ होता है। राजा जनक घायल होकर गिरता है, शत्रु उसके ऊपर झपटते हैं। इतने में राम लक्ष्मण आते हैं।)

राम—(ललकार कर) ठहरो, यदि जनकको हाथ लगाया तो समझ लेना कि यह हाथ शरीर से जुदा होजायेंगे। लक्ष्मण तुम जनक को सचेत करो

(लक्ष्मण जनक को उठा ले जाते हैं। फिर आजाते हैं।)

म्लेच्छ—ओ दुध मुंहे बच्चे, जा अपनी मां की गोद में खेल। रण में खेलना तेरे जैसों का काम नहीं है। यदि एक भी बाण लग गया तो तेरी मां निपूती कहलायगी।

राम—बच्चा नहीं मैं काल हूं, हूं प्राण हरने के लिये।

आया हूं मैं रण क्षेत्र में, बस युद्ध करने के लिये॥

हैं प्राण प्यारे गर तुम्हें, तो भाग जाओ देश को।

तन से तुम कर दो अलग, इस वीरता के भेष को॥

लक्ष्मण—समझो नहूं जंगली पशु, बन जाऊंगा तेरा शिकार।

बाणों से तुमको छेदकर, दूंगा बहा मैं रक्तधार॥

बालक के आगे सर झुकाने से प्रथम जाओ चले।

हिंसा न मुझको दो यदी, लगते तुम्हें निज तन भले॥

म्लेच्छ—सुन सुन के बात तेरी, मम क्रोध बढ़ रहा है।

आकर पड़ेगा नीचे, क्यों इतना चढ़ रहा है॥

ये धमकी दूसरों को ही दिखाना छोकरे कल के।

खड़ा रेहने न पायेगा तु सन्मुख वीरता के॥

लक्ष्मण—अकेला ही मैं तुम सबको, यहीं पर दूं सुला क्षण में।

जो भक्षक मांस के हैं, वो दिखा सकते हैं क्या रणमें ।
नहीं अब तक मिला है वीर तुमको कोई मुझ जैसा ।
न देखा होगा तुमने क्षेत्र रण का आज के जैसा ॥

म्लेच्छ—नहीं जाते सहे कर्कश वचन इन दुष्ट बच्चों के ।

राम—लगे हैं दुष्ट को ही वाक भद्दे साधु सच्चों के ॥
घड़ी जब नाश की कोई पुरुष के सामने आती ।
तो सत शिक्षा भी उसके वास्ते अग्नि ही होजाती ॥

म्लेच्छ—बिताते हो समय क्यों बाद में कुछ काके दिखलाओ ।
यदी हो वीर तो बढ़कर के आगे युद्ध में आओ ॥

लक्ष्मण—नहीं आते हैं जब तक ही तुम्हारी प्राण रक्षा है ।
कि आते ही मचेगी किस तरह हो प्राण रक्षा है ॥

(युद्धके बाजे बजते हैं दोनों ओर से घमासान युद्ध होता है)

ड्राप गिरता है

अंक द्वितिय—दृश्य प्रथम

(नारदजी हाथ में वीणा लिये हुवे आते हैं गाते हुवे)

जयजिनेन्द्र जयजिनेन्द्र जयजिनेन्द्र जयजिनेन्द्र ।

(कुछ देर तक गाकर फिर कहते हैं)

नारद—मैंने राजा दशरथ के पुत्र राम की बहुत प्रशंसा

चन्द्रगती—पुत्र तुम शोक मत करो। मैं तुम्हें अवश्य ही सीता दिलाऊंगा तुम चैन से रहो। (सेवक से) जाओ चपलवेग को शीघ्र बुला लाओ (जाता है चपलवेग सहित आता है।)

चपलवेग—महाराजा धिराज की जय हो। कहिये मेरे लिये क्या आज्ञा है।

चन्द्रगती—(चपलवेग को एकांत में बुलाकर) देखो हम लोग विद्याधर हैं। भूमीगोचरों के घर जाकर उनसे कन्या नहीं मांग सकते इस लिये तुम मिथिला जाकर घोड़े का रूप बनाओ। जब राजा जनक सवारी करें तब उन्हें यहां उड़ाकर ले आओ। कार्य अत्यन्त कुशलता से होना चाहिये। धोका न खाना। काम करके जल्दी आना।

चपलवेग—जैसी आज्ञा (जाता है)

चंद्रगती—पुत्र भामण्डल चलो महल में चलो। तुम्हारी माता तुम्हारी बाट देखती होगी। अब तुम कोई चिंता न करो सीता तुम्हें अवश्य प्राप्त होगी।

(सब चले जाते हैं। पर्दा गिरता है।)

अंक द्वितिय—दृश्य चतुर्थ

(राजा जनक और चपलवेग आते है।)

जनक—तुम मुझे यहां पर क्यों ले आये हो ? क्या तुम लोग इसी लिये विद्या साधन करते हो कि दूसरों को कष्ट दो। किसी विषय की शिक्षा प्राप्त करके यदि उसके द्वारा दूसरों को लाभ न पहुंचा सकें तो कष्ट भी नहीं देना चाहिये।

चपलवेग—तुम्हें अपने यहां आने का हाल अभी मालूम होजायगा। यहीं से थोड़ी दूर पर एक जिन मंदिर है तुम उसमें जाकर ठहरो। मैं रथनूपुर जाता हूं। (चला जाता है।)

जनक—न मालूम क्या क्या मेरे अशुभ कर्मके उदय आयेंगे।

(चला जाता है, पर्दा खुलता है, जिन मंदिर का दृश्य सामने आता है वो वहां पहुंचता है।)

प्रार्थना गाना।

जनक—जग से अनोखा तुझको, हे देव मैंने देखा।
ये शांत रूप तेरा हां, ये शांत रूप तेरा,
जिनराज मैंने देखा।

तू कर्म का विनाशी, मुक्तीका है विलासी।
सब दोषसे रहित तू हां सब दोष से रहित तू।
जिनराज मैंने देखा॥

(दूसरी ओर देखकर) हैं!-ये किसकी सेना आ रही है ?

मैं अब किसकी शरण ग्रहण करूं ? याद आया जिनराज की शरण के तुल्य इस जग में दूसरी शरण नहीं है । मैं इन्हींके सिंहासनके पीछे जाकर छिपता हूं । (छिप जाता है ।)

(चन्द्रगती सेवकों सहित आता है । भक्त लोग जय जिनेन्द्र के गान में मस्त हैं । कोई नाचते हैं, कोई बाजे बजाते हैं कोई घंटों की ध्वनी कर रहे हैं । सबके सब भक्ती पूर्वक शीष झुकाते हैं ।)

चन्द्रगती— प्रार्थना ।

तुम परम पावन देव जिन अरि, रज रहस्य विनाशनं ।
तुम ज्ञान दृग जल बीच त्रिभुवन, कमलवत प्रति भासनं ॥
आनन्द निधन अनंत अन्य, अचित संतत्त परनये ।
चल अतुल कलित स्वभावतें नहीं, खलित गुनअमिलित थये

(उसकी प्रार्थना को सुनकर राजा जनक बाहर आ जाता है । चन्द्रगती जनक को देखता है ।)

चंद्रगती—हे महाशय ! आप यहां पर किस लिये पधारे हैं । आपका नाम ग्राम कौनसा है ?

जनक—मैं मिथिलापुरी का राजा जनक हूं । माया मई घोड़ा मुझे यहां उड़ा लाया है । आपका क्या नाम है ?

चन्द्रगती—मैं रथनूपुर का राजा विद्याधरों का स्वामी चन्द्रगती हूं । तुम्हें देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ है । तुम्हें मैंने ही बुलाया है ।

जनक—ऐसे योग्य पुरुष से मित्रता करने में मैं अपना सौभाग्य मानता हूं। कहिये मेरे लिये क्या आज्ञा है ?

चन्द्रगती—मैंने सुना है कि तुम्हारे एक सीता नामक पुत्री है उसके रूप की प्रशंसा सुन कर मेरा पुत्र भामण्डल उसे प्राप्त करने के लिये अत्यन्त व्याकुल हैं। सो तुम अपनी पुत्री मेरे पुत्र से व्याह कर मुझसे चिरकाल सम्बन्ध स्थापित करो।

जनक—हे विद्याधरादि पती, मैं अपनी पुत्री को तुम्हारे पुत्र के लिये देने में असमर्थ हूं क्योंकि मेरा निश्चय दशरथ के पुत्र राम को पुत्री देने का है।

चन्द्रगती—तुमने उसमें क्या गुण देखे जो उसे पुत्री देने का विचार किया।

जनक—सुनिये जिस समय मेरे ऊपर म्लेच्छों का आक्रमण हुआ था, उस समय राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंने ही आकर मुझे और मेरे नगर को बचाया था, उनको प्रत्युपकार में मैंने अपनी पुत्री को देने का निश्चय किया है। वो महान पराक्रमी ऐश्वर्यमान है

चन्द्रगती—हे जनक ! तुम उस छोकरे की क्यों इतनी प्रशंसा करते हो। हम विद्याधरों से बढ़कर वो कदापि नहीं हो सकता। विद्याधर आकाश में चलने वाले देवों के समान हैं।

दूत—(आकर) श्री रामचन्द्रजी की और सीताजी की जयहो।

सीता—कहो दूत क्या समाचार लाये हो ?

दूत—मैं ऐसा समाचार लाया हूं जो अभी तक कोई नहीं लाया होगा।

सीता—वह क्या शीघ्र कहो ?

दूत—आपके भाई·········

सीता—मेरा भाई ! मेरा भाई कहां है ?, तू मेरी हंसी क्यों उड़ाता है उसे तो जन्मते ही कोई हर ले गया है। वह अब कहां। हाय भाई········(रोने लगती है)

दूत—आपके भाई आपसे मिलने आ रहे हैं। वह एक विद्याधर के द्वारा पाले गये हैं। उनका नाम भामण्डल है, उन्हें जाती स्मरण हुआ है। आप हर्ष मनाइये।

सीता—कहां है ! कहां है !! कहां है !!! (चारों तरफ देखती है, भामण्डल को आते देख उससे चिपट जाती है।) भाई तुम अब तक कहां रहे ? मुझे क्यों नहीं मिले ? माता तुम्हारे लिये रात दिन रोती हैं।

(गले चिपटकर रोने लगती है, भामण्डल भी रोने लगता है)

भामण्डल—हाय कर्मों की गती विचित्र है। ऐसी बहन से मैं अब तक न मिल सका बहन ! तुम रोती क्यों हो ! खुशी मनाओ। देखो सामने तुम्हारे भर्तार रामचन्द्रजी खड़े हैं। इधर

पिता चन्द्रगतीजी खड़े हैं। प्रेम के लिये बहुत समय है।

सीता—भाई मुझे तुम्हें देखकर आज अनोखी सम्पदा मिली है। (चन्द्रगती से) पिताजी आपने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया जो मेरे भाई को मुझसे मिलाया।

चन्द्रगती—उपकार नहीं, मैं अपने दुर्भाग्य समझता हूं जो अब तक तुम सरीखी पिता कहने वाली पुत्री के दर्शन न कर सका। तुम्हारी और रामचन्द्र की जोड़ी देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष है।

(राजा जनक आता है। विदेहा भी आती है। दशरथ भी आते हैं। और भी सब लोग आ जाते हैं विदेहा दौड़कर भामण्डल के चिपट जाती है। पुत्र! पुत्र कहते नहीं थकती। सब आपस में मिलते हैं। जनक की आंखों से भी पानी बह रहा है। दशरथ आदि सब हर्ष मना रहे हैं।)

ड्राप गिरता है

द्वितिय अंक समाप्त

अंक तृतिय—दृश्य प्रथम

(जंगल का दृश्य है। एक शिला पर एक मुनि बैठे हैं। राजा दशरथ उनके पास आते हैं। प्रणाम करके स्तुति करते हैं)

स्तुति

है कांच कंचन एक समजो, बन महल सब एकसे।
चाहै रिपु हो मित्र हो या, भाव हित से देखते ॥
तन सुखाते नित्य तप से, कर्म को हो मेटते ।
छोड़ सब जंजाल तुम निज, आतमा से भेंटते ॥
हे गुरू ? मैं चाहता हूं, धर्म का उपदेश हो ।
चाहता मुनिपद ग्रहण करना सभी ये भेष खो ॥
हूं दुखी संसार से मैं, तारिये मुझ को गुरू ।
दीजिये शिक्षा विमल को, होय आत्मोन्नति शुरू॥

मुनिमहाराज—हे भव्य तेरे धरम उपदेश सुनने के बहुत उत्तम भाव पैदा हुवे धर्म दो प्रकार का है एक मुनि धर्म और दूसरा ग्रहस्थ धर्म । ग्रहस्थ धर्म में मनुष्य घर में रहते हुये व्यापार करते हुवे भी यथा योग्य बारह व्रतों को पालते हुवे अपनी आत्मा का उपकार कर सकते हैं । मुनि धर्म अत्यन्त दुर्लभ है । इसमें सारे घर बार नारी बच्चे सब छोड़ कर जंगल में वास करना पड़ता है । पंच महाव्रत पालने पड़ते हैं । अपनी देह से ममत्व छोड़ना पड़ता है । तू जिस धर्म को चाहे मैं संबोधूं ।

दशरथ—हे गुरू! मैं आपसे मुनि का धर्म सुनना चाहता हूं। मैं इस संसार से व्याकुल हो रहा हुं। मुझे ऐसा उपदेश दीजिये जिससे मुझ में वैराग्य उत्पन्न हो।

मुनी—हे भव्य सुन! इस संसार में चार गतियां हैं। किन्तु जीव का सुख किसी भी गती में नहीं है। मनुश्य गती में मनुष्यों को अनेक प्रकार की चिन्ताओं और इच्छाओं के कारण कभी सुख नहीं मिलता। किन्तु मनुष्य गती से जीव मोक्ष जा सकता है इसीसे इस गती को सर्वोत्कृष्ट बताई है। अत्यन्त कठिनता से जीव को मनुष्य की देह प्राप्त होती है। मनुष्यों में भी उत्तम धर्म उत्तम कुल उत्तम जाति और उत्तम शरीर का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है यदि इन्हें पाकर भी किसी ने धर्माचरण नहीं किया तो समझ लो कि उसने चिन्तामणि रत्न को हाथ से खोदिया। जो लोग कहते हैं मनुश्य बन कर भोगविलास करना चाहिये वो मूर्ख हैं। ये भोगविलास मनुष्य को अपनी ओर लुभाने वाले हैं उनकी ओर न खिंच कर यदि ये मनुष्य धर्म के मार्ग पर आचरण करता है तो ऐसे सुख को प्राप्त होता है जो कभी नाश न हो। इस लिये हे भव्य तूने मनुष्य की उत्तम देह पाई है तू इस संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिये मुनी धर्म का आचरण कर।

दशरथ—हे जगत गुरु स्वामी ! आपने अपना सत उपदेश देकर मुझे दृढ़ किया । मैं अयोध्या जाकर रामचन्द्र को राज्य देकर बनमें जाकर मुनीवेष धारण करूंगा ।

पर्दा गिरता है ।

अँक तृतिय—दृश्य द्वितीय

कौमिक

(एक साधू आता है, उसके पीछे साधू भेष में ही सतीष आता है ।)

साधु—जय लक्ष्मी, जय लक्ष्मी ।

गाना

लक्ष्मीसे इस जगके भीतर, नर जन मौज उड़ाते हैं।
लक्ष्मी बिन कहलाते लुच्चे, पगपग ठोकर खाते हैं ॥
चाहे होय कुकर्मी पापी, पर होवे लक्ष्मी वाला ।
भेष छिपा करके उसका यश, पंडित गण सब गाते हैं
लक्ष्मी से परसन हो लक्ष्मी, पति से प्रेम दिखाती है,
लक्ष्मी बिन पति तो निंश दिन ही, घर जाते भय खातेहैं
कहलाना हो बड़ा पुरुष तो, करलो लक्ष्मी की सेवा।

जो हैं लक्ष्मीवान जगत में, सब से पूजे जाते हैं॥

सतोष—हे साधु बाबा, आप मुझे ऐसा मार्ग बताइये जिससे मैं इस संसार में अपना हित कर सकूं। मैं दुनिया से भयभीत हूं।

साधू—यदि तुझे अपना हित करना हो तो जाकर किसी शहर से बाहर ध्यान लगाकर बैठ जा। लोग वहां आ आकर के तुझे मस्तक नवायें और तुझे पूजें। तू जिस तरह हो सके उन्हें फांसे में लाकर खूब ठगना इस तरह से तुम बड़े मजे से अपनी जिन्दगी बिता सकोगे।

सतोष—रहने दीजिये मुझे आपका उपदेश नहीं चाहिये जिस संसार से मैं इतना भयभीत हूं उसी में फंसने का आप मुझे मुझे उपदेश देते हैं। आपका काम जिस प्रकार भोली दुनिया का ठगना है वही मुझे बताते हैं। धर्म समझकर लोग आपका पैसा देते हैं। उससे आप महा निंदनीय वस्तु गांजा और भंग पीते हैं।

साधु—दुष्ट कहींके मेरे लिये तू ऐसे बुरे समझ बोलता है। मारे डंडों के तुझे बेहोश कर दूंगा।

सतोष—याद रखो! यदि तू तंढंग से पेश आये तो मारते २ जहन्नुम तक पीछा नहीं छोड़ूंगा। तुम जैसे साधू

साधू नहीं किन्तु गलियों में घूमने वाले गुंडों से भी बदतर हैं। साधू लोग कभी क्रोध नहीं करते। जिसने क्रोध किया वो साधू नहीं क्रोधी स्वाधू है।

साधु—एक ब्राह्मण साधू को ऐसे बचन कहते हुवे तेरी जीभ क्यों नहीं कट जाती?

सतोष—यदि मैं झूठी निन्दा करता होता तो अवश्य जीभ कटती।

सा०—(चलते २) मैं तुझे श्राप देता हूं कि तेरा सर्व नाश होगा। (चला जाता है)

सतोष—जिस मनुष्य ने अपने जीवन में सदा दुष्कर्मों के सिवा कोइ सुकर्म नहीं किया उसका श्राप कभी नहीं लग सक्ता। जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वो कभी श्राप देते ही नहीं। मैंने सुना है कि जैन मुनि अत्यन्त धीर वीर होते हैं। वो सदा जीवों को संसारसागर से पार उतरने का उपदेश देते हैं। आत्मकल्याण के इच्छुक जीवों के लिये वो नौका के समान हैं। मैं उन्हीं से जाकर धर्म श्रवण करूंगा। और जग से पार उतरने के लिये उनके बताये मार्ग पर आचरण करूंगा। (सामने देख कर) हैं! ये कौन दुखिया नारी आ रही है।

मोहिनी—(आकर) मैं महा पापिनी हूं। कभी भी मैंने

कौशल्या—जिस माता के तुम ही एक अकेले पुत्र हो उसे तुम्हारे बिना किस प्रकार चैन पड़ सकेगा। क्या करूं विवस हूं। पती के कार्य में हस्तक्षेप करना कुल्टा नारियों का काम होता है। इस लिये जाओ पिता की आज्ञा का पालन करो।

रामचन्द्र—अच्छा माताजी प्रणाम। (चरण छूकरे जाने लगते हैं। सीता रामचन्द्रजी के पैर पकड़ लेती है) क्यों सीते तू मुझे क्यों रोकती है?

सीता—प्राणनाथ! मैं आपको रोकती नहीं हूं। केवल यह प्रार्थना करती हूं कि आप अपनी अर्धांगिनी को छोड़ कर न जाइये। मैं भी आपके साथ चलूंगी।

राम—सीते! तुम कोमलांगी हो। बन में कठिन मार्गों में किस प्रकार चल सकोगी वहां पर पत्तों के बिछौने पर सोना पड़ेगा। फलों का आहार करना पड़ेगा। तुम बन के कष्ट सहने में सदा असमर्थ हो। इस लिये यहीं पर रह कर माता जी की सेवा करो।

सीता—चाहे कुछ भी क्यों न हो, आपके संग में बनों के दुख भी मेरे लिये सुख है। किंतु आपके बिना यहां पर नाना प्रकार के सुख भी मेरे लिये दुख है।

पंडित नारी अरु लता, आश्रय बिन दुख पांय।

मारे मारे फिरत हैं, जैसे नट बिन पांय ॥

राम—माता ! आप सीता को समझाओ कि वो घर रह जावें ।

कौशल्या—पुत्री ! अपने पतीका वचन मानकर मेरे चित्त को शांति देती हुई घर पर रहो।

सीता—यह नहीं हो सकता कि पती के बिना मैं घर रहूं ।

गाना

चाहे लाख मुझे कोई कहे, संग पती के जाऊंगी ।
दुख सहते भी पती संगमें, कभी नहीं घबराऊंगी ॥ चा०
बनकी महिमा देख देखकर, सुन सुन पक्षीगण के बोल
पूछ पूछकर बात अनेकों, मनमें हर्ष मनाऊंगी ॥चा०
सेवा करूं पती की बनमें, पाऊं सेवा फल अनमोल।
बांध पती को प्रेम पाशमें, मन चाहा सुख पाऊंगी ॥ चा०

कौशल्या—पुत्र ! सीता पती प्रेम में पागल हो रही है । वह तुम्हारे बिना नहीं रह सकेगी । क्यों कि नारीके हृदय की व्यथा नारी ही जान सकती हैं । तुम इसे बनमें अपने साथ ले जाओ बड़ी चतुराई से रखना ।

लक्ष्मण—(आकर) (स्वगत) केकई ने अधर्म पूर्वक

बड़े भाई साहब को राज न दिलाकर अपने पुत्रको राज दिलाया मुझसे यह अधर्म नहीं देखा जाता, किंतु नहीं। जिसमें पिताजी की मर्जी है उसके विरुद्ध मुझे कुछ भी नहीं करना चाहिये। मैं अपने बड़े भ्राता रामचन्द्रजी के साथ बनमें जाऊंगा, ऐसे राज्य में मैं कदापि न रहूंगा!

राम—क्यों लक्षमण तुम यहां किस लिये आये? और खड़े होकर क्या सोचते हो?

लक्ष्मण—भाई साहब मैं आपके साथ बन में जाने की सोच रहा हूं। आप मुझे आज्ञा दीजीये कि आपकी सेवा करने के लिये मैं बन को चलूं।

राम—भाई लक्ष्मण? जिस प्रकार सीता ने बन जाने की ठान रखी है! उसी प्रकार तुम मूर्ख न बनो। तुम घर पर रह कर सुख भोगो। माता सुमित्रा को शान्ती दो।

लक्ष्मण—भाई साहब! आप मुझे अपने साथ ले चलने से न रोकिये। मैं अवश्य ही आपके साथ चलूंगा, आपके जैसा संग मुझे तीनों लोकों में भी दुर्लभ है।

राम—यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो माता पिता से आज्ञा प्राप्त करो।

पर्दा गिरता है

अंक तृतिय—दृश्य पंचम

(राजा दशरथ शोक की अवस्था में बैठे हुवे हैं।)

दशरथ—इस संसार की लीला निराली है। मनुष्य जो चाहता है वह उसके विरुद्ध देखता है। कहां मैंने रामको राज्य देना विचारा था और कहां एक दम बनमें जाने को आज्ञा दी जो पुत्र मेरी आंखों का तारा था आज वही बनको जा रहा है। इस संसार से प्रीती करने वाले मूर्ख हैं, मैं किसके लिये शोक करूं? क्या पुत्र के लिये? नहीं, इस संसार में न कोई मेरा पुत्र है न कोई नारी है। सब जीतेजी का झगड़ा है। मैं बन में जाकर अपनी आत्मा का कल्याण करूंगा।

(कौशल्या और सुमित्रा आती है।)

कौशल्या—नाथ! अब मेरे लिये इस जग में कौन सहारा है। आप दीक्षा धार रहे हैं और रामचन्द्र और सीता दोनों लक्ष्मण सहित बन को चले गये हैं।

सुमित्रा—हे प्रभो! आप किसी प्रकार भी उन्हें लौटा लाइये। दुख रूपी समुद्र में डूबते हुवे परिवार को बचाइये।

दशरथ—मेरे हिसाब चाहे कुछ भी हो। मुझे किसी से कुछ सरोकार नहीं है, मैंने अपने बचन का पालन किया है और जो कुछ युक्त समझा सो किया है। अच्छा हुआ जो लक्ष्मण भी राम के साथ चला गया, बड़े भाइयों का छोटे भाई के राज्य

में रहना सर्वथा अनुचित है। आगे तुम पुत्रों की माता हो। यदि वो लौट सकें तो लौटा लाओ। मैं तो राज्य दे चुका मेरे हिसाब चाहे कोई भी उसका अधिकारी बने। तुम जैसा उचित समझो करो। मैं वनमें जाकर दीक्षा लेकर अपना कल्याण करूंगा मैं इन संसारिक झगड़ों में भाग नहीं लेना चाहता।

(चले जाते हैं। बाद में दोनों स्त्रियां भी चली जाती है)

अँक तृतिय—दृश्य छठा

(साधू और बृह्मचारी आते हैं।)

साधू—इसमें आपने कुछ बातें रामायण के एक दम विरुद्ध दिखाई हैं।

ब्र०—वह कौन कौनसी ?

साधू—प्रथम तो परशुराम को बिल्कुल छोड़ ही गये, दूसरे रामायण में लक्ष्मण ने कोई सा भी धनुष नहीं तोड़ा था, तीसरे भामंडल का कहीं भी हमारे यहां उल्लेख नहीं आया, चौथे कैकई ने दो वर मांगे थे, आपने केवल एक ही बताया है, और बनोवास पिता के द्वारा बताया है, पांचवे हमारे यहां दशरथ को पुत्र के विरह में मरता बताया है। आपने उसे बन में भेज दिया। छटे आपने भरथ को अयोध्या में ही दिखाया है हमारे यहां कहा है कि वो मामा के यहां थे।

ब्र०—तो क्या आप रामायण को बिल्कुल सत्य मानते हैं?

सा०—उसे मैं ही नहीं किन्तु सारा हिन्दुस्तान सत्य मान रहा है। जिसे सब सत्य कहे वो सत्य है।

ब्र०—यह बात कदापि नहीं होसकती। यह हमारा नाटक उस पद्मपुराण के आधार पर है जिसकी रचना को आज हजारों वर्ष व्यतीत होगये। जिसमें उसके वचन हैं जो भूत भविष्य और वर्तमान तीनों कालों का ज्ञाता था, जिसे राग द्वेष छू तक भी नहीं गया था, किंतु अभाग्यवश अभी तक उसका शास्त्र रूप होने से प्रचार नहीं हुआ था। आपने क्या बाल्मीकीजी के विषय में जिनकी बनाई हुई रामायण पर विश्वास करते हो, कुछ नहीं सुना आपके यहां ही उन्हें पक्का चोर हिंसक और झूंठा बताया है!

सा०—किन्तु वो बाद में धर्मात्मा बन गये थे। तभी उन्होंने रामायण की रचना की है।

ब्र०—क्या आप बाल्मीकीजी को केवलज्ञानी मानते हैं?

सा०—नहीं।

ब्र०—तो फिर उन्होंने जो कहा है सो सब सत्य है यह कभी नहीं होसकता। सारे जीवन उन्होंने कभी शास्त्रोंका अध्ययन नहीं किया। बाद में राम की भक्ती में लवलीन होकर कुछ सुनी हुई कुछ जोड़ी हुई रखकर रामायण बनादी।

सा०—किंतु वो तो संस्कृत में रची हुई है।

मनु०---अच्छा ला मुझे दो रुपये दे ।

स्त्री०---काहे के लिये चाहियें ?

मनु०---तुझे क्या मतलब, मुझे एक काम को चाहते हैं ।

स्त्री०---जब तक मुझे बताओगे नहीं, मैं एक पैसा भी नहीं दूंगी ।

मनु०---अरे बाबा क्लब में चन्दा देना है ।

स्त्री—कोई जरूरत नहीं किलब उलब में जाने की, अपने घर में ही छोरे को दो रुपये महीना दे दिया करो, और गंजफा खेला करो ।

मनु०—मैं अगर क्लब नहीं जाऊंगा तो मेरी तन्दुरुस्ती खराब होजायगी ।

नारी—होजायगी तन्दुरुस्ती खराब तो होजाओ । पता है बड़ी मुश्किल से पैसा इकट्ठा होता है ।

मनु०—अच्छा तो ला चार पैसे पान खाने को तो दे ।

नारी—पान एक पैसे का खाया जाता है ।

मनु०—अगर कोई मित्र लोग साथ में हों तो ?

नारी—वो अपने पास से लेकर खावें । वो क्या कोई भूखे नंगे हैं जो उन्हों को तुम ही खिलाओगे । बस सब खाने वाले ही हैं कोई खिलाने वाला भी है ?

मनु०—बेटा प्रकाश ! जरा सा पानी तो ले आ ।

नारी—वो कोई तुम्हारा नौकर थोड़े ही है । खुद जाके पी लो, मेरे लिये भी एक गिलास में लेते आना ।

मनु०—तो क्या तुम्हारा और इसका ये भी सहारा नहीं, कि एक गिलास पानी भी पिलादो ?

नारी—सहारा नहीं, सहारा नहीं करते हो। रोटी कोई दूसरी करके खुला देती होगी। बड़े आये सहारा चिल्लाने वाले ?

प्रकाश—बाबूजी सहारा हिन्दुस्तान में थोड़े ही है वो तो अफ्रीका में है । अगर आपको सहारा देखना हो तो अफ्रीका जाइये ?

मनु०—अच्छी बात है, अब से मैं तनखा का एक पैसा भी तुम्हें लाकर नहीं दूंगा।

नारी—तुम होते कौन हो न देने वाले। ये धौंस किसी और को ही दिखाना ! घर में नहीं घुसने दूंगी । और दफतर में जाकर भड़ाभड़ जूते लगाऊंगी । लालाजी सारा दाल आटे का भाव भूल जायेंगे ।

मनु०—मैं तो इससे भरपाया ।

नारी—तो मैं भी तुमसे भरपाई (रोने लगती है)

म०—क्यों मेरी प्यारी ! रोने लग गई । तुम्हें तो मैं

हृदय से चाहता हूं।

ना०—चाहते होते तो मरेपाया न कहते। मेरी तो तक-दीर उसी दिन से फूट गई जिस दिन से इस घर में आई। पहले वो सासू थी। वह नोच २ खाय थी। अब ये ऐसी ऐसी कहें जो उठाई जांय न धरी जांय।

म०—तो क्या तुम एक दम इतनी नाराज होगई। लो तो मैं भी अब जाता हूं। (चला जाता है)

ना०—प्रकाश जा बेटा! सुनार को बुला ला। उससे सोना मंगा कर एक जोड़ी कानों की बिजली बनवाऊंगी।

प्रकाश—अच्छा अम्मा जाता हूं।

(चला जाता है वो भी चली जाती है)

अंक प्रथम—दृश्य तृतिय

(दंडक वनमें रामचन्द्र लक्ष्मण और सीता बैठे हुवे हैं)

राम—लक्ष्मण! देखो यह दंडक वन कैसा शोभायमान है इसकी छटा कैसी निराली है। ये नर्मदा नदी कैसी गम्भीरता से बह रही है। अनेकों उपाय करने पर भी राज महलों में रहते हुवे यह शोभा देखने को न मिलती।

लक्ष्मण—भाई साहब, आप मुझे आज्ञा दीजीये कि मैं इसको दूर तक देखकर आऊँ।

राम--जाओ ! किन्तु सावधान रहना ।

(लक्ष्मण चले जाते हैं)

सीता—नाथ ! वन में भी कितना सुखमय जीवन व्यतीत होता है । यहां पर न क्रोध करने की आवश्यक्ता पड़ती है न मान माया लोभ आदि की ही आवश्यक्ता पड़ती है ।

राम—इसी लिये तो मुनि लोग बहुधा जंगलों में ही रहते हैं । जो वन में रहने का आनन्द लूट चुका हो । उसे नगर का रहना कभी भी अच्छा नहीं लगेगा । वनवास से दूसरी श्रेणी ग्राम वास की है । ग्रामों में भी लोग सुख पूर्वक रहते हैं ।

सीता—नाथ ! इस वन की सुन्दरता पर मैं मुग्ध हूं । आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की, जो मुझे साथ में ले आये ।

राम—यदि मुग्ध हो तो मुग्धता से भरा हुआ अपने इस मुखारविंदु से कोई आनन्दकारी गीत गाओ ।

सीता— गाना

फूलों ने मोह लई, रंग दिखाय के ।
रंग दिखाय पिया, महक उड़ाय के ॥ फूलों ने०
वन में खिले हैं, मन में बसे हैं ।
झुम झुम झूम रहे, इठ लायके ॥ फूलों ने०

राम—वाह, मैं किस प्रकार तुम्हारे गान की प्रशंसा करूं तुम साक्षात इन्द्राणी की अवतार हो।

सीता—नाथ आप क्यों मुझे बड़ाई दे कर लज्जित करते हैं।

राम—सीते ? देखो ये नर्मदा कैसी बह रही है। इसकी चाल तुम्हारी चाल से मिलती है। इसकी सुन्दरता तुम्हारे आगे फीकी है।

सीता—किन्तु इसका जल आपके मन समान निर्मल नहीं है। बस यही एक कमी है।

राम—सीता ! क्या कारण है। अभी तक लक्ष्मण नहीं आया।

सीता—देखो वह सामने खड़ग लिये चले आरहे हैं।

राम—मालूम होता है इसने कोई अद्भुत वस्तु प्राप्त की है। यह बहुत हर्षित है।

लक्ष्मण—(आकर) भाई साहब देखिये मैं इस बन में से ये खड़ग लाया हूं।

राम—यह तुमने कहां प्राप्त किया ?

लक्ष्मण—यहां से थोड़ी दूर पर एक स्थान पर कोई विद्याधर इसे साध रहा था। वह बांसों के बीड़े पै बैठा हुआ था। मैंने इसकी ज्योति औ सुगन्धता देख कर इसे सूर्यहास

खड्ग जान कर उठा लिया । तथा इसकी परीक्षा करने के लिये उस बांसों के बीड़े पर चलाया । उसमें बैठा हुआ वह विद्याधर भी उसी के साथ कट गया ।

राम—भाई तुमने ये अच्छा नहीं किया ।

लक्ष्मण—किन्तु भाई साहब जिसके साधने में बारह वर्ष सात दिन लगते हैं यदि मैं उसे एक दिन में ही ले आया तो मैंने क्या बुरा किया ।

राम—हां ये तुम्हारे पूर्वोपार्जित पुण्य का फल है जो तुम्हें विना प्रयत्न के ही ऐसी दुर्लभ वस्तु की प्राप्ती हुई किन्तु मुझे मालूम होता है कि इसका परिणाम अवश्य कुछ रंग लायेगा ।

(चन्द्रनखा रोती हुई आती है । स्वगत में ही कहती है)

चन्द्रनखा—हाय न मालूम किस दुष्ट पापी ने मेरे पुत्र शंबूक को मार कर उसका खड्ग लेलिया मैं रावण की बहन चन्द्रनखा हूं । खरदूषण की नारी हूं । उस अन्यायी को अवश्य ही इसका फल दूंगी । हाय पुत्र तुम्हें बारह वर्ष चार दिन विद्या साधते होगये थे । केवल तीन दिन शेष थे । इस खड्ग का लेने वाला अवश्य कोई रावण का बैरी सिद्ध होगा ।

(राम लक्ष्मण आदि की ओर देख कर)

मालूम होता है इनमें जो ये छोटा बैठा हुआ है इसी ने

वह खड्ग लिया है। अहा इन दोनों भाइयों का कैसा सुन्दर रूप है। ये अपनी सुन्दरता से देवों को भी मात कर रहे हैं। यदि मैं इनकी स्त्री बनूं तो मेरे परम सौभाग्य हैं।

राम—सीता ! देखो वह सामने कोई दुखिया नारी रोरही है जाओ उसे धैर्य बंधाकर यहां ले आओ।

सीता—जैसी पती की आज्ञा। (चन्द्रनखाके पासजाकर) क्यों बहन आप यहां पर इतनी क्यों दुखी हो रही हैं, मेरे नाथ आपको बुलाते हैं।

चन्द्रनखा—हे नारी आप बड़ी दयालू हैं। आपके स्वामी बड़े दयालू हैं। मैं अभी चलती हूं। (जाती है)

राम—हे अबला, तुम क्यों इस प्रकार हृदय को भेदने वाला रुदन कर रही थीं ?

चन्द्रनखा—हे सुन्दरता के अवतार ! दयासागर ! मेरा दुख न पूछो, मैं एक राज कन्या हूं। मेरे माता पिता मुझे बालक को छोड़कर मर गये थे, बन्धू जनों ने मुझे बन में पटक दिया था, तब से अब तक मैं कन्या रूप में ही फिर रही हूं। कोई आश्रय न होने से मैं इधर उधर भटकती हूं। और रोती हूं, आप दोनों ही परम सुंदर और दयालु हैं। दोनों में से कोई भी मुझे अपनी प्रिया बनाकर मुझे आश्रय दें। मैं आपको हृदय से चाहती हूं।

राम—हाय सीता ! मैंने तुझे अयोध्या में ही मना किया था तूने एक न मानी। तुझ कोमलांगी को कौन उठा ले गया हा अब मैं अयोध्या क्या मुंह लेकर लौटूंगा ? सीता ! तू सतियों में श्रेष्ठ है न मालूम तुझ पर क्या आपत्तियां पड़ेगी। यदि मैं ऐसा जानता तो तुझे कदापि छोड़कर न जाता। हाय मेरा दुर्भाग्य। मैं तुझे कहां ढूंढूं, क्या करूं।

गानाः—सीता सीता पुकारूं मैं बन में,
सीता प्यारी बसी मेरे मन में।
जाके क्या समझाऊंगा वतन में,
छोड़ आया कहां सीता बन में ॥
जानती थी कि जाऊंगी तजकर,
क्यों लुभाया मुझे प्रेम कर कर।
कर गई शोक पैदा वदन में,
छोड़ आंसू गई तू नयन में ॥

(रामचन्द्र बेहोश होकर गिर जाते हैं। लक्ष्मण और विराधित आते हैं।)

लक्ष्मण—भाई साहब ! आप यहां किस लिये सो रहे हैं चलिये स्थान पर चलिये। माता सीता कहां है ? (रामचेतते हैं)

राम—लक्ष्मण तुम लौट आये ? देखूं तुम्हारे कहां कहां घाव लगे हैं ? यह तुम्हारे साथी कौन हैं ?

लक्ष्मण—भाई साहब आपके चरणों के प्रशाद से मैंने इस चन्द्रोदय के पुत्र विराधित की सहायता से बहुत सुगमता से युद्ध जीत कर खरदूषण को मार दिया। आप पहले बताइये कि माता सीता कहां है ?

राम—सीता को मैं अकेली छोड़ गया था। न मालूम कौन उसे यहां से उठा लेगया।

लक्ष्मण—आह हमारे क्या बुरे भाग्य हैं। एक पर एक आपत्तियां आती हैं। न मालूम कौन दुष्ट उन्हें हर लेगया ?

विराधित—स्वामी। आप दोनों किसी प्रकार का शोक न कीजिये मालूम होता है कि उन्हें कोई विद्याधर ही हर ले गया है मेरे ऊपर आपने बहुत उपकार किया है। मैं उनका पता अवश्य लगा कर उन्हें आपसे मिलाऊंगा। विद्याधर से विद्याधर नहीं छिप सकता।

लक्ष्मण—विराधित ! तुम यदि सीता का पता लगाओगे तो अत्यन्त उपकार करोगे। भाई साहब सीता के विरह में अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। यदि इन्होंने प्राण त्याग दिये तो मैं भी अग्नी में भस्म होकर अपने प्राण तज दूंगा। यदि तुम मेरा

उपकार मानते हो तो कहीं से भी मेरे भाई साहब की स्त्री को ढूंढ कर लाओ।

विराधित—स्वामी! मैं इसके लिये भरसक प्रयत्न करूंगा।

रामचन्द्र— गाना

वन वन में राम पुकार रहा, सीता सीता सीता सीता।
हे वैदेही पतिव्रता सती तू, कहां गई सीता सीता॥
मेरे बिन चैन न पड़ती थी, संग में रहती थी छाया सी।
किस भांति अब दिन काटेगी, शत्रु केघर सीता सीता॥

विराधित—हे प्रभो आप शोक न कीजिये। सीता के भाई भामंडल पर मैं समाचार भेजता हूँ। आप यहां से पाताल लंका के लिये चले चलिये। खरदूषण सब विद्याधरों का स्वामी था उसके मरने पर वो विद्याधर कोप करके आपके ऊपर आपत्ती डालेंगे। पवनसुत हनूमान उसका जमाई है वो पृथ्वी पर अत्यन्त बलवान है। अपने ससुर की मृत्यु सुन कर वो अवश्य आपको हानी पहुंचायेगा। सुग्रीव आदि सब उसके परम मित्र हैं। उसकी मृत्यु सुन कर कोप करेंगे। इस लिये आप शीघ्र ही पाताल लंका चले चलिये।

राम—भाई! तुम सच कहते हो। वास्तव में तुम बड़े

बुद्धिमान हो । हम तुम्हारे कहे अनुसार चलते हैं।

ड्राप गिरता है

अंक द्वितिय—दृश्य प्रथम

(सीता वाटिका में एक वृक्ष के नीचे शिला पर बैठी हुई है।)

सीता—हाय, मेरा कैसा बुरा भाग्य है। अपने प्यारे पती से मैं बिछुड़ गई। ये दुष्ट रावण मुझे यहां हर लाया। हे प्राणनाथ! मेरे विरह में आपको न मालूम क्या २ कष्ट भुगतने पड़ रहे होंगे। यदि मैं ऐसा जानती कि ये दुष्ट मुझे हर ले जायगा तो आपके साथ ही युद्ध में चलती। जब तक पती देव के कुशल समचार न सुनूं तब तक मेरे लिये जल पान वृथा है। बिना स्वामी के ये वाटिका वाटिका नहीं, अग्नी कुण्ड है। वह देखो वृक्ष पर पक्षी मेरे भाग्य पर हंस रहे हैं।

गाना

आ फसी हूं कैद में, जियरा मेरा घबराय है।
बिन पियारे के मुझे, कुछ भी न ये सब भाय है॥
पक्षियों क्यों चह चहाते, मुझको रोती देख कर।
मेरे रोने पर दया तुमको न कुछ भी आय है॥

रामचन्द्र—आइये ? मैं हृदय से आपका स्वागत करता हूं।
(हनूमानजी रामचन्द्रजी से लक्ष्मणजी से गले मिलते हैं)

हनूमान—सचमुच जैसा मैंने सुना था वैसा ही प्रत्यक्ष देखा। लक्ष्मणजी आपको देख कर मैं फूला नहीं समा रहा हूं। उस कोटि शिला को आपने क्षण भर में उठाली। मुझे निश्चय है कि आप युद्ध में रावण को अवश्य मारेंगे !

लक्ष्मण—आप मेरी प्रशंसा करके मुझे लज्जित करते हैं मेरी प्रशंसा उसी में है कि भाई साहब को सीता माता के दर्शनहों।

हनूमान—क्यों नहीं ? जिनके भाई आप जैसे पुरुशोत्तम नारायण हैं। उन्हें किस प्रकार सीता नहीं मिल सकती ? सीता अवश्य मिलेगी।

जांबूनद—(हनूमान से) श्रीमान आप से प्रार्थना है कि आप लंका जाकर सीता को राम का समाचार दें और रावण को किसी प्रकार सीता लौटा देने के लिये कहें।

हनूमान—अच्छी बात है। मैं अभी लंका के लिये प्रयाण करता हूं।

रामचन्द्र—(हनूमान से एकांत में बुलाकर) देखो मित्र ! आप हमारे मित्र हो। आपसे कोई बात छिपानी वृथा है। मैं सीता के शोक में अत्यन्त व्याकुल रहता हूं। उसके बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता आप सीता से मेरी सब हालत कहना

और यह भी कहना कि बहुत शीघ्र ही तुम्हें यहां से छुड़ायेंगे। तुम शोक करके अपने तन को दुर्बल न बनाओ। विश्वास के लिये मेरी ये मुद्रिका उसे दे देना और उसका चूड़ामणी लेते आना।

हनूमान---आपने जिस प्रकार कहा उसी प्रकार किया जायगा आप निश्चित रहिये। और मुझे अपना परम हितु समझिये। अच्छा मैं अब जाता हूं।

(गले मिलकर चले जाते हैं।)

पर्दा गिरता है

अंक द्वितिय—दृश्य चतुर्थ

(ब्रह्मचारीजी आते हैं।)

ब्र०—सज्जनों! जिस समय हनुमानजी लंका के लिये जा रहे हैं। उस समय क्या क्या घटनायें घटती हैं सो सुनिये!

श्री वायू सुत चल पड़े, सबसे हृदय मिलाय।
मनमें हर्षित होयकरे, श्री जिनराज मनाय॥
आकाश मार्ग से जाते हैं, सारी सेना को संग लिये।
हैं सोच रहे जो राम लखन ने, उनके प्रति उपकार किये॥
जो बड़े पुरुष कहलाते हैं, थोड़ा उपकार बड़ा मानें।
है नीच जनों की रीत यही, उपकारी को शत्रू जानें॥

थोड़ा आगे बढ़ने पाये, नाना का पुर दीख पड़ा ।
माता की आई याद तभी, मन में उनके यूं क्रोध बढ़ा ॥
माता जब इनके शरण गई, तब बाहर से दुतकारा था ।
बन में जाकर कष्ट सहे, जब होया जन्म हमारा था ॥

क्रोध बढ़ा इस भांत से, मचा युद्ध घन घोर ।
नाना मामा आगये, सुन हनुमत की शोर ॥

टंकोर धनुषों की होती, बाणों से सब नभ छाय गया ।
दोनों सेना के वीरों ने, बल दिखलाया तब नया नया ॥
आखिर में अंजन के सुत ने, नाना जीता पकड़ लिया ।
जब दोनों इक स्थान मिले, तब बैर सभी ने भगा दिया ।
दोनों गल मिलकर के रोये, भूलों पर पश्चाताप किया ।
दो. मदद राम और लक्ष्मण को, ये कहकरे उनको भेज दिया ।

पवनकुमार आगे बढ़े, पहुंचे बन के मांहि ।
देखे दो मुनिराज को, प्रेम द्वेष जिन नाहिं ॥

बन में थी अगनी लगी हुई, थे वृक्ष गिर रहे जल बल कर ।
धर ध्यान खड़े मुनिराज वहां, अपनी आतम को निश्चल कर ॥
देखा मुनियों पर कष्ट पड़ा तब दया भाव मनमें आये ।
करने को रक्षा जीवों की, विद्या से बादल बरसाये ॥
उपसर्ग दूर कर मुनियों का, लेकर आसीष चले आगे ।

शत्रू गण आते देख उन्हें, निज प्राण बचा करके भागे।
कुछ दूर बढ़े आगे त्योंही, रुक गया अचानक उनका दल।
सोचा क्या धर्म स्थान यहां, जिसका है अतिशय अति प्रबल॥
जब मन्त्री से कारण पूंछा, तब विनय सहित ये बात कही।
लंकापत ने माया द्वारा, रच रखा यन्त्र श्रीमान यही॥
सारी सेना को दूर रखा, बन्दर का भेष बनाया है।
घुस गये पेट में पुतली के, माया को तुरत भगाया है॥
फिर तोड़ दिया माया का गढ़, जो कुछ था सब बर्बाद किया।
ये देख वहां के रक्षक ने, हनुमत पर अपना कोप किया।

दोनों सेना लड़ पड़ी, जूझ पड़े सब वीर।
करी दया हनुमान ने बोले वचन गम्भीर॥

क्यों मौत तुम्हारी आई है जा इतना कोप दिखाते हो
बोलो अभिमान वचन ऐसे, मरने से भय ना खाते हो॥
ये कहकर उसको मारा है, सेना सारी की तितर बितर।
कोपित होकर उसकी कन्या फिर आती इनको पड़ी नजर॥
यौवन से थी भरपूर अति, सुन्दर सब अंग सुहाते थे।
कुच अरु कपोल आदि सब ही, पुरुषों के मन को भाते थे॥
देवी सी कोप दिखाती थी, था शोक पिता के मरने का।
था ख्याल उधर से रावण की, आज्ञा को पालन करने का॥

बोली ललकार पवनसुत को, क्यों मेरे पिता को मारा है ।
ले सम्हल बचा अब प्राणों, को. मैंने भी धनुष सम्हारा है ॥
बोले हनुमान बचन ऐसे, नारी से युद्ध नहीं करते ।
तुम वार करो मैं रोकुंगा, क्षत्री गण कभी नहीं डरते ॥
छिड़े युद्ध इस भांति से दोनों दोनों ओर ।
काम बाण अरु धनुष है, बाण चले इम घोर ॥
कन्या ने आखिर में छोड़ा, एक तीर पत्र जिसमें था यूं ।
हे प्राणनाथ स्वीकार करो, दासी को तड़फाते हैं क्यूं ॥
था प्रेम बढ रहा दोनों में, दोनों ही बढ कर मिले जुले ।
जो अभी तलक मुरझाये थे, दोनो के दिल के पुष्प खिले ॥
स्वीकार किया उस कन्या को, रात्री भर उसके पास रहे ।
सारी सेना को छोड़ वहां, प्रातः लंका हनूमान गये ॥
जा पहुंचे पास विभीषण के, सब समाचार उससे पाये ।
उपवास सुना सीता का जब, चल दिये अंजना के जाये ॥
थी सीता रोती शोक भरी, कर रही विलाप अती नाना ।
देखो अब क्या क्या होता है, जय वीर मुझे है अब जाना ॥

(चला जाता है)

अंक द्वितिय—दृश्य पंचम

(अशोक वाटिका में सीता गा रही है)

गाना

सिया को काहे बिसारी राम ।
जबसे छूटी प्राणनाथसे, प्राण हुवे बे काम ।
बिना प्राण प्यारे के पाये, नहीं मुझे आराम ॥सि०॥
मुझ बिन तुम, तुम बिन मैं व्याकुल नहीं मिले सुखधाम
आओ दरश दिखाओ मुझको, दो मुझको विश्राम ॥

(ऊपर से मुद्रिका गिरती है उसे देख कर)

हैं, ये मेरे पती की मुद्रिका यहां कहां से आई । आज मेरे परम सौभाग्य हैं जो इनकी ये मुद्रिका आई ।

मन्दोदरी—(आकर) सीता ! आज तो बड़ी प्रसन्न मालूम हो रहीं हो ! मालूम होता है मेरे स्वामी के प्रेम ने मन में स्थान बनाया है ।

सीता—तेरे स्वामी का प्रेम और मेरे मन में स्थान बनावे, ये असंभव है ।

चन्द्र सूर्य स्थित होजावें, पर्वत अपनी छोड़े रीत ।
कभी नहीं हो सकता सीता, पर प्रीतम से जोड़ें प्रीत ॥

म०—तो फिर क्या कारण है ?

सी०—आज मेरे पती की मुद्रिका मुझे प्राप्त हुई है ।

म०—सीता ! सीता ! तू कोइ पागल तो नहीं होगई ।

सी०—कृपा करके जो मेरे पती की मुद्रिका लेकर आये हैं वो मुझे दर्शन देकर मेरे संशय को दूर करो ।

हनूमान—(आकर) माता तुम्हें मेरा बार २ नमस्कार है !

सी०—कहो भाई तुम कौन हो इतने बड़े समुद्र को उलांघ करे तुम यहां कैसे आये ? मेरे पती और देवर तो प्रसन्न हैं ।

हनूमान—माता मैं हनूमान हूं । मैं विद्याधर हूं मेरे लिये समुद्र कोइ बड़ी बात नहीं । आपके पती और देवर कुसल पूर्वक हैं ।

सी०—क्यों भाई तुम्हारे सरीखे विनयवान और बलवान मेरे पती के पास कितने पुरुष हैं ?

म०—सीता इनके समान तो सारे भरत क्षेत्र में दूसरा मनुश्य नहीं है । इनका बल और पराक्रम अतुल्य है । मेरे स्वामी इन्हें अपने पुत्रों से भी अधिक चाहते हैं । इनके दर्शनों के लिये लोग व्याकुल होते हैं । किन्तु इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि ये रामचन्द्र के दूत बन कर आये हैं ।

हनूमान—मन्दोदरी ? तुम पतिव्रता हो । जिस पती के द्वारा तुम्हें देवियों के से सुख प्राप्त हैं । उसी के अपयश में तुम सहायता करती हो । अपने पती को आप ही नरकों के दुख में डालना चाहती हो । तुम रावण की महिषी अर्थात पटरानी हो । मैं तुम्हें महिषी अर्थात भैंस समझता हूं ।

म०—हनुमान ! हनुमान !! तुम्हारी और ये जबान । उन गीदड़ों के संग में रह कर ये कृतघ्नता । उन सबको हराना मेरे स्वामी के बांये हाथ का खेल है । अभी तक वो तुम्हें अपना समझते थे किन्तु अब तुम्हें शत्रु समझ कर कठिन से कठिन दण्ड देंगे ।

सीता—मन्दोदरी ! तूने मेरे स्वामी के बल को नहीं सुना है । जिस समय वज्रावर्त धनुष उठाया था तब सारा आकाश मण्डल गूंज उठा था । याद रख ! तुझे शीघ्र ही विधवा होना पड़ेगा हमेशा के लिये रोना पड़ेगा ।

मन्दोदरी—सीता ! तू ऐसे अभिमान के बचन बोलती है, ले सम्हल मैं तुझे प्राणों रहित करती हूं ।

(मन्दोदरी वार करती है, हनूमान बचा लेते हैं । मन्दोदरी क्रोधित होकर चली जाती है, सीता और हनूमान ही रह जाते हैं ।)

हनूमान—माता, तुम मेरे कांधे पर बैठ जाओ मैं तुम्हें

तुम्हारे स्वामी के पास पहुंचा दूंगा । वरना न मालूम तुम्हें और क्या २ कष्ट यहां रह कर उठाने पड़ेंगे ।

सीता—नहीं भाई ! मैं इस प्रकार नहीं जा सकती । यदि मेरे स्वामी मुझसे पूछेंगे कि तू बिना बुलाई क्यों आई तो मैं क्या उत्तर दूंगी । लो तुम मेरा यह चूड़ामणी उन्हें दे देना और मेरी सब अवस्था उन्हें बता देना ।

हनूमान—जैसी आज्ञा । मैं तुम्हारे लिये खाना मंगाता हूं । क्यों कि अब तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगई है । मैं विभीषण के घर जाता हूं वहीं भोजन करूंगा । प्रणाम,

(चले जाते हैं । पर्दा गिरता है । विभीषण और हनूमान दोनों आते हैं ।)

विभीषण—कहो भाई साहब क्या समाचार लाये ?

हनूमान—मैं माता सीता को भोजन खिला आया हूं । माता के रूप को देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ ?

विभीषण—क्या कहूं बेचारी भांति २ के कष्ट पा रही है । भाई साहब को मैं अनेक बार समझा चुका किन्तु उनकी समझ में एक भी नहीं आता । आप उन बेचारों की सहायता कर रहे हैं इसमें मुझे बड़ा हर्ष है ।

हनूमान—मुझे एक बार रावण से मिलना है ।

विभीषण—देखो ! देखो ! वे सामने से सिपाही लोग तुम्हें ही पकड़ने आ रहे हैं। तुम भाग जाओ।

हनूमान—आप भाग जाइये वरना आपको मेरे साथ खड़े हुवे सुन कर रावण आप पर नाराज होगा। मुझे रावण से मिलने का यह अच्छा मौका है।

(विभीषण चला जाता है। सेना आती है। हनूमान उन्हें मार कर भगा देता है।)

हनूमान—थोड़ा कौतूहल अवश्य दिखाना चाहिये।

(चला जाता है।)

अँक द्वितीय—दृश्य छठा

(रावण का दर्बार। मेघवाहन इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, विभीषण और दो मन्त्री बैठे हैं। दूत आता है।)

दूत—महाराजाधिराज की जय हो। उस हनूमान ने लंका में घोर उपद्रव मचा रखा है। बड़े बड़े रत्नोंके महलों को अपनी जंघा से चूर्ण कर रहा है। जलाशय तोड़ दिये हैं सारी सड़कों पर कीचड़ हो रही है, तमाम मकानों को ढा रहा है, नगर के लोग त्राही मचा रहे हैं। दुहाई है महाराज की।

रावण—मेरे टुकड़ों का पला हुआ हनूमान और मेरे ही नगर पर उपद्रव। मेघवाहन जाओ जिस प्रकार हो सके जीता या

मरा हुआ उसे मेरे पास पकड़ कर लाओ।

मेघवाहन—जो आज्ञा! (चला जाता है)

रावण—कोई डर की बात नहीं। देखता हूं कौन कौन मुझसे अलग होकर उन निर्धन बनवासियों की सहायता करता है। यदि सारे पृथ्वी के राजा लोग एक ओर होजायें तो भी क्या परवाह है रावण अकेला ही सबको काफी है।

दूत—(भागा आकर) महाराज गजब होगया। हनूमान अकेला ही सबको मार मार कर भगा रहा है। मेघवाहन खतरे में है तुरन्त सहायता भेजिये।

रावण—ओ! उस चार दिन के छोकरे में ये शक्ती।

इन्द्रजीत—पिताजी मुझे आज्ञा दीजिये मैं अभी उसे नाग पाश द्वारा बांध कर दर्बार में लाता हूं।

रावण—जाओ उसे मेरे सामने पकड़ कर लाओ।

(इन्द्रजीत चला जाता है)

आखिर ये हनूमान उनकी सहायता के लिये गया क्यों?

मन्त्री—सुनिये महाराज। सुग्रीव की राम ने सहायता की इस लिये सुग्रीव ने इन्हें बुलाया ये राम की सहायता के लिये आये। वहां से सीता की सुध लेने के लिये चले। बीच में इनके नाना का नगर पड़ा उसको इन्होंने जीत कर राम की सहायता के लिये भेजा। अगाड़ी बढ़ने पर एक बन में दो मुनि

राजों को अग्नी में जलते हुवे बचाया। आगे बढ़ कर आपका बनाया हुआ माया का यन्त्र तोड़ कर लंका सुन्दरी को परणा !

दूत—(भागा आकर) महाराज की जय हो। इन्द्रजीत हनुमान को नाग फांस में फांस कर ला रहे हैं।

इन्द्रजीत—(हनुमान को अगाड़ी करके) देखिये पिताजी आपके चरणों के प्रशाद से मैं इसे बांध लाया हूं। अब जो उचित समझें इसे दण्ड दें।

रावण—हनूमान ! हनूमान !! मैंने तुझे पुत्र समझ कर राज्य दिया और मेरे ही साथ में तूने ये विद्रोह किया। तुझे लाज नहीं आती।

हनूमान—तुम्हारा मेरा राजा और प्रजा का नाता था। जिस समय राजा अन्याय करता है उस समय उसका साथ देना धर्म के विरुद्ध है। तुम तो क्या अन्याय और अनीती के कारण पिता पुत्र का सम्बन्ध छूट जाता है।

कुंआरी कन्यां से यारी, कु नृपति की सेवा करके।
कुमित्रों के संग में रह कर, पुण्य सब नष्ट भ्रष्ट करके॥
नरक में दुःख उठाते हैं, घूमते हैं धक्के खाते।
न्याय और नीती पर चलते, वहीं हैं जग में यश पाते॥

रावण—तूने कितना बड़ा अधर्म किया हैं जो अपने सहारा देने वाले का साथ छोड़ कर उन निर्धन वनवासियों की

सेवा की ! जिनके ऊपर तू इतना उछल रहा है उन्हें मैं एक चुटकी से पीस सकता हूं।

हनूमान—जिन्हें तुम बल हीन समझते हो वो तुम्हारे लिये काल हैं। यदि अब भी अपना भला चाहते हो तो जाओ रामके पैरों में गिरकर उनसे क्षमा मांगो। और सीताको लौटा दो।

रावण—ओ नहीं सुना जाता। इस दुष्ट की मौत निकट है। जाओ इसे मेरे सामने से ले जाओ। इसे नंगा करके सारे नगर में पागल की तरह से घुमाओ।

(सेवक लोग हनूमान को ले जाते हैं)

मेरे द्वारा पाला हुआ और मेरे लिये ये शब्द।

दूत—(भागा आकर) गजब होगया।

रावण—क्या हुआ ?

दूत—हनूमान सब बन्धन तुड़ा कर आकाश में उड गया लंका के सारे दरवाजे ढा दिये। आपका राज महल चूर २ कर दिया बन्दीखाना तोड़ कर सब कैदियों को छुड़ा लेगया।

रावण—कोई चिन्ता की बात नहीं, सब देखा जायगा।

बिभीषण—भाई साहब ! आप इस बात को अच्छी प्रकार जानते हैं कि जब तक आप नीती और न्याय पर चलते रहे आपकी कभी पराजय नहीं हुई। न्याय और नीती पर चलने

वालों की सदा जीत होती है। लंका इस समय आपत्ती में है। ये सब आपत्ती सीता के कारण हैं। आप मेरा कहा मान कर सीता लौटा दीजिये।

इन्द्रजीत—चाचा ! चाचा !! तुम जो कह रहे हो सिंहों के अखाड़े में रेह कर स्यार बन रहे हो। पृथ्वी के जितने रत्न हैं वो पिताजी के लिये हैं। सीता भी एक स्त्री रत्न है ! उसे लौटा दिया जाय ये असंभव है।

विभीषण—ओ दुष्ट इन्द्रजीत ! पुत्र कहला कर पिता का अहित सोचते हुये तुझे लज्जा नहीं आती। सुग्रीव विराधित महेन्द्र हनूमान भामंडल आदि सब उनकी सहायता के लिये तैय्यार हैं उन लोगों के सामने तेरा बाल भी नजर नहीं आयेगा! वो न्याय मार्ग पर हैं उनकी अवश्य जीत होगी।

रावण—दुष्ट विभीषण ! उस बच्चे से लड़ते हुवे लज्जा नहीं आती ? मेरा भाई होकर मेरे शत्रू की मेरे सामने बडाई करता है ? ले मैं अभी तेरा जीवन समाप्त करता हूँ।

(रावण वार करता है। दोनों में युद्ध होता है। मन्त्री लोग बचाते हैं।)

मंत्री—महाराजाधिराज आपको ये उचित नहीं कि भाई को मारें, आप इन्हें बहुत करें तो अपने राज्य से निकाल दीजिये।

रावण—अच्छी बात है इस दुष्ट को मेरे राज्य से बाहर

निकाल दो।

विभीषण—रावण! अब तक मेरा तेरा भाई का नाता था किंतु अब शत्रू का नाता है। यदि तू रत्नश्रवा का पुत्र है तो मैं भी उसीका हूं। इस अपमान का बदला तुझे अच्छी तरह दूंगा तीस अक्षौहिणी सेना से राम को सहायता दूंगा। और तेरा सत्यानाश कर दूंगा। (चला जाता है।)

मंत्री—महाराज ये बहुत बुरा हुआ।

रावण—बहुत अच्छा हुआ। ऐसे विद्रोहियों को मैं अपने राज्य में नहीं रखना चाहता।

पर्दा गिरता है

अंक द्वितिय—दृश्य सांतवां

(विभीषण एक दूत सहित आता है।)

विभीषण—जिस समय किसी मनुष्य के विनाश की घड़ी आती है, तो उसकी बुद्धि पहले से ही पलट जाती है, लोग कहते हैं कि जिसका नमक खाना उसका अन्त तक साथ निभाना चाहिये। किंतु ऐसा कहना सर्वथा उचित नहीं है। यदि खास पिता भी हो, और वह अधर्म में चलता हो तो कदापि उसका साथ नहीं देना चाहिये। जो किसी भय से भी खोटे पुरुषों का साथ देते हैं वो अपने लिये नरक का सामान करते हैं। धार्मिक

पुरुषों की सहायता करना मनुष्य के लिये परम धर्म है। दूत! तुम जाओ श्री रामचन्द्रजी से मेरा समाचार कहो। मैं तन मन धन से उनका साथ दूंगा।

दूत—जो आज्ञा महाराज। (चला जाता है)

(विभीषण भी चला जाता है। पर्दा खुलता है।)

(रामचन्द्रजी अपने सब मित्रों सहित बैठे हुये हैं।)

सेवक— गाना

न्याय पर होजाओ बलिदान।

न्याय मार्ग पर चलें पुरुष जो, सहते कष्ट महान।
नहीं ध्यान दे बनते उन्नत, पाते हैं सम्मान॥
न्याय मार्गका धारक रावण, करता है अन्याय।
पर स्त्री को हर कर मूरख, बना बड़ा अज्ञान॥न्या०॥
न्याय मार्ग पर युद्ध छिड़ेगा, शत्रू का संहार।
न्याय मार्ग पर लड़ने वालों, का होगा यश गान॥न्या०

हनूमान—(आकर) महाराजा रामचन्द्र की जय हो।

राम—कहो मित्र क्या समाचार लाये? सीता की क्या अवस्था है।

राम—(चूड़ामणी को हृदय से लगाकर मूर्छित होजाते हैं

सब लोग उनका उपचार करते हैं।) हा ! सीते तू कभी मुझसे अलग नहीं रही । इस समय तेरी क्या अवस्था होगी ।

लक्ष्मण—भाई साहब ! धैर्य धारण कीजिये। माता सीता को लाने का उपाय कीजिये।

भामंडल—(आकर) श्रीरामचन्द्रजी को मेरा प्रणाम !

राम—(बड़े हर्ष से) प्रिय भामंडल ! आओ, आओ, मैं तुम्हारी ही बाट देखता था। (दोनों गले मिलते हैं)

भामंडल—प्रियवर मुझे सब वृत्तान्त मालूम होगया है। रावण को मैं इस पृथ्वी से मिटा दूंगा। अपनी बहन के बदले उसके प्राणों का दहन करूंगा।

हा बहन, तुम किस प्रकार उस स्थान पर अपना जीवन चलाती होंगी ? तुम्हारे जैसी सती पर ये आपत्ती कहां से टूट पड़ी।

दूत—(आकर) महाराज श्रीरामचन्द्रजी की जय हो। विभीषण का दूत आपसे मिलना चाहता है।

राम—उसे मेरे समीप भेजो। (दूत जाता है)

लक्ष्मण—भाई साहब मुझे इसमें थोड़ा सन्देह मालुम होता है। कहीं विभीषण राजनीती तो नहीं चल रहा है। कहीं वो हमसे कपट तो नहीं करेगा।

हनूमान—आप इस बात से निश्चिन्त रहिये। विभीषण धर्मात्मा पुरुष है। उसे रावण का व्यवहार पसन्द नहीं आया होगा इसी लिये वो न्याय मार्ग पर आपको सहायता देना चाहता है। मालूम होता है रावण ने उसका अपमान किया है।

दूत—(आकर) महाराज श्री रामचन्द्रजी की सब मित्रों सहित जय हो।

राम—कहो दूत! क्या समाचार लाये हो?

दूत—महाराज मैं विभीषण का दूत हूं। जिस समय विभीषण रावण को समझा रहे थे उस समय रावण को क्रोध आया विभीषण ने अपमानित होकर तीस अक्षौहिणी सेना लेकर आपको सहायता देने का संकल्प कर लिया है। क्योंकि वह समझते हैं कि यदि न्याय मार्ग पर हो और शत्रु भी हो तो उसका साथ देना चाहिये। आप संशय रहित होकर मुझे आज्ञा दीजिये। मैं उन्हें आपके सन्मुख लाऊं।

राम—अवश्य, मैं उनसे मिलने के लिये बहुत इच्छुक हूं।

दूत—मैं अभी उन्हें आपके पास भेजता हूं।

(चला जाता है)

सुग्रीव—मुझे निश्चय है कि हमारी युद्ध में अवश्य जीत होगी। क्योंकि प्रथम कारण तो हम न्याय पक्ष पर हैं। दूसरा

कारण जितने भी राजा लोग श्रीरामचन्द्रजी की शरण में आते हैं। सब से मित्रता का व्यवहार होता है।

विभीषण—(आकर) हे राम मुझे शरण दीजिये ?

राम—(उसको हृदय से लगा कर) मित्र विभीषण ! तुम्हारे भाई ने जो तुम्हारे साथ व्यवहार किया उससे मुझे दुःख होता है। किन्तु कोई बात नहीं तुम धर्मात्मा हो। न्याय पक्ष पर हो। तुम्हारी अवश्य जीत होगी।

विभीषण—भाई का अपमान मेरे हृदय में खटक रहा है। मैं तीस अक्षौहिणी सेना से तुम्हें सहायता देकर उसका नाश कराउंगा। सीता वहां पर व्याकुल हो रही है। जल्दी से लंका पर चढ़ाई करके रावण को मार कर उसे बन्धन से छुड़ाइये।

पर्दा गिरता है

(साधू और ब्रह्मचारी आते हैं)

साधु—ब्र० जी मैं आपसे एक बात पूछता हूं।

ब्र०—अवश्य पूछिये।

सा०—रावण इतना बलवान था और सीता एक अबला थी रावण के सामने कुछ भी नहीं थी। रावण ने उस पर बलात्कार क्यों नहीं किया।

ब्र०—बड़े पुरुष अपनी प्रतिज्ञा के दृढ़ पालक होते हैं।

उसने एक केवली के सामने ये प्रतिज्ञा की थी कि जो स्त्री उसे न चाहेगी, उसको वो बल पूर्वक अपनी अर्धांगिनी न बनायेगा। इसको दृढ़ता से पालने में ही उसने तीर्थंकर प्रकृति का बन्धकर लिया तीसरे चौथे भव से मोक्ष जायेगा।

स्वा०---अक्षौहिणी किसे कहते हैं?

उ०—जिस सेनामें इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर रथ इतने ही हाथी एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास पियादे और पैंसठ हजार छै सौ दस घोड़े हों उसे एक अक्षौहिणी कहते हैं। ऐसी तीस अक्षौहिणी सेना लेकर विभीषण राम से आकर मिला था। रावण के पास चार हजार अक्षौहिणी सेना थी, रामके पास सब राजाओं को मिलाकर एक हजार अक्षौहिणी से अधिक नहीं थी, फिर भी युद्ध में राम की जीत हुई।

साधु—इसमें आप लक्ष्मण को मूर्छा आदि दिखायेंगे या नहीं?

उ०---हमारे पास इतना समय नहीं है। और न ही ये मूर्छा आदि कोई खास दिखाने की बातें हैं।

यदि हर एक बात देखनी है तो श्री पद्मपुराण नामक ग्रंथको पढ़ो जिससे हृदय के पट खुलकर उसमें ज्ञानका प्रकाश हो। ये अंक हमें युद्ध दिखाकर समाप्त करना है। दोनों सेनायें एक स्थान

पर, दोनों में घमासान युद्ध होरहा है। दोनों ओर के वीर लोग अपने प्राण दे रहे हैं। देखिये वो कैसा दृश्य है।

(दोनों चले जाते हैं।)

(पर्दा खुलता है। रण के बाजे बज रहे हैं। भांति भांति के शब्द हो रहे हैं। वीर लोग वीरों से भिड़ रहे हैं। रण में लड़ लड़ कर गिरते हैं। उन्हींके ऊपर होकर दूसरे युद्ध कर रहे हैं।)

ड्राप गिरता है

अंक तृतिय—दृश्य प्रथम

(अयोध्या में महलमें भरथजी सो रहे हैं। हनूमान और भामण्डल आते हैं।)

हनूमान—आधीरात के समय भरतजी सुख निद्रा में सो रहे हैं। यदि इनको जगायें तो कोपित होने का भय, नहीं जगायें तो उधर लक्ष्मण के प्राण जाते हैं। विशल्या बिना इनकी सहायता के नहीं मिल सकती।

भामण्डल—चाहे कुछ भी हो हमें भरथजी को जगाना पड़ेगा भरथजी बहुत सरल चित्त हैं वो कभी क्रोधित नहीं होंगे। देखो वो स्वयं ही जाग उठे।

भरथजी—कहो भाइयों आप लोग इस समय यहां पर

किस कारण से किस प्रकार आये ?

(आगे आ जाते हैं । पर्दा गिरता है ।)

दोनों—श्री भरथजी को हमारा नमस्कार ।

भामंडल—आप मुझे जानते होंगे, मैं भामण्डल हूं । ये हनुमान हैं । हम दोनों रामचन्द्रजी की सहायता कर रहे हैं । वहां पर रावण ने सीता को हरली थी, जिसके कारण युद्ध हो रहा है लक्ष्मण के रावण की शक्ति लगी है सो वो अचेत पड़े हुवे हैं । उन्हीं का समाचार देने हम आकाश मार्ग से आपके पास आयेहैं ।

भरथ—शोक, शोक, महाशोक, आह रावण की इस प्रकार शक्ति बढ़ गई, कोई चिन्ता नहीं, मैं अभी अपनी सारी सेना लेकर आप लोगों के साथ चलता हूं और उसको उसकी धृष्टता का देता हूं फल ।

हनूमान—इस समय क्रोध करने से काम न चलेगा । सारी सेना लंका में पड़ी हुई है । हम लोगों की सेना ही उसके लिये काफी है । बीच में समुद्र होने से आपकी सेना वहां तक जा भी न पायेगी ।

भरथ—तो क्या करना चाहिये ? जिसमें भाई लक्ष्मणजी का हित होसके वो उपाय बताओ ।

भामंडल—आपके राज्य में विशल्या नामकी कन्या है । उसके स्नान का जल हमें दिलवा दीजिये । उसका छींटा लक्ष्मण

रावण—तू इतना मुंह चलाता है, नहीं डरता हैं मरने से ।
अभी यमपुर को जायेगा, रखा क्या बात करने में ॥

(दोनों में युद्ध होता है, कोई भी नहीं हारता, युद्ध बन्द होता है रावण के हाथ में चक्र आता है रावण उस चक्र को लक्ष्मण के मारने के लिये फेंकता है। वह चक्र लक्ष्मण के तीन प्रदक्षिणा देकर लक्ष्मण के हाथ में आजाता है।) .

सब—बोल चक्रवर्ती लक्ष्मण की जय ।

लक्ष्मण—अभी तक तू मुनी वाक्य को झूंठ मानता था अब प्रत्यक्ष देखले । तू प्रतिनारायण है तो तुझे मारने के लिये नारायण तेरे सामने खड़ा है अब तक ये चक्र तेरे पास था किन्तु अब मेरे पास आगया है. तेरा शस्त्र तेरे ही प्राणों का घातक होगा ।

रावण—(स्वगत) आह, निमित्तज्ञानी मुनिके वाक्य ठीक हुवे, मुझ प्रति वासुदेव अर्थात प्रति नारायण अर्थात अर्धचक्री की मृत्यु इनके हाथों से होगी मुझ दुष्टने मोह के वश में होकर सीता को हर कर अपनी मृत्यु आप बुलाई । अब किसी प्रकार भी मेरा जीवन नहीं है, विभीषण और मन्दोदरी ने मुझे समझाया। उसे भी न समझा। विभीषण ! मन्दोदरी ! क्षमा करना। भाई कुम्भकर्ण ! पुत्र मेघनाथ ! और इन्द्रजीत ! क्षमा करना । मैं इस संसारमें कुछ ही समय के लिये जीवित हूं । मेरी मृत्यु मेरे सामने खड़ी है ।

मेरे दुष्कर्मों का फल मुझे नरकों में जाकर मिलेगा।

लक्ष्मण—बोल क्या सोचता है? यदि अब भी अपना जीवन चाहता है तो सीता लौटा दे। तू सुख पूर्वक राज्यकर वरना याद रख ये नारायण तेरे मारने के लिये खड़ा हुआ है। अब तक मैं साधारण मनुष्य था किंतु अब चक्र हाथ में आने से चक्रवर्ती कहलाता हूं।

रावण—ओ अभिमानी लक्ष्मण! जरा से चक्रको पाकर तू क्यों इतना फूल रहा है. रावण तेरी इन गीदड़ भभकियों से डरने वाला नहीं, अपने मुंह से यदि तू नारायण वासुदेव और चक्रवर्ती बनता है तो बन. किंतु मैं तुझे कुछ नहीं समझता। तुझे चक्र मिल गया तो क्या हुआ। मेरी भुजायें ही चक्रों का काम करेंगी।

लक्ष्मण—ओ मान के पुतले! ले सम्हल, यदि तेरी यही इच्छा है तो चक्र के वार को रोक।

(लक्ष्मण चक्र चलाते हैं। रावण के वह लगकर फिर लक्ष्मणके पास आजाता है, रावण पृथ्वी पर गिरकर मर जाता है। लोग जै बोलते हैं।)

विभीषण—(रोता है) आह, भाई भाई, मैंने तुम्हें कितना समझाया था तुमने एक न सुनी, लाखों को जीवन प्रदान करने

वाले आज निर्जीव पड़े हो । उठो, उठो, आप तो महलों में सोते थे, आज भूमी पर क्यों पड़े हो !

राम—विभीषण ! तुम इतने व्याकुल न होओ । धीर धरो इस पृथ्वी पर जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु अवश्य ही होती है, केवली के वाक्य झूठे नहीं हो सकते । रावण की मृत्यु लक्ष्मण के हाथ से ही होनी थी । नारायण सदा से प्रति नारायण की मृत्यु का कारण होता है ।

(इतने ही में मन्दोदरी रोती हुई आती है ।)

मन्दोदरी:— प्राणनाथ ! मुझ अबला को छोड़ कर कहां चल दिये । आपने तो कहा था कि मैं युद्धसे जीत कर आऊंगा । अब ये आपकी क्या अवस्था हो रही है ।

पर्दा गिरता है

अँक तृतिय—दृश्य चतुर्थ

(राम लक्ष्मण सब राजाओं सहित आते हैं ।)

विभीषण:— लंका आपके अधिकार में है । आप जैसा चाहें इसे करें ।

राम:— मित्र विभीषण ! तुम मेरे सामने अपने भाई और भतीजों को जो कि बन्धन में पड़े हुवे हैं लाओ । ताकि उन्हें मैं बन्धनमुक्त करूं ।

विभीषण:—जैसी आज्ञा, (जाता है और लेकर आता है)

राम—कुम्भकरण, मेघनाथ, और इन्द्रजीत, आप लोग जानते हैं, कि रावण खोटे मार्ग पर था। दूसरे उसकी मृत्यु लक्ष्मण के हाथ से थी, उसे कोई रोक नहीं सकता था, अब जो हुवा सो हुआ, यदि तुम लोग बन्धन से छूटना चाहते हो और आनन्द सहित विभीषण सहित लंकाका राज्य करना चाहते होतो हमें मस्तक नमाओ।

कुम्भकरण—जैसा आप कहते हैं, हम लोग उससे सह-मत हैं हम आपको मस्तक नमाते हैं। आज से हम आपके सेवक बनकर रहेंगे।

राम—विभीषण! इन्हें बंधन मुक्त कर दो।

(विभीषण उन्हें खोल देता है, मेघनाथ, और इन्द्रजीत उसके पैर छूते हैं। कुम्भकर्ण गले से मिलता है, फिर तीनों राम के और लक्ष्मण के पैर छूते है)

सब—बोल श्री राम लखन की जै।

हनूमान—महाराज! जिसके लिये आपने ये सब कुछ किया है उसकी चलकर सुध क्यों नहीं लेते? वो आपके विरह में व्याकुल हैं।

राम—आह, सीता! तुम मेरे विरह में कितेनी व्याकुल होंगी? मित्र विभीषण! सीता कहां है?

सीता—देव ! मेरी इच्छा सिद्ध क्षेत्र आदि तीर्थों की वन्दना करने की है।

राम--देवी ! यह तुम्हारी अत्यन्त उत्तम इच्छा है। मालुम होता है तुम्हारे गर्भ में आये हुवे पुत्र मोक्षगामी होंगे। जिसके प्रभाव से तुम्हारे ऐसे भाव हो रहे हैं। मैं अवश्य ही तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा। तुम्हें सारे तीर्थों की वन्दना कराऊंगा।

सीता—आपका मेरे ऊपर अपार प्रेम है। आपने मेरे लिये कितने कष्ट सहे। मेरे जैसी भाग्य वाली दूसरी न होगी जिसका पति ऐसा पुरुषोत्तम हो।

राम—प्राणेश्वरी ! प्रेम प्रेम से ही उत्पन्न होता है। ये कोई बाजारू चीज नहीं है जो पैसा देकर मोल ली जा सके। जितना प्रेम तुम्हारा मुझ से है उतना ही मेरा भी तुम से है। तुमने मेरे बिना किस प्रकार कष्ट सहा सो मैं जानता हूं। पतिव्रता से जग को प्रेम होता है। पतिव्रता में एक आकर्षण होता है जो मनुष्य को अपनी ओर खींचता है।

सीता—नाथ ! ये सब तो आप ही की कृपा है। आप ही ने मुझे ये पाठ पढ़ाया है। मैं आपकी अर्धांगिनी हूं।

राम—प्रिये, जगत जिसे प्रेम कहता है वो प्रेम नहीं। किन्तु प्रेमाभास है। प्रेम उसे कहते हैं जिसका बंधन दृढ़ हो।

चाहे दूर रहे या पास रहें जिनका आपस में मन खिचता रहे वो ही दो सच्चे प्रेमी हैं और वही पवित्र प्रेम है ।

गाना

सीता—प्रेम ही है जीवन आधार ।
बिना प्रेमके कठिन ग्रहस्थी, पले न ग्रहस्थाचार ॥
राम—बिना ग्रहस्थी धर्म नहींहै, ना हो मुनि अहार ॥प्रे०
सीता—प्रेम पती से नेहा लगाऊं ।
राम—प्रेम नगर में तुम्हें बसाऊं ॥
सीता—प्रेम से हो श्रृंगार ।
दोनों—प्रेम तन्तु में बंधकर दोनों, सेवें धर्माचार ॥
हां हां सेवें धर्माचार ॥
प्रेम ही है जीवन आधार ॥

(दो सखी आती है)

दोनों सखी—श्री महाराज पुरुषोत्तम और महारानी की जय हो ।

१ सखी—महाराजको राज दर्बारमें प्रजा स्मरणकर रही है।

राम—अच्छा तुम लोग सीता का मन बहलाओ मैं राज दर्बार में जाता हूं । (चले जाते हैं)

सीता—हैं, अचानक ही मेरी दाहिनी आंख क्यों फड़कने लगी।

२ सखी—महारानी जी कहिये हम आपकी क्या सेवा करें। हमारे आते ही आप व्याकुल क्यों हो गईं?

सीता—सखी रात मैंने एक दुःस्वप्न देखा है। इस समय प्राणनाथके जाते ही मेरी दाहिनी आंख फड़कने लगी अवश्य इसमें कुछ रहस्य है। न मालूम अब फिर क्या दुख मिलने वाला है।

१ सखी—महारानीजी! आप शोक न कीजिये। चलिये उद्यान में चलिये। (सब चली जाती हैं)

अंक प्रथम—दृश्य पंचम

(दर्बार में प्रजा के लोग खड़े हुवे हैं। रामचन्द्रजी आते हैं। प्रजाजन उन्होंको शीश झुकाते हैं।)

राम—कहो भाइयों! क्या प्रार्थना लेकर आये हो? (सब चुप रहते हैं) कहो, कहो, तुम लोग निःसंकोच होकर जो कहना हो सो कहो; (फिर चुप रहते हैं) क्यों तुम लोग चुप क्यों हो। जिसकी शिकायत तुम्हें करनी हो। निर्भय होकर कहो। यहां पर इस समय तुम लोगोंके और मेरे सिवाय कोई नहीं है।

१ मनुष्य—महाराजाधिराज! आप हमें अभयदान दें तो हम कहें।

राम—मैं तुम्हें अभयदान देता हूं। तुम निःसंकोच होकर जो कहना है सो कहो।

१ मनुष्य—आज कल बड़ा अनर्थ मचा हुआ है। जो चाहे जिसकी स्त्री को हर ले जाता है। उस स्त्री का पति फिर उसे घर में रख लेता है। बड़े बड़े सामंत दीनों की स्त्रियां चुरा कर ले जाते हैं उनके साथमें कुचेष्टायें करते हैं। किंतु ये रवाज चल गया है कि पर पुरुष के घर में रही हुई स्त्री को भी लोग रख लेते हैं। वो कहते हैं कि जब पुरुषों में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी ने ही रावण के घर में रही हुई सीता रखली तो हमें कौन रोक सकता है। यथा राजा तथा प्रजा। आप पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, धर्मात्मा हैं, न्यायवान हैं ऐसा उपाय कीजिये जिससे आपका ये अपयश दूर हो। और प्रजा में फैला हुआ अनर्थ मिट जाय।

राम—अच्छा तुम लोग जाओ। मैं इस बात पर विचार करूंगा।

सब—जो आज्ञा। (चले जाते हैं)

राम—(स्वगत) सीता रावण के यहां रह आई है। माना कि वह परम सती है किन्तु लोक में उसके रखने से मेरा अपयश फैल रहा है जब तक सीता को घर से नहीं निकाला जायगा तब तक यह अपयश मिट नहीं सकता।

किन्तु मैं सीता को कैसे निकालूंगा। जिसने मेरा समाचार

सुनने के लिये ग्यारह दिन तक उपवास किया था वो सीता मुझसे कैसे अलग होगी।

इधर सीता का प्रेम, उधर लोकापवाद। दोनों में कौनको छोड़ूं? इधर कुआ है उधर खाई है। किधर चलूं? दोनों ही मुझे संताप के देने वाले हैं। मैं जानता हूं कि सीता शुद्ध है किन्तु लोकापवाद से डरता हूं। यद्यपि शुद्ध है किन्तु लोक के विरुद्ध है तो न उसे करना चाहिये न उस पर चलना चाहिये। (आवाज देते हैं) कोई है?

द्वारपाल—(आकर) आज्ञा महाराज।

राम—जावो लक्ष्मण को शीघ्र बुला लाओ।

द्वारपाल—जो आज्ञा (चला जाता है)

राम—लक्ष्मण से इसके लिये मैं सलाह लेता हूं। देखूं वह क्या कहता है।

लक्ष्मण—(आकर) भाई साहब के चरणों में सेवक का प्रणाम।

राम—लक्ष्मण! मैंने तुम्हें इस लिये बुलाया है कि अभी मेरे पास प्रजा के लोग आये थे। वो कहते थे कि मैंने जो रावण के यहां रही हुई सीता को घर में रख लिया सो भला नहीं किया इससे अनाचार की प्रवर्ती हो रही है। घर २ में हमारा अपवाद हो रहा है।

लक्ष्मण—जो सीता को दोष लगाते हैं और हमारा अपवाद करते हैं वो मूर्ख हैं। मैं अभी जाकर उन सबको दण्ड दूंगा।

राम—नहीं लक्ष्मण ! मारते हुवे के हाथ पकड़े जा सकते हैं किन्तु किसी की जिव्हा नहीं पकड़ी जा सकती। यदि हमारे भय से कोई हमारे मुंह पर नहीं कहेगा तो पीछे जरूर कहेगा। सीता को मैं अपने घर में नहीं रखुंगा।

लक्ष्मण—भाई साहब ! सीता परम सती है। केवल लोकापवाद के भय से आप न तजियेगा।
वह सती आपके बिना किस प्रकार रहेगी ?

राम—लक्ष्मण। यदि एक वस्तु शुद्ध है किन्तु लोग उसे बुरा कहते हैं तो उसे त्यागना ही उचित है। इस भगवान ऋषभदेव के कुल को दूषित न करूंगा। नारी नरक में ले जाने वाली है। इसके मोह में पड़ कर मैं अपयश नहीं कमाऊंगा।

लक्ष्मण—जो लोग धर्म सेवन करते हैं लोग उनकी निन्दा करते हैं उन्हें ढोंगी बताते हैं। लोग दिगम्बर साधुओं को बुरा बताते हैं। तो ये नहीं कि वह बुरे हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि धर्म सेवन करना या साधुओं की वन्दना करना छोड़ दें।

राम—बस चुप रहो। मैं अधिक सुनना नहीं चाहता। मैं नारी के प्रेम से बढ़कर लोकापवाद को समझता हूं।

(द्वारपाल से) द्वारपाल ! जाओ सेनापति को बुलालाओ !

द्वारपाल—जो आज्ञा !

(चला जाता है। सेनापति आता है।)

सेनापति—श्री महाराजा रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी के चरणों में सेवक का प्रणाम। सेवक आज्ञा पालन करने को उपस्थित है।

राम—सेनापती ! जाओ सीता को रथ में बिठाकर ले जाओ उसें पहले सारे तीर्थों की बन्दना कराओ, पश्चात सिंहनादबन में अकेली छोड़ आना। जैसा मैंने कहा उसी प्रकार मेरी आज्ञा का पालन करना। नहीं तो दण्ड पाओगे।

सेनापति—जो आज्ञा। (चला जाता है)

पर्दा गिरता है

अँक प्रथम—दृश्य छठा

(राजा वज्रजंघ अपने सैनिकों सहित आता है।)

वज्रजंघ—मेरे बहादुर सैनिकों! हमें यहां आये हुवे आज १ माह बीत गया। ओह, यह सिंहनाद बन कैसा भयानक है यहां पर मनुष्य नहीं आ सकता। हम लोगों ने कितने कष्ट सहते हुवे हाथियों को पकड़ा। अब कुछ ठहरकर फिर नगरको वापिस लौटना चाहिये।

१ सैनिक—महाराजाधिराज! मुझे तो यह बन बहुत पसंद आया है। यहां पर बहुत बड़ी ठंडक रहती है। खूब फल फूल खाने को मिलते हैं।

२ सैनिक—वाह वा, कैसा पसन्द आया। सबके साथमें हो, इसी लिये पसन्द आया है। जरा इकले रहकर देखो, कैसा आनन्द मिलता है। महाराजाधिराज इसे यहीं छोड़ चलो।

३ सैनिक—भाई अगर मुझे कोई रहने को कहें तो मैं तो चाहे मेरी जान चली जाय तो भी न रहूं। बाप रे बाप उस दिन वो कैसा भयानक सिंह था, मेरी तो देखते ही मय्या मर गई थी।

वज्रजंघ—और यदि तुमको यहांका राज्य दे दिया जायतो?

३ सैनिक—मुझे राज्य नहीं चाहिये। राज्य पुरुषों पर किया जाता है। यहां तो मनुष्य का नाम भी नहीं। शेर बघेरे मुझे एक ही दिन में मार खायेंगे। ना रे बाबा ना।

वज्रजंघ—अच्छा अब चलने की तैय्यारी करो।

(सब चले जाते हैं, पर्दा खुलता है। सीता और सेनापती दोनों खड़े हुवे हैं।)

सीता—अहा, आज मेरे धन्य भाग हैं। मैंने सारी यात्रायें समाप्त करली; क्यों सेनापती! ये कौनसा बन है? बड़ा भयानक है। यहां से हमारा नगर कितनी दूर है?

सेनापती—माता ये सिंहनाद नामा वन है। यहांसे नगर को जाने के लिये १ माह का रास्ता है। किन्तु..............

(रोने लगता है।)

सीता—सेनापती, सेनापती, तुम बात करते करते क्यों रोने लगे?

सेनापती—माता बात बताते हुवे मेरा कलेजा फटता है। मेरा मुंह रुकता है। आपको अब यहीं पर रहेना पड़ेगा।

सीता—क्यों सेनापती। मैंने ऐसा क्या अपराध किया। तुम शीघ्र रथको हांककर मुझे मेरे पतिसे मिलाओ।

सेनापती—माता सुनिये, रामचन्द्रजी के पास कुछ लोग इकट्ठे होकर आये थे कि आपने रावण के घर में रही हुई सीता को घर में रखली इससे लोक में अपवाद फैल रहा है। लक्ष्मणजी ने उन्हें बहुत समझाया कि आप गर्भ के भार से पीड़ित सीता को बनमें न भेजिये, किंतु उन्होंने लोकापवाद मिटाने के लिये आपको वनमें छोड़ने की आज्ञा दी है।

सीता—हैं! मैं ये क्या सुन रही हूं आह..............

(मूर्छित होती है।)

सेनापती—आह, चाकरी भी क्या बुरी चीज है। इसके आधीन मनुष्य को कैसे कैसे अकार्य करने पड़ते हैं। सीता जैसी सती को मैं नौकरी के वश होकर बनमें छोड़ रहा हूं। चाकर से

इस जगत में अन्धकार है।

मदनांकुश—माता! आप क्षत्राणी होकर ये कैसी बातें कर रही हैं आज्ञा दीजिये। छोटा सा सिंह का बच्चा बड़े बड़े गज राजों को नीचा दिखाता है।

सीता—यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो दोनों भाई जाओ युद्ध से विजय पाकर लौटो।

(दोनों चले जाते हैं। सीता भी चली जाती है। पर्दा खुलता है। राजा वज्रजंघ का दर्बार)

वज्रजंघ—शीघ्र उसही दुष्ट पर सेना ले चलने की तैय्यारी करो। मैं उसे क्षण मात्र में हराकर उसकी पुत्री का विवाह मदनांकुश से करूंगा। अह! वो कैसी योग्य जोड़ी है। जिसे देखकर इन्द्र भी लजाता है। ये बड़े भाग्यशाली बालक हैं। इनसे संबंध जोड़कर मैं अपने को धन्य समझूंगा।

सैनिक—राजा पृथुमती बड़ा मूर्ख है जो इतने अच्छे वर को अपनी कन्या देने से मना करता है। वो अभिमानी है उसका मान हम लोग अवश्य भंग करेंगे।

दोनों पुत्र—(आकर) मामा जी के चरणों में प्रणाम।

वज्रजंघ—चिरंजीव हो पुत्र। इस समय मेरे पास आने का क्या कारण है।

लवण—मामा जी ! मैंने सुना हैं कि राजा पृथुमती ने आपकी आज्ञा भंग की है। मैं उसका मान भंग करूंगा।

वज्रजंघ—पुत्र ! तुम युद्ध में न चलो। उसके लिये मैं काफी हूं। मेरे लड़के मेरे साथ चल रहे हैं तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं। तुम दोनों माता के पास रह कर उसके नेत्रों को शान्ती दो।

अंकुश—मामाजी ? आप हमें युद्ध से न रोकिये। हम क्षत्री हैं हमें युद्ध में आनन्द प्राप्त होता है।

वज्रजंघ—यदि तुम्हारी उत्सुकता इतनी बढ़ी हुई है तो चलो। युद्ध में अपनी परिक्षा दो। (सब चले जाते हैं)

पर्दा गिरता है।

अँक द्वितीय—दृश्य तृतीय

(वज्रजंघ और पृथुमती आते है)

वज्रजंघ—बोल ओ अभिमानी राजा बोल, तू अपनी कन्या मदनांकुश को ब्याहता है या युद्ध में प्राण गंवाता है। सोच ले समझ ले वरना पीछे पछतायेगा मेरी आज्ञा भंग करने का फल पायगा।

पृथुमती—सब समझ लिया। तेरे जैसे कन्या को मांगने वाले मैंने बहुत देखे हैं। जा भाग जा वरना मेरे धनुष बाण के

आगे तू न टिक सकेगा । जिसके कुल का कुछ पता नहीं उसे पृथुमती अपनी कन्या नहीं दे सकता ।

अंकुश—(आ कर) क्या कहा ? ओ अभिमानी ठहर मैं आज मुंह से नहीं बाणों के द्वारा तुझे अपना कुल बताऊंगा ।

मेरे बाणों से तुझको, याद आजायेगा कुल मेरा ।
सम्हल कर युद्ध कर ले, देख क्या कहता धनुष मेरा ॥

पृथुमती—ओ नीच बालक ! इतना बढ़ कर न बोल । क्षत्रियों के सामने मुंह न खोल ये जबान तेरी खेल में चल सकती है युद्ध में नहीं ।

बच्चों की है खिलवाड़ नहीं, ये युद्ध क्षेत्र कहलाता है ।
प्राणों की भेंट चढ़े इसमें, जो ज्यादा बात बनाता है ॥
बच्चे जाकर के माता की, गोदी में दूध पियो थोड़ा ।
डरता हूं बालक हत्या से, जा भाग तुझे मैंने छोड़ा ॥

लवण—हम बाल नहीं हैं काल तेरे, हम रण में तुझे हरायेंगे ।
है नीच कौन इसका परिचय, नीचा करके बतलायेंगे ॥
मामा की आज्ञा टाली है, इसका फल तुझे चखाऊंगा ।
किस कुल के बालक हैं, तुझको बाणों द्वारा बतलाऊंगा ॥

प्रथुमती—जा भागजा । क्या कभी मेंढकने भी पहाड़ को उठाया है । क्या बच्चों से युद्ध जीता जाता है ! जाओ मैं फिर

कहता हूं मेरे सामने न आओ, अपने प्राणोंकी कहीं रक्षा जाकर करो।

अंकुश—क्या युद्ध से डरते हो ? युद्ध में बालक और बड़ का प्रश्न नहीं होता। आओ मुझसे युद्ध करो या अपनी कन्या को मेरे हाथ सौंपो।

प्रथुमती—फिर वही दिलको क्रोध उपजाने वाली बात। सम्हल जा, सम्हल जा।

अब तक मैं चुप खड़ा था, अब जोश आया मुझमें।
मुझको भी देखना है. कितना है तेज तुझमें॥

(पर्दा खुलता है। दोनोंमें युद्ध होता है अंकुश उसे गिरा देता है। गिराकर उससे पूंछता हैं।)

अंकुश—बता, बता, अब हमारा क्या कुछ है ?

प्रथुमती—आह, छोड़दो, छोड़दो, क्षमा करो। तुम क्षत्री हो। मैं भूला हुआ था, मेरा अपराध क्षमा करो, मैं आपको शीश नवाता हूं। अपनी कन्या आपको अवश्य दूंगा।

अंकुश—(उसे छोड़कर ऊपर उठाकर) उठो मैं इतने से ही प्रसन्न हूं।

प्रथुमती—मैं बड़ा अपराधी हूं। आप शूरवीर क्षत्री धर्मात्मा और क्षमावान हैं। चलिये, मैं आपके साथ अपनी कन्याका विवाह करता हूं।

पर्दा गिरता है।

अंक द्वितीय—दृश्य चतुर्थ

(नारदजी अपनी वीणा बजाते हुवे आते हैं)

गाना

जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जयजिनेन्द्र, जयजिनेन्द्र,

(थोड़ी देर गाकर इधर उधर देखकर आश्चर्य से) हैं, यह तो पुंडरीक नगर मालूम पड़ता है, यहां तो मैं वज्रजंघ के राज्य में आगया। अहा, ये भी नगर क्या ही सुन्दर है। (सामने देखकर) हैं, सामने से ये दो बालक कौन आ रहे हैं? इन्हें देख कर मुझे राम लक्ष्मण का धोखा होता है। अहा कैसी मनोग्य जोड़ी है। बिल्कुल इन्द्र सरीखे मालूम पड़ रहे हैं।

दोनों—(आकर) नारदजी के चरणों में प्रणाम।

नारद—चिरायु होवो पुत्रों! राम लक्ष्मण जैसी मान्यता श्रेष्ठता और वैभव को प्राप्त करो।

लवण—क्यों नारदजी! राम लक्ष्मण कौन हैं? कहां रहते हैं उन्होंने क्या श्रेष्ठता प्राप्त की है?

नारद—हा, हा, हा! पुत्रों तुम नादान हो। तुम्हें अभी मालूम नहीं सुनो मैं उनका तुम्हें प्रारम्भ से वृतांत सुनाता हूं।

अंकुश—सुनाइये महाराज बड़ी कृपा होगी।

नारद—इसी भरत क्षेत्र में एक अयोध्यापुरी है वहां पर राजा

दशरथ राज्य करते थे। उनकी चार रानियों से राम, लक्ष्मण भरत, शत्रुघन ये चार पुत्र उत्पन्न हुवे। राम ने धनुष चढ़ा कर सीता को ब्याहा। इस के पश्चात राजा दशरथ के वैराग्य के समय कैकई ने भरथ को राज्य दिलाया। राम लक्ष्मण और सीता वन को चले गये। वहां पर रावण सीता को हर कर ले गया। लक्ष्मण ने अनेक विद्याधरों और भूमि गोचरियों की सहायता से रावण को मारा और सीताको वापिस अयोध्या लाये और सिंहासन पर बैठे। भरथजी ने सन्यास धारण किया और मुक्ती प्राप्त की। लोकापवाद के भय से राम, जिन्हें बलभद्र पद्म पुरुषोत्तम आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। उन्होंने सीता को वन में छुड़वा दिया। लक्ष्मण ने जिन्हें नारायण वासुदेव आदि नामों से पुकारते हैं बहुत मना किया किन्तु न माने। हाय बेचारी सीता न मालुम अब कहां फिरती होगी।

लवण—नारदजी! तब तो राम ने बहुत बुरा किया। बेचारी निर्दोष अबला को लोकापवाद के भय से घर से बाहर निकाल दिया। मैं अवश्य अयोध्या को अपनी सेना लेकर जाऊंगा। और उन्होंने जो ये न्याय विरुद्ध काम किया है। इस का उन्हें दण्ड दूंगा।

नारद—नहीं पुत्र! ऐसा न करना। वो बलभद्र नारायण हैं। उनके आगे कोई नहीं जीत सकता।

लवण—अंकुश ! तुम जाओ । जाकर वज्रजंघजी से ! कहो कि सारी सेना तय्यार होजाय । हम लोग अयोध्या पर चढ़ाई करेंगे ।

अंकुश—जो आज्ञा । (चला जाता है ।)

लवण—नारदजी ! आप कृपा करके मेरी माता के पास चलिये ।

नारद—जरूर, कहां हैं तुम्हारी माताजी ?

लवण—चलिये इसी सामने वाले राज महल में हैं ।

नारद—अच्छा तुम चलो मैं सामायिक से निवटकर अभी आता हूं तुम्हारी माता से मैं अवश्य भेंट करूंगा ।

लवण—जैसी इच्छा । (दोनों चले जाते हैं ।)

(पर्दा खुलता है । सीता बैठी हुई है ।)

गाना

प्राणों के नाथ ने मुझे, आहे युंही भुला दिया ।
रंजमें अपने रात दिन, मुझको युं ही घुला दिया ॥
भूलथी मुझसे क्या हुई, मैंने तो कष्ट थे सहे ।
रावणने हर के हायरे, दुखिया मुझे बना दिया ॥

लवण—(आकर) माताजी ! आप क्यों रो रही हैं ? मैं आपको एक हर्ष समाचार सुनाने आया हूं ।

सीता—कहो पुत्र वह क्या समाचार है ?

लवण—माताजी ! अयोध्यामें कोई राम और लक्ष्मण नाम के दो राजा रहते हैं। राम ने लोकापवाद के भय से अपनी स्त्री सती सीता को निकाल दिया। देखिये माताजी उसने कितना मूर्खता का काम किया। मैं उसे इसकी सजा देनेके लिये अयोध्या को सेना लेकर जाउंगा।

सीता—पुत्र ! तुम्हें ये कैसे मालुम पड़ा ?

लवण—माता ! ये मुझे नारदजी ने कहा।

सीता—पुत्र ! जिनके ऊपर तुम सेना ले जा रहे हो वो तुम्हारे पिता हैं। वो मैं ही हूं जिसको उन्होंने बन में निकाला है।

लवण—क्या सचमुच माता जी आप ही का नाम सीता है ? तब तो हम बड़े भाग्य शाली हैं। जो हमारे ऐसे जगत प्रसिद्ध पुरुषों में श्रेष्ठ पिता हैं।

सीता—पुत्र ! तुम अयोध्या जाकर अपने पिता के चरणों में शीश नवाओ। उनसे युद्ध न करना। यदि उनकी हार हुई तो भी मुझे दुःख होगा और तुम्हारी हार हुई तो भी मुझे दुःख होगा।

लवण—माता जी ! मैं अयोध्या जाकर उनसे युद्ध अवश्य करूंगा। किन्तु उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचने दूंगा।

मैं बचा बचाकर वार करूंगा। वो मेरे ऊपर वार करेंगे उनको मैं रोकूँगा। उनकी शक्तियाँ मेरे ऊपर निष्फल होंगी क्यों कि मैं उनका पुत्र हूँ। पिता के शस्त्र से पुत्र की मृत्यु नहीं होगी।

(चला जाता है)

नारद्—(आकर) हैं ये कौन ? सीता, मेरी आंखों को धोखा तो नहीं हो रहा है।

सीता—मुनिश्वर प्रणाम। मैं आपकी चरण सेविका सीता ही हूं। मुझे वज्रजंघ सिंहनाद बन में से ले आया है।

नारद्—क्या ये दोनों पुत्र तुम्हारें ही हैं ? मेरा अनुमान ठीक निकला।

सीता—नारदजी ! आपने इन्हें कथा सुना कर वृथा कोप उपजा दिया। अब ये अयोध्या में पिता और चाचा से लड़ने जा रहे हैं।

नारद्—सती जो कुछ भी होता है वो अच्छे के लिये ही होता है। तुम कोई चिंता न करो। इन्हें जाने दो, तुम्हारा भाई भामण्डल तुम्हें देखने को तड़फ रहा है। मैं जाता हूं और उसे तुमसे मिलाता हूं। (चले जाते हैं)

सीता—हाय ! मैं कैसी अभागिनी हूं। मेरे ही कारण पिता पुत्र में युद्ध होगा। हे आकाश मण्डल के देवताओं तुम मेरे पति देवर और पुत्रों की रक्षा करना।

पर्दा गिरता है।

अँक द्वितीय—दृश्य पंचम

(नारद और भामण्डल आते हैं।)

भामण्डल—कहिये नारदजी, इस समय आपका कैसे आना हुआ ?

नारद—भामण्डल ! मैं तुम्हें एक हर्ष समाचार सुनाने आया हूं।

भामण्डल—कृपा कीजिये मुनिवर।

नारद—तुम्हारी बहन सीता की खोज…… ……

भामण्डल—सीता की खोज मिलगई ?

नारद—हां मिलगई।

भामण्डल—कहां है ? मेरी प्यारी बहन कहां है? जीवित है या नहीं।

नारद—तुम्हारी बहन पुण्डरीक नगर में राजा वज्रजंघ के यहां सुख पूर्वक रह रही है। वहीं पर उसने दो पुत्रोंका प्रसव किया है। वो दोनों पुत्र अनन्त बलके धारक कांतिवान और धर्मात्मा हैं। वो वहां से राम लक्ष्मण से युद्ध करने के लिये आ रहे हैं।

भामण्डल—मुझे ये सुनकर अत्यन्त हर्ष हुआ। चलिये मुझे पहले पुण्डरीक नगर ले चलिये। मैं अपनी बहनसे मिलने के लिये अत्यन्त व्याकुल होरहाहूं। पुत्रोंका जन्म कौनसे दिन हुआ था।

नारद—पुत्रों के युगल ने श्रावण सुदी पूर्णमासी को जन्म लिया था, वो दोनों सूर्य चन्द्र सरीखे देदीप्यमान हैं।

भामंडल—तो चलिये, मुझे मेरी बहन और भानजों से मिलाइये ?

नारद—भामंडल! पहले इसका प्रबन्ध करना चाहिये कि युद्ध में किसी के चोट न आवे।

भामण्डल—नारद जी ! आप ही बताइये मैं क्या करूं?

नारद—तुम रामचन्द्र के सारे सहायकों को ये सूचित करदो कि ये सीता के पुत्र हैं। वो कोई इन पर वार न करें। लवण और अंकुश ने ये वचन दे दिया है कि हम बचाकर वार करेंगे। राम लक्ष्मण के बाणों का उन पर असर नहीं होगा उनके चक्रों का भी असर इन पर नहीं होगा क्यों कि ये उनके अंग हैं।

भामंडल—जैसी आज्ञा, चलिये मैं अभी सबके पास समाचार भेजे देता हूं। किन्तु पिता पुत्र में युद्ध होगा ये ठीक नहीं।

नारद—इसमें कोई हर्ज नहीं है। राम लक्ष्मण को इनके बल का पता चल जायगा। बाद में मैं अपने आप सबको मिला दूँगा।

भामंडल—तो चलिये। (दोनों चले जाते हैं)

(पर्दा खुलता है। सीता बैठी है)

सीता—आज मेरा बांया नेत्र फड़क रहा है। चित्त में अन्दर ही अंदर खुशी की लहर उठ रही है। आज अवश्य किसी प्रिय बंधु का मिलन होगा। याद आया, नारदजी भाई भामण्डल को लाने के लिये कह गये थे। आज मेरा भाई का मिलन होगा।

(आवाज देती है) अचला ! अचला !!

अचला—क्या सेवा है महारानीजी ?

सीता—जा, भोजनालय में कह कि नाना प्रकार के पकवान बनाये जांय और नारदजी के लिये अलग शुद्ध आहार बनाया जाय।

अचला—जाती हूँ देवी जी (चलने लगती है)

सीता—अरी और सुन।

अचला—कहिये;

सीता—जा चार पांच हार ले आ और तांबूल लेआ आज मेरा भाई मुझ से मिलने आ रहा है।

अचला—जो आज्ञा। (चलने लगती है)

सीता—अरी और सुन तू तो भागी जाती है।

अचला—आज्ञा कीजिये।

सीता—तुझे जरा भी खयाल नहीं; मेरा भाई आ रहा है। उसके लिये तू सुंदर आसन बिछा। एक आसन नारद जी के लिये बिछा;

(दासी चली जाती है दो आसन लाकर बिछाती है एक खाली लकड़ी का और एक मखमलका । फिर मालायें और तांबूल लाती है इतनेमें ही भामण्डल और नारदजी आ जाते हैं । दोनों भाई बहन गले मिल कर रोते हैं ।)

नारद—भामण्डल, सीता, रोओ नहीं, हर्ष मनाओ !

सीता—नारदजी ये हर्ष के आंसू हैं, भाई भामण्डल मुझे तुम्हें देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ । जिसमैं मुंहसे नहीं कह सकती ।

भामण्डल—बहन ! मुझे बड़ा दुख है कि मैं तुम्हारे दुःख में कुछ भी हाथ न बटा सका । तुम्हें कुछ भी सहारा न लगा सका । मुझको इस बात का हर्ष है कि तुम जीवित रहीं और मैं तुमसे मिला ।

सीता—भाई भामण्डल ! यदि मनुष्य जीवित रहते हैं तो कभी न कभी मिल ही जाते हैं । यदि मैं सिंहनाद बनमें ही मर जाती तो तुम मुझे कहां खोजते । आओ बैठो । नारदजी आप भी बिराजिये ।

(नारदजी और भामण्डल यथा स्थान पर बैठ जाते हैं । सीता दोनों के गले में फूल माल डालती है, भाई को पान खुलाती है ।)

भामंडल—सीता, तुम कितनी दुर्बल होगई । वज्रजंघ के हम लोग बड़े आभारी हैं जिसने तुम्हें आश्रय दिया । चलो अब तुम अयोध्या लौट चलो । रामचन्द्रजी तुम्हारे बिना रात दिन व्याकुल रहते हैं ।

सीता—नहीं भाई, उन्होंने मुझे निकाल दी है। जब तक वो स्वयं मुझे न बुलायेंगे, मैं न जाऊंगी।

नारद्—तुम दोनों बहन और भाई यहां पर रहो मैं अयोध्या जाता हूं जाकर युद्ध रोकता हूं। (चले जाते हैं।)

सीता—भाई ! दोनों पुत्र हठ करके अयोध्याको पिता और चाचा से लड़ने चले गये हैं।

भामण्डल—बहन मुझे दोनों पुत्रों की सुनकर बहुत हर्ष हुआ। मैं उन्हें देखना चाहता हूं। चलो विमान में बैठ चलो तुम भी अपने पुत्रोंका पराक्रम देखना। और मैं भी देखूँगा। विमान को ऐसे स्थान पर रोकलेंगे जिससे तुम सबको देख सको, तुम्हें कोई न देख सके।

सीता—यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो चलो और शीघ्र ही उन्हें देखकर लौट आयेंगे।

पर्दा गिरता है।

अंक द्वितीय—दृश्य छठा

स्थान युद्ध क्षेत्र

(युद्ध के बाजे बज रहे हैं। दोनों ओर की सेनायें लड रही हैं, राम लक्ष्मण और लवण अंकुश चारों ही आमने सामने लड़ रहे हैं। नारदजी आते हैं।)

नारद—बस बन्द करो, ये युद्ध का बाजा। युद्ध रोकदो। रामचन्द्र ! पहचानो, ये तुम्हारे पुत्र हैं। इन पर तुम्हारी शक्तियां नहीं चल सकतीं।

(दोनों रामचन्द्र के चरणों में जाकर प्रणाम करते हैं।)

रामचन्द्र—धन्य भाग मेरे जो ऐसे पुत्र पाये।

(सब लोग जय जयकार करते हैं। आकाश से पुष्प वर्षा होती है। सुन्दर बाजे बजते हैं। एक ओर राम खड़े हैं एक ओर लक्ष्मण, बीच में दोनों पुत्र हैं। सब राजा लोग इधर उधर खड़े हुवे हैं। सबके बीच में नारदजी खड़े हैं।)

ड्राप गिरता है

द्वितीय अंक समाप्त।

अँक तृतीय—दृश्य प्रथम

(राज दर्बार में राम, लक्ष्मण, लव, कुश और सब राजा लोग उपस्थित हैं)

सखियों का नाच गाना

आओ री सखी नाचें गावें आज सभी।
राम औ लखन लवकुश मिले हैं सभी॥
पुत्रोंका है संगम हुआ, इनको मुबारिक बाद है।

खुश हुवे सबके हृदय, इनको मुबारिकबाद है ॥
आओ री सखी नाचें गावें आज सभी।

लक्ष्मण—भाई साहब ! अब तक आप कहते थे कि कोई सीता का पता बताये तो मैं उसे बुलाऊं, अब आपको पता मिल गया। शीघ्र ही अपने समीप बुलाइये।

राम—जिसे मैं एक बार अलग कर चुका उसे नहीं बुला सकता चाहे उसके विरह में मेरे प्राण ही क्यों न चले जायं।

सुग्रीव—महाराजाधिराज, आपको यह करना उचित नहीं सीता निर्दोष है ये आपके पुत्रों के बल और तेज को देखकर सिद्ध होगया। वह आपके विरह में सूखकर कांटा हो रही है। उसे बराबर आप से मिलने की आशा बनी रहती है।

राम—यह सत्य है किन्तु मैं लोकापवाद से डरता हूं लोग कहेंगे कि राम से सीता बिना न रहा गया। सीता को एक बार निकालकर फिर घर में रखली।

सुग्रीव—महाराज, आप इस बातसे निश्चिन्त रहिये। इस समय सारी प्रजा सीता की बाट देख रही है। आप शीघ्र ही हमें आज्ञा दीजिये। हम पुष्पक विमान में सीता को बिठाकर अयोध्या ले आवें।

राम—यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो जाओ उसे मेरे समीप ले लाओ।

सुग्रीव—जो आज्ञा । (चला जाता है)

राम—मित्र हनुमान ! विभीषण ! विराधित ! आप लोग भी सुग्रीव के साथ जाकर सीता को ले आओ ।

हनूमान—जो आज्ञा । (तीनों चले जाते हैं)

अँक तृतीय—दृश्य द्वितीय

(साधु और ब्रह्मचारी आते हैं)

ब्रह्मचारी—कहिये साधू महाराज कुछ देखा ? अब तो बहुत दिनो बाद दर्शन हुवे ।

साधु—मैंने सब कुछ देख लिया । और समझ लिया अभी तक मैं जैनियों को नास्तिक समझता था । किन्तु अब मेरे ध्यान में आगया । जितनी बातें तुम्हारे शास्त्रों में भरी पड़ी हैं उतनी हमारे शास्त्रों में कहीं भी नहीं हैं । तुम्हारे यहां जो कुछ है वो पूर्वापर विरोध रहित है । उसमें कहीं विरोध नहीं आ सकता ।

ब्र०—फिर भी बड़े दुःख की बात है कि हठी पुरुष अपनी हठ को नहीं छोड़ते । जैसा उन्होंने सुन लिया वैसा ही कहने लग जाते हैं । ये नहीं समझते कि इसमें कहां तक झूठ और कहां तक सत्य हो सकता है ।

सा०—सत्य है इसीसे आज हम लोगों का पतन हो रहा

है। हमारी आत्माओं से पर्वतों को हिला देने वाली शक्तियां निकल चुकी हैं। आप एक बात तो बताइये ?

ब्र०—पूछिये।

सा०—ज्ञान प्राप्त करने का और ये जानने का कि आज कल जो प्रचलित है वो कहां तक झूंठ है और कहां तक सत्य है, इसका क्या उपाय है। पुराने वाक्य कहां तक कपोल कल्पित हैं कहां तक ठीक हैं ये कैसे जाना जा सकता है।

ब्र०—ये सब बातें जैन शास्त्रों को पढ़ने से मिल सकती हैं जितनी प्रचलित कथायें हैं उनमें सबमें थोड़ा २ सत्य है। पूर्ण सत्यता जैन शास्त्रों और जैन पुराणों के पढ़ने से ही मालूम पड़ सकती है।

सा०—किंतु आपके यहां तो बहुत पुराण हैं। खास खास पुराण कौनसी हैं सो बताइये।

ब्र०—वैसे तो सभी खास खास हैं। किंतु उनमें भी आदिपुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, पांडवपुराण, प्रद्युम्नचरित्र, पार्श्वपुराण और महावीर पुराण ये विशेष पढ़ने योग्य हैं।

सा०—इनमें क्या क्या विषय हैं ?

ब्र०—आदि पुराण से यह ज्ञात होता है कि सृष्टी की रचना किस प्रकार हुई है। वर्ण व्यवस्था कब प्रारंभ हुई। ये ढोंगी साधू कैसे बने, इत्यादि। पद्मपुराण का वृतान्त नाटक

द्वारा बतला ही दिया है। हरिवंशपुराण में श्रीकृष्ण का जरासिंधु आदि का पूर्ण वृतांत है। पांडवपुराण से पांडवों का सच्चा हाल मालूम पड़ता है। प्रद्युम्न चरित्र में श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कुमार का बड़ा मनोज्ञ चरित्र है, पार्श्वपुराण और महावीर पुराण में चतुर्थकाल के अन्त का सारा वृत्तांत है, इन पुराणों को पढ़कर मनुष्य खोटे मार्ग पर नहीं जा सकता।

सा०—अब अगाड़ी आप क्या दिखायेंगे?

ब्र०—आज हमें नाटक खेलते हुवे पांच दिन होगये हैं आज सीता की अग्नि परीक्षा दिखाकर हम अपना खेल समाप्त करेंगे।

सा०—तो चलिये। (दोनों चले जाते हैं)

अंक तृतिय—दृश्य तृतिय

(रामचन्द्रजी का दर्बार। पास में ही दोनों पुत्र और लक्ष्मण शत्रुघ्न खड़े हैं। सुग्रीव आदि सीता को लेकर आते हैं, सीता प्राणनाथ कहकर झपटती है, किन्तु राम दूर से ही रोक देते हैं।)

राम—बस खबरदार, मेरे समीप न आना मुझे स्पर्श न करना। जिसे मैं एक बार त्याग चुका उसे बिना किसी परिक्षा लिये हुवे नहीं अपना सकता।

सीता—देव मैं आपकी हूं। आपको अधिकार है। ग्रहण करें

या न करें। मैं सती हूँ मैंने, आपके सिवाय परपुरुष को आंख उठा कर भी बुरी निगाह से नहीं देखा। आप चाहे जैसी परिक्षा लें मैं तैय्यार हूँ।

मैं स्वामी आपकी हूं, आपको अधिकार मुझ पर है।
कोई कुछ भी करे अधिकार मुझको अपने मन पर है॥
यदि चाहो तो पर्वत से गिरा कर चूर कर डालो।
यदि चाहो तो अग्नी में जला कर भस्म कर डालो॥
वचन मन काय से मैंने, धरम अपना रखा होगा।
पटकदो मुझको अग्नी में, मेरे छूने से जल होगा॥

राम—यदि यही बात है तो कल तुम्हारी अग्नी परिक्षा होगी। सेनापती! जाओ एक लम्बा चौड़ा और गहरा अग्नी कुन्ड तैय्यार कराओ। उसमें चन्दन की आग जलाओ। सारे नगर में इस बातका ढिंढोरा पीटो कि कल सीता की अग्नी परिक्षा होगी।

नारद—रामचन्द्र! ऐसा न करो। अग्नी प्रचन्ड रूप होती है वो सीता को अवश्य जला देगी। तुम उसमें सीता का प्रवेश न कराओ। यदि सीता को स्वीकार नहीं करना चाहते तो न करो। किन्तु ये हिंसा का कार्य न करो।

रामचन्द्र—नारदजी! मैं आपके वाक्यों का सन्मान करता हूं किन्तु जो एक बार मेरी आज्ञा हो गई वो नहीं टल सकती। जिस प्रकार अग्नी में सोना तपाने से सोने और सुनार दोनों का

विश्वास हो जाता है उसी प्रकार सीता की अग्नी परिक्षा से सीता का और मेरा विश्वास हो जायगा।

प्रजा का मनुष्य—महाराजाधिराज ! हम लोगों को क्षमा करें। हम विश्वास करते हैं कि सीताजी निर्दोष हैं। अब हम में से कोई भी अपवाद न करेगा।

राम—अब विश्वास करने से कुछ नहीं बनता। जब इतने दिन तक सीता ने कष्ट उठा लिये तब विश्वास करने से कुछ न बनेगा। जो मेरी आज्ञा है वो अटल रहेगी। सीता की कल अग्नी परिक्षा अवश्य होगी।

लवण—पिताजी ! माता जी अग्नी में भस्म हो जायगी तो कैसे होगा हम माता किसे कहेंगे ? आप हमारे ऊपर कृपा करके माता जी की ऐसी कठिन परिक्षा न लो।

सीता—पुत्र ! तुम इस बात की चिंता न करो। तुम्हारी अनेक मातायें हैं। इस समय मोह करना वृथा है। अपने पिताको देखो मुझ को कितना मोह करते थे और करते हैं। ये मैं ही जानती हूं। किन्तु न्याय के लिये वो इस समय मोह को त्यागे हुवे हैं।

सब—बोलो सती सीता महारानी की जै।

पर्दा गिरता है।

अंक तृतीय—दृश्य चतुर्थ

(एक इन्द्र और एक देव दोनों आते हैं)

देव—महाराज ! आज पृथ्वी पर बड़ा हा हा कार मचा हुवा है चारों ओर लोग रो रहे हैं। कल सीता की अग्नी परिक्षा होगी।

इन्द्र—मुझे इस बात की बड़ी चिंता है। सीता के सती पन से सारा देव मंडल प्रसन्न है। उसकी भगवानमें अत्यन्त भक्ती है। ऐसी सतियों की रक्षा करना हमारा परम धर्म है।

देव—तो फिर क्या उपाय रचा जाय ?

इन्द्र—अभी ही एक बात और उत्पन्न हुई है।

देव—वह क्या ?

इन्द्र—एक मुनी महाराज को ज्ञान की उत्पत्ती हुई है। मुझे वहां पर जाना अत्यन्त आवश्यक है। मैं जाकर उनकी पूजा करूंगा।

देव—तो इन्द्र महाराज ! सीता के लिये क्या उपाय सोचा।

इन्द्र—तुम सब देव लोग उस स्थान पर जाना। जिस समय सीता अग्नी में प्रवेश करे उसी समय अग्नि को जल में बदल देना। और उसमें इस प्रकार कमल खिला देना कि सीता कमल पर आसानी से बैठ सके। और इधर उधर दो कमल खिलाना जिन पर उसके पुत्र लव और कुश बैठें।

देव—आपने यह बहुत अच्छा उपाय बताया । मैं अभी जाता हूं । वहां पर पुष्प वर्षा कराऊंगा, और जय ध्वनी कराऊंगा।

इन्द्र—तो जाओ देर न करो ।

(दोनों दोनों ओर को चले जाते हैं । ब्रह्मचारीजी आते हैं)

ब्र०—सज्जनो ! आपने देख लिया कि सत पुरुषोंके ऊपर जब कष्ट आता है तब देव लोग किस प्रकार रक्षा करते हैं। देवों की पूजा करना, पीपल आदि को पूजना, देवियों के नाम से हिंसा करना ये सब वृथा है देव मनुष्योंसे वैभव में बढ़कर हैं किन्तु आत्म बल में नहीं, जो अपने धर्म पर दृढ़ हैं, जो अपनी आत्मा को उन्नत बनाते हैं . जो न्याय और नीति को नहीं छोड़ते उनकी देव लोग स्वयं पूजा करते हैं ।

लोग कहते हैं, भगवान रक्षा करने के लिये आते हैं सो बात नहीं है । भगवान तो कृत्य कृत्य होगये हैं उन्हें संसारिक झगड़ों से कोई प्रयोजन ही नहीं। मनुष्य भगवान की भक्ति करता है उसी भगवान की भक्ती देव लोग करते हैं जब अपने साथी के ऊपर देव लोग कष्ट देखते हैं तो वो आकर किसी न किसी भेष में भगवान के भक्तों की रक्षा करते हैं। यदि आप इस बात को असत्य समझें तो सुनिये । आप लोग रामचन्द्रजी को भगवान का अवतार मानते हैं । रामचन्द्रजी स्वयं सीता को कष्ट दे रहे हैं । तो बताइये उस समय सीता की रक्षा

करने के लिये और कौन से भगवान आयेंगे रामचन्द्रजी केवल एक मनुष्य थे । किंतु पहले जन्म में वो देव थे। उनके पुण्यका उदय होने से उन्हें इतनी ख्याति प्राप्त हुई । भगवान को भक्तिको हम लोग सबसे प्रथम धारते हैं भगवान से इस बात की प्रार्थना नहीं करते कि वह हमें कुछ दें । हम उनके गुणों का गान करते हैं । उनकी मूर्ति को आदर्श मानकर पूजते हैं जिससे वह गुण हम धारण करें और जिस प्रकार पूर्व पुरुषों ने जो कि अन्त में भगवान कहलाये, अपना मार्ग रखा था, जिस मार्ग पर चले थे उसी मार्ग पर चलना सीखें, इस लिये हर मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि प्रथम वो देखलें कि मैं जिसे पूज रहा हूं वो पूजने योग्य है या नहीं बाद में उसमें श्रद्धा लावें । और उसके गुणों को गावें, जो पूजनीय भगवान हैं उनके तीन लक्षण हैं । प्रथम वीत-रागता । अर्थात न किसी वस्तु से प्रेम न द्वेष । जिनके साथ स्त्री शस्त्र चक्र आदि पदार्थ हैं वो वीतराग नहीं, हैं । दूसरा लक्षण सर्वज्ञता है । जो तीनों लोकों की बात पूर्णतया जानता हो वही सर्वज्ञ है । उसी का उपदेश सच्चा माना जायगा जो सब बातों को जानता हो । जिसका ज्ञान अधूरा है । उसके वाक्य झूठ हो सकते हैं । तीसरा लक्षण हितोप-देशी पना है । जो हमें संसारिक जीवों को सच्चे हित मोक्ष का उपदेश दें । जो युद्ध आदि का या मारने काटने का उपदेश दे

वो हितोपदेशी नहीं है। इस प्रकार जिसमें ये तीनों बातें हों वही माननीय पूजनीय हो सकता है। दूसरा नहीं हो सकता। जिसमें एक बात की भी कमी है वो भगवान नहीं कहला सकता। इस प्रकार आप लोगों को सोच समझ कर बुद्धि से विचार कर किसी को पूजना चाहिये। अगाड़ी आप देखिये। सीता की अग्नी परिक्षा किस भांति होती है।

(चला जाता है)

अंक तृतिय—दृश्य पांचवां

(एक चौकोर करीब दो गज लम्बा डेढ़ गज चौड़ा एक गज ऊंचा हौज है। उसमें अग्नी जल रही है। सीता उस हौज के पीछे की तरफ कुछ पृथ्वी से ऊंची खड़ी है। रामचन्द्र आदि सब अगाड़ी की तरफ खड़े हैं। अग्नी बड़ी तेजी से जल रही है।)

सीता—नाम तेरे से प्रभो, भवसिंधु से तर जात हैं।
याद करने से तुझे रक्षा को, सुर-गण आत हैं॥
मैं यदि दूषित हूँ तो, ये तन मेरा जल जायगा।
वरना मेरे सत-धरम से, अग्नी जल बन जायगा॥

(प्रवेश करना चाहती है)

लव—नहीं, नहीं, माता जी आप अग्नी में न कूदो, माता जी! कुछ तो हम पुत्रों पर दया करो। इतनी कठोर न बनो

सीता— पुत्र आदि ये सब झूठा झगड़ा है। न कोई मेरा है न मैं किसी की हूँ। तुम दोनों भाई अपने पिता के पास में रहना। तुम्हें मैं आशीर्वाद देती हूं चिरंजीव होवो।

ओं नमः सिद्धभ्य।

(अग्नी में प्रवेश करती है। अग्नी के स्थानमें जल होजाता है।
उसमें कमल खिल जाते हैं। सीता कमल पर बैठ जाती है।
उसके दोनों ओर दो कमल पर उनके दोनों पुत्र दौड़कर
बैठ जाते हैं। वो उसके सर पर हाथ रखती है।
आकाश से पुष्प वर्षा और जयकार होती है।)

रामचन्द्र—सीता! तुम धन्य हो। आओ, आओ, मैं तुम्हें स्वीकार करता हूं। मेरे अपराधों को क्षमा करो।

सीता—प्राणनाथ! आप मुझे क्षमा करें अब मैं आपकी अर्धांगिनी न कहला कर अर्यिका बनूंगी। ये स्त्री पर्याय अत्यन्त दुखदाई है मैं तप करके इस पर्याय को छेदूँगी। जिससे फिर स्त्री न बनना पड़े। आपके, आपके भाइयोंके, आपके मित्रोंके

पुत्रोंके, माताओंके, और नारियोंके लिये तथा प्रजाके लिये मैं भगवान से प्रार्थना करती हूं कि सदा शान्ति रहे ।

(चारों ओर जय जय कार होती है ।)

ड्राप गिरता है ।

पंचम भाग समाप्त

श्री जैन नाटकीय रामायण

सम्पूर्ण ।

उद्देश्य

इस पुस्तक के लिखने का मेरा अन्य कोई उद्देश्य न होकर केवल इतना ही है कि इसके द्वारा जैन और अजैन समाज में जैन साहित्य की प्राचीनता और गूढ़ता का प्रचार हो। प्रत्येक स्थान की जैन समाज को उचित है कि धार्मिक अवसरों पर या प्रतिवर्ष इसको स्टेज पर खेलकर करोड़ों मनुष्यों के हृदय में सत्यता की धाक बैठावें।

किसी भी प्रकार की कुछ पूछताछ या सलाह के लिये मैं सदैव तय्यार हूं।

यह पुस्तक
श्रीमान् जाति भूषण डाक्टर गुलाबचन्दजी पाटनी
आनरेरी मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता में
श्री पाटनी प्रिंटिंग प्रेस अजमेर में मांगीलाल जोशी ने
मुद्रित की।

दिशाओंमें बड़े २ मार्ग हैं। हरएक मार्गमें छोटी २ गलियां हैं। यह राजधानी बादशाहके यशके समान दिन प्रतिदिन उज्वल व ऐश्वर्यसे वृद्धिरूप है, मानो रत्नादि सहित एक महा समुद्र है। परन्तु समुद्रमें पानी नीचेको जाता है, परन्तु यह नगर सुमेरुपर्वतके समान बहुत उन्नत है। बड़े २ महलोंमें सुवर्णके कलश चढ़े हैं, वहां नानाप्रकारके धनी रहते हैं, जहां गान वादित्र होरहे हैं। नगरके बाहर नंदनवनके समान वन है जिनमें पृथ्वीको छाये हुए फलसे लदे हुए छायादार वृक्ष हैं। उस नगरके भीतर बड़े उज्वल जिनमंदिर हैं, उनमें रत्नमई प्रतिमाएं विराजित हैं, उन मंदिरोंमें पूजाके महान् उत्सव हुआ करते हैं। जन्मकल्याणादिके उत्सव होते हैं।

जैसे सुमेरु पर्वत देवोंके द्वारा लाए हुए क्षीर समुद्रके गंधोदकसे शोभता है वैसे ही यहां कभी शांतिकर्ममें अभिषेक करनेके लिये जैन लोग यमुना नदी तक पंक्तिबद्ध खड़े होकर देवोंके समान जल लाते हैं। मंदिरोंमें जय जय शब्द होरहे हैं। यतिगण व श्रावकजन स्तुति पढ़ रहे हैं, उनकी ध्वनि सुन पड़ती है। कितने ही श्रावक अपनेको कृतार्थ मानके मंदिरोंमें जारहे हैं। वहां जाकर सर्व आरम्भको छोड़कर धर्मध्यानमें लवलीन हो रहे हैं। इस तरह नाना गुणोंसे पूर्ण यह आगरा राजयपत्तन है। इस नगरमें टकुर नामके भरजानी पुत्र क्षत्रिय वंशज जिनको कृष्णामंगल चौधरी भी कहते हैं, साही जलालद्दीन अकबरके निकट बैठनेवाले सर्वाधिकार प्राप्त मंत्री हैं। यह सर्वके हितैषी, प्रतापशाली, श्रीमान् हैं। इन्होंने बड़ेर शत्रुओंका मान दमन किया है। बहुत धन

उत्पन्न किया है। उसने यमुना नदीतट पर विश्रांतिके लिये घाट व स्थान बना दिया है, लोग स्नान करके वहां विश्राम करते हैं। वह घाट स्वर्गकी शोभाको विस्तार रहा है। उनके साथ मुख्य कार्यकर्ता गढ़मल्ल साहु हैं, वह वैष्णवधर्म रत हैं। गंगादि तीर्थ जाते हैं, धनवान हैं व परोपकारी हैं, जिससे यशस्वी हो रहे हैं। इन दोनोंमें बड़ी प्रीति है। खजानेकी शोभा इनसे है।

अकबरके समय जैन भट्टारक।

काष्ठासंघ माथुरगच्छ पुष्करगणमें लोहाचार्य आदि अनेक आचार्य हुए हैं। उनहीके आम्नायमें भट्टारक मलयकीर्ति देव हुए। उनके पीछे गुणभद्रसूरि भट्टारक हुए। उनके पद पर सूर्यके समान तेजस्वी भानुकीर्ति भट्टारक हुए। यह अनेक शास्त्रोंके पारगामी थे। भव्य जीवरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेको सूर्य ही थे। उनके पद पर **श्री कुमारसेन** भट्टारक हैं, जो बड़े शांत व प्रतापी चंद्रमाके समान पट्टरूपी समुद्रको बढ़ानेवाले है और ब्रह्मचर्य व्रतसे कामकी सेनाको जीतनेवाले हैं।

अलीगढ़के धनिक टोडरमल श्रावक।

इनके समयमें काष्ठासंघको माननेवाले प्रतापशाली अग्रवाल वंशज गर्ग गोत्रधारी कोल (अलीगढ़) नगरनिवासी साधु (साहु) मदन हैं, उनके छोटे भाई **साधु आसू** हैं, उनके पुत्र जिनधर्ममें गाढ़ रुचिवान श्री रूपचंद हैं। उनके पुत्र अद्भुत गुणोंके धारक **साधु पासा** हैं, जिनका यश सर्व साधुगण गाते हैं। दानी, यशस्वी, सुखी हैं व जैन धर्ममें बड़े प्रेमालु हैं। उनके विख्यात पुत्र साधु

टोडर हैं। यह महान उदार, महा भाग्यवान, कुलके दीपक हैं, चारित्रवान हैं, सभामें मान्य हैं, देवशास्त्र गुरुके परम भक्त हैं, परोपकारमें कुशल, दानमें अग्रगामी, वात्सल्यांगधारी हैं। इनका धन धर्मकार्योंमें ही लगता है व इनका मन सदा अर्हतके गुणोंमें मगन रहता है, धर्म व धर्मके फलमें अनुरागी हैं, कुधर्मसे विरागी हैं, परस्त्रीके त्यागी हैं, परदोष कहनेमें मूक हैं, गुणवान होनेपर भी अपनेको बालकवत् समझते हैं, अपनी बड़ाई कभी नहीं करते हैं. स्वप्नमें भी किसीका बुरा नहीं विचारते हैं, अधिक क्या कहें, साधु टोडर सर्व कार्य करनेमें समर्थ हैं, धन व पुत्रादिसे शोभित हैं, सर्व जीवोंपर दयालु हैं, सर्व शास्त्रोंमें कुशल हैं, सर्व कार्योंमें निपुण हैं, श्रावकोंमें महान हैं, इनकी स्त्री सुन्दरमुखी कौसुभी है जो पतिव्रता है व पतिकी आज्ञामें चलनेवाली है। इन दोनोंके तीन पुत्र हैं जो अपराधीपर कठोर हैं, निर्दोषके उपकारी हैं। बड़ेका नाम गुणवान ऋषभदास है, दूसरेका नाम मोहन है। यह शत्रुओंको भस्म करनेमें अग्निकणके समान हैं। तीसरा माताकी गोदमें खेलनेवाला रूपमांगद नामका है जो रत्नसम प्रकाशमान हैं।

साधु टोडरमलके समयकी उपयोगी बातें।

इन सब परिवारके साथमें साधु टोडर रहते हैं जो एक दिन मथुरानगरीमें सिद्ध क्षेत्र स्थित प्रतिमाओंके दर्शनके लिये यात्रार्थ आए। मथुरानगरकी हदके पास एक मनोहर स्थान देखा जो सिद्ध क्षेत्रके समान महारिषियोंके वाससे पवित्र था। वहीं धर्मात्मा साहुने 'निःसही' नामके स्थानको देखा, जहां अंतिम केवली श्री जंबूस्वामीका

विहार हुआ है व जंबूस्वामीके पदसेवी विद्युच्चर मुनिका आगमन हुआ है। इनके साथ बहुतसे और मुनि थे। यहीं पर महामोहको जीतनेवाले, अखंड व्रतके पालनेवाले विद्युच्चरादि साधुओंने संन्यास किया था, वे भिन्न२ स्वर्गादिमें गए हैं। शास्त्रज्ञाता विद्वानोंने जंबू-स्वामीके व विद्युच्चरके स्थानोंके पास आये साधुओंके स्थान स्थापित किये थे। कहीं पांच कहीं आठ कहीं दश कहीं वीस स्तूप बने हुए थे। काल बहुत होजानेसे व द्रव्यके जीर्ण स्वभावसे ये सब स्तूप जीर्ण होगये थे। इनको जीर्ण देखकर साधु टोडरने जीर्णोद्धार करानेका उत्साह किया। इस बुद्धिमानने धर्मकार्य करनेका मनमें दृढ़ विचार किया। साधु टोडरकी धर्म व धर्मके फलमें आस्तिक्य बुद्धि थी। उसको श्रद्धान था कि आत्मा है, वह अनादिसे कर्मोंसे बंधा है, कर्मोंके क्षयसे मोक्ष पाता है तब सर्व क्लेश मिट जाते हैं व अनंत सुखकी प्राप्ति होती है। जब तक इस अभूतपूर्व व कठिन मोक्षका लाभ नहीं तबतक बुद्धिमानोंको अवश्य धर्मकार्य करते रहना चाहिये।

मोक्ष तो महात्माओंको तब ही सुखसे साध्य होता है जब काललब्धि आदि मोक्षकी सामग्री प्राप्त होती है। यह मोक्ष भी भव्योंको होगा जिनको सम्यक्तकी प्राप्ति हो जायगी। परन्तु अभव्योंको मोक्ष कभी नहीं होता है, न हुआ है न होगा। वे अभव्य नित्य आत्मसुखको न पाकर दुःखी रहेंगे तथापि जो अभव्य क्रिया मात्रमें रागी होकर धर्मसाधन करेंगे वे पुण्यके फलसे महान् भोगोंको पाएंगे। वे ग्रैवेयिक तकके सुख पा सक्ते हैं परन्तु स्वर्गादिसे आकर वे बिचारे तिर्यंच मनुष्यादि गतियोंमें तीव्र दुःख उठाते हुए भव भ्रमण किया करते हैं। उस सम्यग्दर्शन धर्मको सदा नमस्कार हो

जैसे एक मासमें शुक्ल पक्षके पीछे कृष्ण पक्ष व कृष्ण पक्षके पीछे शुक्ल पक्ष आता है, इसी तरह ये दोनों काल क्रमसे वर्तते हैं। अब यहां भरतमें अवसर्पिणीकाल चल रहा है। यहां जब पहला काल आर्य खण्डमें था तब उसकी स्थिति चार कोड़ाकोड़ी सागरकी थी।

भोगभूमिकी शोभा।

इस पहले सुखमा सुखमाकालमें देवकुरु व उत्तरकुरु उत्तम भोगभूमिके समान अवस्था थी तब जो युगलिये मनुष्य उत्पन्न होते थे उनकी आयु तीन पल्यकी होती थी व शरीरकी ऊंचाई ६००० छः हजार धनुषकी होती थी। शरीरका संहनन वज्रवृषभ नाराच होता था। अर्थात् वज्रके समान दृढ़ नसें, हड्डियोंके बंधन, व हड्डियां होती थीं। सबका स्वरूप सुन्दर व शांत होता था। उनका शरीर तपाए सुवर्णके समान चमकता था। मुकुट, कुंडल, हार, भुजबन्द, कड़े, कर्धनी तथा ब्रह्मसूत्र, ये उनके नित्य पहरावके आभूषण थे। इस उत्तम भोगभूमिके पुरुष पूर्व पुण्यके उदयसे रूप, लावण्य व सम्पदासे विभूषित होकर अपनी स्त्रियोंके साथ उसी तरह क्रीडा करते थे जिस तरह स्वर्गमें देव देवियोंके साथ रमण करते हैं। भोगभूमिवासी बड़े बलवान, बड़े धैर्यवान, बड़े तेजस्वी, बड़े प्रभावशाली महान पुण्यवान होते हैं। उनके कंधे बड़े ऊंचे होते हैं। उनको भोजनकी इच्छा तीन दिन पीछे होती है। तब वे बेरफलके समान अमृतमई अन्न खाकर ही तृप्त होजाते

हैं। सर्व ही भोगभूमिवासी रोग रहित, मलमूत्र नीहार रहित, बाधा रहित व खेद रहित होते हैं। उनके शरीरमें पसीना नहीं होता है व उनको कोई आजीविका नहीं करनी पड़ती है तथा वे पूर्ण आयुके भोगनेवाले होते हैं।

वहांकी स्त्रियोंकी ऊंचाई व आयु पुरुषोंके समान होती है। जैसे कल्पवृक्षमें कल्पवेलें आसक्त होती हैं इसी तरह वे अपने नियत पुरुषोंमें अनुराग रखनेवाली होती हैं। जन्म पर्यंत दोनों प्रेमसे भोग संपदाको भोगते हैं सर्व भोगभूमिवासी स्वर्गके देवोंके समान स्वभावसे सुन्दर होते हैं। उनकी वाणी स्वभावसे मधुर होती है, उनकी चेष्टा स्वभावसे ही सुन्दर होती है। वहां पृथ्वीकायिक दश जातिके कल्पवृक्ष होते हैं। उनसे वे भोगभूमिवासी इच्छानुकूल आहार, घर, वादित्र, माला, आभूषण, वस्त्र आदि भोगकी सामग्री प्राप्त कर लेते हैं। कल्पवृक्षोंके पत्ते सदा ही मंद मंद सुगंधित हवासे हिलते रहते है। कालके प्रभावसे व क्षेत्रकी सामर्थ्यसे ये कल्पवृक्ष प्रगट होते हैं। क्योंकि इनसे पुण्यवान मानवोंको मनके अनुसार रुचिकर भोग प्राप्त होते हैं। इसलिये इनको विद्वानोंने कल्पवृक्ष कहा है। इनकी जातियां दश प्रकारकी होती हैं। (१) मद्यांग (२) वाजिआंग (३) भूषणांग (४) पुष्पमालांग (५) ज्योतिरांग (६) दीपांग (७) गृहांग (८) भोजनांग (९) पात्रांग (१०) वस्त्रांग जैसे इनके नाम हैं वैसी ही वस्तुके प्रगट करनेमें ये परिणमन करते हैं। भोगभूमिवासी इन कल्पवृक्षोंसे प्राप्त भोगोंको अपने पुण्यके उदयसे आयु

पर्यंत भोगते रहते हैं। आयुके अंतमें जम्हाई व छींक आनेसे प्राण त्यागते हैं। वे मंद कषायी होनेसे पापरहित होते हैं। इसलिये सर्व ही स्त्री पुरुष प्राण छोड़के देव गतिको जाते हैं। उनके शरीर मेघोंके समान उड़ कर विला जाते हैं। इसतरह अवसर्पिणीके पहलेकालकी विधि थोड़ीसी वर्णन की है। शेष सर्व अवस्था देवकुरु उत्तरकुरुके समान जाननी चाहिये।

नोट—यहां कुछ श्लोक उपयोगी जानके दिये जाते हैं, जिससे पाठकोंको भोगभूमिकी अवस्थाका ज्ञान हो—

वज्रास्थिबंधनाः सौम्याः सुन्दराकारचारवः।
निष्टप्तकनकच्छाया दीप्यन्ते ते नरोत्तमाः ॥ १३ ॥
मुकुटं कुंडलं हारो मेखला कटकांगदौ।
केयूरं ब्रह्मसूत्रं च तेषां शश्वद्विभूषणम् ॥ १४ ॥
महासत्त्वा महाधैर्या महोरस्का महौजसः।
महानुभावास्ते सर्वे महीयंते महोदयाः ॥ १६ ॥
निर्व्यायामा निरातंका निर्विहारा निरामयाः।
निःस्वेदास्ते निराबाधं जीवंति पुरुषायुषं ॥ १८ ॥

इसतरह पहला काल क्रमसे ज्यों ज्यों बीतता जाता था, कल्पवृक्षोंकी शक्ति मनुष्योंकी आयु व ऊंचाई धीरे धीरे कम होती जाती थी। चार कोड़ाकोड़ी सागर बीतनेपर दूसरा सुखमा काल तीन कोड़ाकोड़ी सागरका प्रारम्भ हुआ। तब भोगभूमिके मानवोंकी आयु दो पल्यकी रह गई। शरीरकी ऊँचाई चार हजार धनुषकी

होगई । चंद्रमाकी चांदनीके समान शरीरका उज्वल वर्ण होगया । दो दिनके पीछे बहेडा (विभीतक) प्रमाण अमृतमई अल्पाहारसे तृप्ति पा लेते थे । उनकी सर्व अवस्था हरिवर्ष क्षेत्रमें स्थित मध्यम भोगभूमि वासियोंके समान होगई । तब फिर क्रमसे जैसे जैसे काल बीतता गया शरीरकी ऊँचाई, आयु, वीर्य आदि कम होते चले गये । तीन कोड़ाकोड़ी सागर काल बीतनेपर, तीसरा काल दो कोड़ाकोड़ी सागरका प्रारम्भ होगया । तब हैमवत् क्षेत्रके समान जघन्य भोगभूमिकी अवस्था प्रगट होगई । तब भोगभूमिके मानवोंकी आयु एक पल्यकी रह गई । शरीरकी ऊँचाई २००० धनुष या एक कोसकी रह गई । शरीरका रंग प्रियंगुके समान श्याम रंगका होगया । एकदिन पीछे आमलेके समान अमृतमई भोजन करके वे तृप्ति पालेते थे ।

इस तरह तीसरा काल बीतते हुए जब एक पल्यका आठवां भाग समय शेष रहा तब कर्मभूमिकी रचनाके प्रवर्तानेवाले प्रतिश्रुति आदि चौदह कुलकर क्रमसे हुए । चौदहवें कुलकर श्री ऋषभदेवके पिता श्री नाभिराज हुए । नाभिराजाके समयतक मेघवृष्टि होने लगी । काले नीले जलसे भरे बादल घूमने लगे, बिजली कड़कने लगी, पवन चलने लगी, मेघोंकी गरज सुनकर मयूर नृत्य करने लगे । जलवृष्टि ऐसी हुई मानों कल्पवृक्षोंके क्षय होनेपर मेघोंने अश्रुपातकी धारा वर्षा दी । सूर्यकी किरणोंके व जलबिंदुओंके स्पर्शसे पृथ्वी अंकुरित होगई । द्रव्य, क्षेत्र, कालके निमित्तसे परिणमन होजाया करता है । धीरे२ खेतोंमें अन्न पकने लगा । वृक्षोंमें फल पक गए ।

अतिवृष्टि व अनावृष्टि न होनेसे मध्यम वृष्टि होनेसे सर्व प्रकारके धान्य व फल पक गए। ईख, धान्य, जौ, गेहूं, अलसी, धनिया, कोदों, तिल, सरसों, जीरा, मूंग, उड़द, चने, कुलथी, कपास आदि सर्व ही पदार्थ जिनसे प्रजाका जीवन होसके फल गए। धान्य व फलादिके फलनेपर भी प्रजाको यह न ज्ञात पड़ा कि किस तरह उनका उपयोग करना चाहिये।

कर्मभूमिका आगमन।

चौथा काल आनेवाला है। कल्पवृक्षोंका क्षय होगया। प्रजाजन अपने प्राण रक्षणके लिये आकुलित होगए। क्षुधाकी वेदनासे आकुल होकर सर्व मानव श्री नाभिराजाको महापुरुष जानकर उनके सामने प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ! हम अब कैसे जीवें। कल्पवृक्ष नष्ट होगए। कितने ही वृक्ष फल व धान्यसे नम्रीभूत खड़े हुए मानो हमको बुला रहे हैं। हम नहीं जानते हैं कि उनमेंसे किनको ग्रहण करना चाहिये व किनको छोड़ना चाहिये। इनका हम कैसे उपयोग करें सो सब विधि हमको बताइये।

आप महापुरुष हैं, ज्ञाता हैं, हम अज्ञानी हैं, कर्तव्यमूढ़ हैं। हमको कृपा कर सब भेद समझाइये। तब नाभिराजाने संतोषित करके कहा कि कल्पवृक्षोंके जानेपर ये वृक्ष उत्पन्न हुए हैं, उनमेंसे अमुक२ विषवृक्ष हैं, हानिकारक हैं, उनके फल न ग्रहण करना चाहिये। इक्षुका रस निकालकर पीना चाहिये। धान्यको पकाकर खाना चाहिये। दयालु नाभिराजाने बर्तनोंके बनानेकी व पकानेकी

व भोजनकी सब विधि बताई। जो औषधियां थीं उनको भी समझा दिया। प्रजाके कल्याणके लिये नाभिराजा कल्पवृक्षके समान होगए। प्रजा सब विधि जानकर बड़ी सन्तोषित हुई और सुखसे प्राणयापन करने लगी। श्री नाभिराजा अकेले ही जन्मे थे, उनके समय जुगलियोंकी उत्पत्ति बन्द होगई थी। तब इन्द्रकी आज्ञासे देवोंने नाभिराजाका विवाह मरुदेवीके साथ कर दिया। कहा है:-

तस्योद्वाहकल्याणं मरुदेव्या समं तदा।
यथाविधि सुराश्चक्रुः पाकशासनशासनात्॥ ८१॥

देवोंने ही इन्द्रकी आज्ञासे देशोंकी सीमा बांधी; पत्तन, ग्राम, नगर नियत किये। अयोध्यापुरीकी बड़ी ही सुन्दर रचना करी। तबसे कर्मभूमिका कार्य प्रारम्भ होगया। कर्मभूमिके तीन काल हैं–चौथा, पांचमा, छट्ठा।

चौथे कालका वर्णन।

चौथा काल बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरका है। चौथे कालकी आदिमें ही (नोट–हुंडावसर्पिणी कालके कारण जब तीन वर्ष ८॥ मास तीसरे कालके शेष रह गये थे तब ही श्री वृषभदेव मोक्ष पधारे थे) श्री वृषभदेव प्रथम तीर्थंकरने मोक्षमार्गको प्रगट किया। इस कालमें मानवोंकी उत्कृष्ट ऊंचाई ५२५ सवा पांचसौ धनुषकी थी। उत्कृष्ट आयु एक क्रोड पूर्वकी होती थी। ८४००००० चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग व ८४ लाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है। मध्यम व जघन्य आयु अनेक प्रका-

रकी होती थी जिसका वर्णन परमागमसे विदित होगा। जघन्य आयु एक अंतर्मुहूर्तकी होती थी। चौथे कालमें गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष पांचों कल्याणकोंमें पूजाको प्राप्त ऐसे चौवीस तीर्थंकर होते हैं। इनकेसिवाय कितने ही महात्मा अपनी काललब्धिके बलसे अतीन्द्रिय सुखको भोगते हुए निर्वाणको प्राप्त होते हैं। उन सर्वही निर्वाण प्राप्त सिद्धोंको हम नमन करते हैं। कितने ही महात्मा सम्यक्तपूर्वक महाव्रतोंको या देशव्रतोंको पालकर पहले स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत जाते हैं। कितने ही द्रव्यलिंगी मुनि चारित्रको पालकर सम्यक्तके विना मिथ्यादृष्टी होते हुए भी पुण्य बांधकर नौग्रैवेयिक पर्यन्त जाते हैं।

कितने ही सम्यक्त व व्रत दोनोंसे रहित होनेपर भी भद्रपरिणामी पात्र दान करके भोगभूमिमें जाकर जन्म लेते हैं। कितने ही पहले तीर्यंच व मनुष्य आयु बांधकर पीछे सम्यग्दर्शनको पाते हैं और पात्रदानसे भोगभूमिमें जन्म लेते हैं। कितने ही भोगोंमें आसक्त रहते हैं, प्राणियोंपर दयासे वर्ताव नहीं करते हैं, धर्मसे विमुख रहते हैं, दुष्टभाव रखते हैं, वे नर्कमें जाकर दुःख भोगते हैं। मानवोंको दुष्टकर्म- पापकर्मका त्याग अवश्य करना चाहिये। क्योंकि पापका बन्ध होनेसे उसका कटुक फल भोगना पड़ेगा। जो नर जन्म व धर्म साधनेयोग्य सर्व उचित सामग्री पाकर भी धर्मसेवन नहीं करते हैं उनका यह सर्व योग्य समागम वृथा चला जाता है। फिर ऐसा नरजन्मका उत्तम धर्म साधन योग्य समागम मिलना बहुत कठिन है।

क्योंकि चौथे कालमें बंध व मोक्षका मार्ग चलता है, इसीलिये साधुओंने इसे कर्मभूमिका नाम दिया है। जैसा कहा है:—

इतीत्थं तुर्यकालोऽसौ पंथाः स्याद्बंधमोक्षयोः।
तस्मान्निगद्यते सद्भिः कर्मभूरितिनामतः ॥ ९७ ॥

इस चौथे कालमें बारह चक्रवर्ति, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण नौ बलभद्र भी होते हैं। जिस कालमें विना किसी बाधाके चौबीस तीर्थंकरोंको लेकर त्रेशठ शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं वही चौथा काल है। इस कालमें सर्व स्थानों पर महाव्रतधारी मुनि व देशव्रतधारी गृही श्रावक सदा दिखलाई पड़ते हैं। इस कालमें पूजा दानादि नित्यकर्ममें तत्पर व सदाचारी गृहस्थ दर्शन प्रतिमासे लेकर उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा तक यथाशक्ति ग्यारह प्रतिमाओंको पालते हुए सदा मिलते हैं। जो ग्यारहवीं प्रतिमाके धारी व्रती श्रावक होते हैं वे गृहको त्यागकर मुनिके समान परम वैराग्य भावमें स्थिर रहते हैं। चौथे कालमें बालगोपाल सर्व प्रजाजन जैनधर्मको पालते हैं।

हुंडावसर्पिणी काल।

कभी भी अन्य किसी अजैन धर्मका प्रकाश नहीं होता है। किन्तु जब कभी हुंडावसर्पिणी काल आजाता है तब उस कालमें अनेक पाखंड मत चल पड़ते हैं व सत्य धर्मकी हानि होती है।

असंख्यात कोटिवार उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके बीतने पर एक दफे हुंडावसर्पिणी काल आता है। ऐसी बात अनन्तवार पहले हो चुकी है व अनन्तवार आगे होगी। जैसे किसी वर्षमें एक

एक मास अधिकका मल मास होता है, वैसे ही इस हुंडावसर्पिणीकालको जानना चाहिये। इस हुंडावसर्पिणी कालमें बहुतसे अनर्थ होते हैं। कालचक्रकी मर्यादाको कोई रोक नहीं सक्ता। जैसे कालके स्वभावसे ही वर्षा ऋतुके पीछे शरद ऋतु आती है, वैसे कालके परिभ्रमणमें यह हुंडाकाल आता है। द्रव्योंका होना ही स्वभाव है। इस हुंडावसर्पिणी कालमें परमागमके अनुसार तीर्थंकर ऐसे महान आत्माओंको भी उपसर्ग होता है। चक्रवर्तीका मानभंग अपने ही कुटुम्बसे होता है। इत्यादि वचनसे अगोचर बहुत अनर्थ होते हैं। तब प्राणीवध रूप हिंसाका प्रचार होता है। जिससे तीव्र पापकर्मका बंध होता है। ब्राह्मण वर्ग इसी कालमें प्रगट होते हैं। अनिष्ट बुद्धिधारी ब्राह्मण यज्ञोंके लिये पशुओंकी की हुई हिंसासे पुण्यका लाभ व कल्याण होना बताते हैं।

इस प्रकरणके श्लोक हैं—

किंतु हुंडावसर्पिण्यां कालदोषादिह क्वचित्।
प्रादुर्भवंति पाखण्डास्तथापि च दृपक्षतिः॥ १०४॥
गतायामवसर्पिण्यामुत्सर्पिण्यां तथैव च।
असंख्यकोटिवारं स्यादेका हुंडावसर्पिणी॥ १०५॥
तद्यथा तत्र हुंडावसर्पिण्यां वा यथागमम्।
तीर्थेशाम्नुपसर्गो हि महानर्थो महात्मनाम्॥ १०९॥
मानभङ्गश्च चक्रेशं जायते जातिपूर्वकः।
इत्यादि बहवोऽनर्थाः सन्ति वाचामगोचराः॥ ११०॥

हिंसा प्राणिवधश्चेयं दुष्कर्मार्जनकारणम् ।

यागाथ श्रेयसे हिंसा मन्यंते दुर्धियो द्विजाः ॥ १११ ॥

इस कालमें प्रगटरूपसे ब्रह्म अद्वैतवादी मत प्रगट होता है जो एक अद्वैत ब्रह्मको ही मानते हैं और अनेक द्रव्योंको नहीं मानते हैं। कितने ही एकांतमतवादी तत्वको सर्वथा नित्य ही कहते हैं, वे आकाशको व आत्मा आदिको सर्वथा नित्य मानते हैं। कितने ही क्षणिक एकांतवादी तत्वको सर्वथा क्षणिक ही मानते हैं जैसे शब्द व मेघादि। कितने ही कापालिक मतवाले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पांच तत्वोंको ही मानते हैं। वे जीवको नहीं मानते हैं। उनके मतमें बन्ध व मोक्षकी अवस्था नहीं होसक्ती है। कितने ही अज्ञानी मोक्षका ऐसा स्वरूप मानते हैं कि वहां ज्ञानादि धर्मोंकी संतानका सर्वथा नाश होजाता है। इन मतोंके भीतर बहुतसे भेदरूप मत इस हुंडावसर्पिणी कालमें ही प्रचलित होते हैं, और किसी अवसर्पिणी कालमें नहीं होते हैं।

स्याद्वाद गर्भित श्री जिनेन्द्रकी वाणी द्वारा जैन सिद्धांत एकान्त मतोंका उसी तरह खंडन करता है जिसतरह वज्रपातसे पर्वत चूर्ण होजाते हैं। इन एकांत मतोंका खंडन आगे कहीं करेंगे। यहां उनका कुछ स्वरूप मात्र कहा गया है।

इस हुंडावसर्पिणी कालमें नाना भेष धारी साधु प्रगट होते हैं। कोई त्रिशूलादि शस्त्र लिये रहते हैं, कोई जटाओंको बढ़ाते हैं, कोई शरीरमें भस्मको लपेटते हैं, कोई एक दंडी, कोई दो दंडी, कोई

त्रिदंडी होते हैं। कोई हंस व कोई परमहंस होते हैं जो वनमें निवास करते हैं। इस कालमें इतने साधुओंके भेष प्रचलित होजाते हैं कि उनका नाम मात्र भी कहा नहीं जासक्ता। इस कालमें राजालोग भी पापमें रत दिखलाई पडते हैं। रोग पीडित साधु पाए जाते हैं। ऐसा होनेपर भी परमार्थको पहचाननेवाले महात्माओंका कर्तव्य है कि वे क्षण मात्र भी इस जैन धर्मको न भूलें। जैसे सुवर्ण अग्निसे तपाए जानेपर भी अपने स्वभावको नहीं छोडता है किंतु और भी निर्मल होजाता है वैसे ही सज्जन पुरुषोंका कर्तव्य है कि क्षुद्र पुरुषोंसे पीडित होनेपर भी वे कभी धर्मको न त्यागें। कहा है कि इस लोकमें अनेक जीव अपने २ बांधे हुए कर्मोंके वश नाना भावोंको रखने वाले हैं, उनके कुत्सित भावोंको देखते हुए भी योगियोंका मन क्षोभित नहीं होता है। वे समभावसे सत्य वस्तु स्वरूपको विचारकर अपना हित करते हैं। इसतरह चौथे कालकी कुछ विधि कही है। अधिक वर्णन परमागमसे जानना योग्य है।

जब चौथे कालमें तीन वर्ष साढ़ेआठ मास शेष रहे थे तब श्री वीर भगवानने निर्वाण प्राप्त कर लिया। उसके पीछे बासठवर्षमें तीन केवलज्ञानी मोक्ष पधारे—श्री गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी।

पञ्चमकाल वर्णन।

तीन केवलीके पीछे सौ वर्षमें चौदह पूर्वोंके पारगामी पांच श्रुतकेवली क्रमसे हुए—विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु। उसके पीछे एकसौ अस्सी वर्षमें क्रमसे दश पूर्वके ज्ञाता

ग्यारह मुनिराज हुए–विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयसा, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिमान्, अंगदेव, धर्मसेन। यहांतक आत्मा आदि तत्वोंका पूर्ण उपदेश होता रहा। इनके पीछे क्रमसे दोसौ बीस वर्षोंमें ग्यारह अंगके पाठी पांच मुनीश्वर हुए–नक्षत्र, जयमाल, पांडु, ध्रुवसेन व कंसाचार्य। इस समय तत्वोपदेशकी कुछ हानि होगई। जैसे हाथकी हथेलीमें रखा हुआ पानी बूँद बूँद करके गिर जाता है, फिर एकसौ अठारह वर्षोंमें क्रमसे प्रथम अंगके पाठी पांच मुनि हुए–सुभद्र यशोभद्र, भद्रबाहु, महायश, लोहाचार्य। इनके समयमें तत्वोपदेश एक भाग ही रह गया। आगे आगे चलकर और भी तत्वोपदेश कम होगया। क्योंकि पंचम-कालके दोषसे मानवोंकी बुद्धि हीन हीन होती चली गई।

इस दुषमा पंचमकालमें मानवोंकी आयु साधारणरूपसे एकसौ बीस पर्यंतकी होजाती है। इस कालमें अप्रमत्त विरत सातवां गुण-स्थान तक ही होती है। कोई साधु उपशम या क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ सकता है न इस कालमें दोनों मनःपर्ययज्ञान होते हैं। देशावधि तो होती है, परन्तु परमावधि व सर्वावधि नहीं होती है। तपकी हानि होनेसे सब ऋद्धियां सिद्ध नहीं होती हैं। पंचकल्याणकोंके न होनेसे देवोंका आगमन नहीं होता है। कहीं किसी समय कोई २ क्षुद्र देव किसी कारणसे आते हैं, ऐसा जिनागममें कहा है। उत्कृष्ट आयु १२० वर्षकी होती है। शरीरकी ऊंचाई एक धनुषकी या चार हाथकी होती है। जैसे २ काल बीतता है, मानवोंकी आयु

घटती जाती है, धर्मका भी कहीं२ अभाव होजाता है। इस कालमें उपशम तथा क्षयोपशम दो ही सम्यक्त बाधा रहित होसकते हैं। केवलियोंके न होनेसे क्षायिक सम्यक्त नहीं होसकता है। एक अन्य ग्रंथकी गाथामें कहा है कि पहले कालमें उपशम सम्यक्त ही होती है और सर्व कालोंमें पहला उपशम व दूसरा क्षयोपशम सम्यक्त दो होते हैं। क्षायिक सम्यक्त तब ही होता है जब श्री जिनेन्द्र केवली होते हैं। यहां कुछ श्लोक उपयोगी है:—

ततः श्रेण्योरभावः स्यात्तमनःपर्ययबोधयोः।
देशावधिं विना परमसर्वावधिबोधयोः॥ १४२॥
ऋद्धीणां चापि सर्वासामभावस्तपसः क्षतेः।
नापि देवागमस्तत्र कल्याणानामनाभावतः॥ १४३॥
कदाचित् कुत्रचित् केचित् क्षुद्रदेवाः कथंचन।
आगच्छंति पुनस्तत्र सद्भिः प्रोक्तं जिनागमे॥ १४४॥

गाथा–पढम पढमे णियदं पढमं विदियं च सव्वकालेसु।
खाइयसम्मत्तो पुण जत्थ जिणो केवली तम्हि॥ १॥

इस दुखमा पंचमकालमें महाव्रत और अणुव्रत दोनोंका पालन होसकता है, परन्तु अप्रमत्तविरत सातवें गुणस्थानके ऊपर गमन नहीं होसकता है। जो कोई भद्र परिणामी हैं व दया धर्म व दानमें तत्पर रहते हैं, शील तथा उपवास पालते हैं, वे निरंतर स्वर्ग भी जाते हैं। इत्यादि कार्य जिस कालमें होते हैं वह दुखमा काल है ऐसा आप्तका उपदेश है।

छठे कालका आगमन।

इस पंचमकालके अन्तमें जो व्यवस्था होती है, वह भी कुछ वर्णन की जाती है। इस पंचमकालके बीतनेपर दुखमा दुखमा नामका छठा काल आता है, उसका भी कुछ कथन किया जाता है। पंचमकालके अन्तमें किसी देशका कलंकी राजा हाला-हल विषके समान धर्मका घातक प्रगट होता है। उसका भी सर्व व्यवहार प्रजाको पीड़ाकारी होता है। उस समय तक सर्व सुव-र्णादि धातुएं विला जाती हैं। चमड़ेका सिक्का चल जाता है उसीसे ही माल खरीदा व बेचा जाता है। वह दुष्ट राजा प्राणियोंके बांधने व मारनेके ही वचन बोलता है। जैनधर्म तबतक बराबर चलता रहता है। क्योंकि उस समय भी एक भावलिंगी मुनि, एक आर्यिका, एक जैन श्रावक, एक श्राविका मिलते हैं। कहा है—

अथ तत्रापि नृपः साक्षादव्युच्छिन्नप्रवाहतः।
यस्मादेको मुनिजना विद्यते भावलिंगवान् ॥१५७॥
एका चाप्यर्जिका तत्र यथोक्तव्रतधारिका।
सजानः श्रावकश्चैको जैनधर्मपरायणः ॥१५८॥

भावार्थ—वह कलंकी पापी राजा किसी दिन विचारता है व कहता है—क्या कोई मेरी आज्ञासे विरुद्ध है? मुझे कर नहीं देता है? ऐसा सुनकर कितने अधम पुरुष कहते हैं कि—महाराज! एक जैनका मुनि है जो आपको कर नहीं देता है। कहा है—

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
लोकास्तदनुवर्तंते यथा राजा तथा प्रजाः ॥ १६१ ॥

भावार्थ—यदि राजा धर्मात्मा होता है तो प्रजा धर्मात्मा होती है, यदि राजा पापी होता है तो प्रजा पापी होती है, यदि राजा समान होता है तो प्रजा समान होती है। लोग राजाका अनुकरण करते हैं। जैसा राजा होता है वैसी प्रजा होती है।

ऐसा सुनकर वह राजा निर्दयी वचन कहता है कि जिसतरह जैन मुनिसे दण्ड लिया जाय वैसा उपाय करना योग्य है। राजाकी आज्ञा पाकर राजाके कुछ नौकर उन जैन मुनिके पीछे जाते हैं। जब वह भिक्षाके लिये भूमि निरख कर चलते हैं। जब वे पवित्रात्मा किसी श्रावकके घरमें निकट पहुंचते हैं और वह श्रावक नमोऽस्तु कहकर मुनिका पड़गाहन करके विधिके साथ भीतर लेजाकर व भक्ति पूजा करके दान देनेको खड़ा होता है और मुनि शुद्ध भावसे अपने करमें जैसे भोजनका ग्रास लेते हैं वैसे राजाके नौकर वज्रमई कठोर वचन कहते हैं कि तुम इस तरह भोजन नहीं कर सक्ते। राजाकी आज्ञा है कि पहला ग्रास राजाको करके रूपमें प्रतिदिन देना होगा। इतना सुनते ही आगमके ज्ञाता मुनि पंचमकालकी अंतिम अवस्थाका विचार करते हैं और निश्चय करते हैं कि यह पंचमकालका अंत समय है। इसीलिये ऐसा अनर्थ होरहा है। शास्त्रके ज्ञाता मुनि उस आहारके ग्रासको छोड़ देते हैं और मुनि धर्मका चलना अशक्य जानकर सावधानीसे जीवन पर्यंत चार प्रकारके आहारका त्याग करके समाधिमरण धारण करते हैं। तब आर्यिका भी सर्व आहार त्याग कर सावधान हो

समाधिमरण धारण करती है। अपनी धर्मपत्नी सहित श्रावक भी मुनिके समान सपार शरीर भोगोंसे विरक्त हो समाधिमरण स्वीकार कर लेते हैं। चारों ही सम्यक्ती महात्मा शरीरको त्यागकर स्वर्गमें देव उत्पन्न होते हैं। पश्चात् उस कलंकी राजाके ऊपर भी बिजली गिरती है। उसकी शय्या व गृह आदि सर्व नाश होजाता है। उसी क्षणसे ही दही, दूध, घी आदि विला जाता है। जैसे पापके उदयसे सम्पदा विला जाती है।

छठे कालका वर्णन।

उस समयसे दुखमा दुखमा नामका छठा काल प्रारम्भ होजाता है। उस समय भोग सामग्री नाश होजाती है। तब उत्कृष्ट आयु सोलह वर्षकी रह जाती है। मानवोंके शरीरकी उत्कृष्ट ऊँचाई एक हाथ ही होजाती है। मध्यम व जघन्य आयु व ऊँचाई आगमसे जानना योग्य है। पशुओंकी भी आयु व शरीरकी ऊँचाई आगमसे जानना चाहिये। इस कालमें मनुष्य तथा पशु सब दुखोंसे पीड़ित होते हैं। फल आदिका आहार करते हैं। भूमिके बिलोंमें रहते हैं। मनुष्य वृक्षकी छालके कपड़े पहनते हैं। परस्पर विरोध रखते हैं। पशु भी महान दुष्ट होते हैं। रात दिन लड़ते रहते हैं। पापी व निर्दयी प्राणी धर्मबुद्धिके अभावसे व दुष्ट कालके प्रभावसे एक दूसरेको मार करके फल खाते हैं। वर्षभरमें वर्षा कभी कहीं होती है। प्राणियोंमें तृष्णा इतनी बढ़ जाती है कि कभी वह शांत नहीं होती है। पापकर्मके उदयसे इसतरह छठे कालके प्राणी बड़े कष्टसे इक्कीश-हजार वर्ष पूर्ण करते हैं।

४९ दिन प्रलय होना।

छठे कालके अंतमें कालके प्रभावसे इस आर्यखण्डमें प्रलय होती है। सात सात दिनतक क्रमसे अग्नि, रज आदिकी वर्षा होती है। इसतरह लगातार उनचास दिन तक महान कष्टदायक भयंकर उपद्रव होता है। उस क्षेत्रके रक्षक देव वहचर जोडोंको स्त्री पुरुष सहित लेजाकर गुफा आदिमें रख देते हैं।

इस आर्यखण्डमें शेष सब कृत्रिम रचना भस्म होजाती है। अकृत्रिम रचना बनी रहती है। उसे कोई नाश नहीं कर सक्ता है। चित्रा पृथ्वी नित्य बनी रहती है। इस तरह अनंतबार कालके परिवर्तनमें छठे कालके अंतमें प्रलय होचुकी है। कहा है—

द्वासप्ततिजीवानां दंपतीमिथुनं तदा।
तत्राधिकारिभिर्देवैर्नीयंते गह्वरादिषु ॥ १८७ ॥
शेषमत्रार्यखण्डेऽस्मिन् कृत्रिमं भस्मसाद्भवेत्।
अकृत्रिमं तु केनापि कर्तुं शक्यं न चान्यथा ॥१८८॥

इसप्रकार भरतक्षेत्रमें अवसर्पिणीके छः काल, फिर विरोध क्रमसे उत्सर्पिणीके छःकाल वर्तते रहते हैं।

मगधदेश वर्णन।

ऐसे भरतक्षेत्रमें मगधदेश पृथ्वीमें प्रसिद्ध बसता है। जिस देशकी प्रजा भोग सम्पदासे नित्य प्रसन्न है व जहां सदा उत्सव होते रहते हैं। जिस देशमें मेघोंकी वर्षा सदा हुआ करती है। वहां कभी अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि ईतियां नहीं होती हैं, न वहां

सुनीतिका प्रचार है। राजाओंके द्वारा प्रजाको करकी बाधा नहीं पहुंचाई जाती है। वहां सदा सुकाल रहता है। वहांके खेत धान्यसे व वृक्षफलोंसे सदा फलते रहते हैं। फलोंसे लदे हुए वृक्षोंसे मंद मंद सुगंध आती है। पथिकगण इसके रसको इच्छानुसार पीते हैं। जहांके कूप व सरोवर जलसे भरे हुए हैं व मनुष्योंके आतापको हरते हैं। वापिकाएं निर्मल जलसे भरी हुई मानवोंकी तृषाको बुझाती हैं। जिनके तटोंपर वृक्षोंकी छाया होरही है। वृक्षोंने सूर्यके आतापको रोक रखा है।

जिस देशमें बड़ी नदियां स्वच्छ जलसे पूर्ण कुटिलतासे दूरतक बहती थीं, जिससे सर्व मानव व पशुपक्षी लाभ उठाते थे।

झीलोंके तटोंपर हंस कमलकी दंडीके साथ कल्लोल कर रहे थे। वनोंमें बड़े २ मस्त हाथी विचर रहे थे। जहां बड़े २ दृढ़ वृषभ जिनके सींगोंमें कर्दम लगा है, थल कमलोंको देखकर पृथ्वीको खोद रहे थे। इस देशमें स्वर्गपुरीके समान नगर थे। कुरुक्षेत्रकी सड़कोंके समान चौड़ी सड़कें थीं। स्वर्गके विमानोंके समान सुन्दर घर थे व देवोंके समान प्रजा सुखसे वास करती थी। उस देशमें कहीं भंग उपद्रव न था। यदि भंग था तो जलकी तरंगोंमें था। प्रजामें मद न था, मद था तो हाथियोंमें था। दंड देना नहीं पड़ता था, दंड कमलोंमें था। सरोवरोंमें ही जलका समूह था, कोई नगर जलमग्न नहीं होता था। गाएं ठीक समयपर गाभिन होती थीं। जैसे मेघोंसे जल मिलता है वैसे गायोंसे मनुष्योंको दूध

मिलता था। उसको पीकर लोग हृष्टपुष्ट रहते थे। मगध देशकी स्त्रियां स्वभावसे ही सुन्दर थीं। पुरुष स्वभावसे ही चतुर थे। जहां हर घरमें कन्याएं स्वभावहीसे मिष्टवादिनी थीं।

मगध देशके लोग श्री अरहंतोंकी पूजामें व पात्रदानमें बड़ी प्रीति रखते थे। ब्रह्मचर्य पालनेमें बड़े शक्तिशाली थे। अष्टमी, चौदशको प्रोषधोपवास करनेमें रुचिवान थे। कहा है—

यत्र सत्पात्रदानेषु प्रीतिः पूजासु चार्हताम्।
शक्तिरात्यंतिकी शीले प्रोषधे च रतिर्नृणाम् ॥ २०८॥

नोट—इससे कविने यह दिखलाया है कि मगधदेशमें जैन धर्मका दीर्घकालसे प्रचार था। गृहस्थ लोग श्रावकोंके नित्यकर्ममें सावधान थे तथा सारा देश बड़ा सुखी था। प्रजा आनन्दमें समय बिताती थी।

राजगृही नगर वर्णन।

इस मगध देशके एक भागमें राजगृही नगरी शोभायमान थी। जहांके राजसुभट इन्द्रके समान सदा शोभते थे। इस नगरके बड़े बड़े प्रासादोंके ऊपर लगाए हुए सुवर्णके कलश शोभते थे। जिससे नगरनिवासियोंको आकाशमें सैकड़ों चंद्रमाओंके चमकनेकी भ्रांति होती थी। वहां शिखरबंद श्री जिनमंदिर थे, जिनपर दण्ड सहित पताकाएं हिल रही थीं, जिनसे ऐसा मालूम होता था कि आकाशमें गंगा नदीके सैकड़ों प्रवाह बह रहे हैं।

महलोंकी खिडकियोंमें या झरोखोंमें सुन्दर स्त्रियां अपना

मुख बाहर निकाले हुए बैठी थीं। ऐसा विदित होता था कि झरोखोंमें कमल खिल रहे हैं। वहांकी नारियोंकी सुंदरता देखते देखते देवियां चकित होती थीं। इसीलिये मानो उनके नेत्रोंको कभी पलक नहीं लगती थी।

(नोट—देवदेवियोंके कभी पलक नहीं लगती। नेत्र सदा खुले रहते हैं। निद्रा नहीं आती) उस नगरमें नित्य नृत्य व गीत वादित्रकी ध्वनि होती थी। सुगंधित धूपका धूआं फैला रहता था। जिससे मयूरोंको मेघोंकी गर्जनाका भ्रम होता था और वे मोर ध्वनि करने लगते थे।

श्रेणिक महाराजका वर्णन।

उस राजगृहनगरमें राजाओंके राजा महाराज श्रेणिक राज्य करते थे जो बड़े बुद्धिमान् थे। अनेक भूपाल उनके चरणोंको मस्त नमाते थे। राजा श्रेणिकके शरीरमें सर्वही लक्षण शुभ थे, जिनका वर्णन करना कठिन है, तौ भी सामुद्रिकशास्त्र ज्ञानके लिये कुछ लक्षण कहे जाते हैं। राजाके शिरपर नीले व घूघरवाले बाल ऐसे शोभते थे मानों कामदेव रूपी काले सर्पके बच्चे ही प्रगट हुए हैं। भ्रमरके समान नेत्र थे, मुख कमलके समान था। जब राजा युद्ध करते थे उनके मुखके भीतरसे किरणें चारों तरफ फैल जाती थीं। वाणी बड़ी ही मधुर थी, फूलके रससे भी मीठी थी। राजाके दोनों नेत्र कर्ण तक लम्बे शोभते थे। उन नेत्रोंने सत्य शास्त्रोंका ही आश्रय लिया है। वे सिखारहे हैं कि बुद्धिमानोंको सच्च श्रुतको ही सीखना

चाहिये। राजाके कंठमें हार ऐसा शोभता था मानों ओसकी बूंद ही हों या मानों तारागणोंको लेकर चंद्रमा ही राजाकी सेवाके लिये आगया है। राजाके चौड़े वक्षस्थलमें चंदन चर्चा हुआ था। मानों सुमेरु पर्वतके तटपर चंद्रमाकी चांदनी छाई हुई है।

राजाके सिरके ऊपर मुकुट मेरुके समान शोभता था, मानों मेरुके दोनों तरफ नील व निषध पर्वत ही हों। यहां नील पर्वतके समान केशोंका भाग व निषिधके समान मुखका अग्रभाग तपाए सुवर्णके समान था। राजाके शरीरके मध्यमें नाभि नदीके आवर्तके समान गंभीर थी। मानो कामदेवने स्त्रीकी दृष्टि रोकनेको एक जलकी खाई ही खोद दी हो। राजाकी कमरका मंडल सुवर्णकी करधनीसे व कमरबंधसे वेष्ठित था, मानो जम्बूवृक्षके चारों तरफ सुवर्णकी वेदी खड़ी की गई है। दोनो जंघाएं स्थिर, गोल व संगठित थीं, मानों स्त्रियोंके मनरूपी हाथीके बांधनेके लिये स्थंभके समान थीं। दोनो चरण लाल थे व बड़े कोमल थे, वे जलकमलके समान शोभित थे, जिनमें लक्ष्मीने निवास किया था। राजा श्रेणिकके पास शास्त्ररूपी संपदा भी रूपसंपदाके समान ऐसी शोभायमान थी जिससे देखनेवालोंको शरदकालके चंद्रमाकी मूर्तिके देखनेके समान आनंद होता था। जैसा राजाका रूप सुखप्रद था वैसे ही उसका शास्त्रज्ञान आनन्ददाता था। राजाकी बुद्धि सर्व शास्त्रोंमें दीपकके समान प्रवीणतासे प्रकाश करती थी। वह शास्त्रोंके पद व वाक्योंके समझनेमें बहुत चतुर थी। राजा श्रेणिक मधुरभाषी था, सुन्दर तनधारी था,

विनयवान था, जितेन्द्रिय था, सन्तोषी था तथा राज्यलक्ष्मीको वश रखनेवाला था। श्रेणिक राजाको विद्याका प्रेम था, कीर्तिका भी अनुराग था वादित्र बजानेका राग था। उसके पास लक्ष्मीका विस्तार था, विद्वान लोग उसकी आज्ञाको माथे चढ़ाते थे।

राजा श्रेणिक ऐसा प्रतापी था कि इसके प्रतापकी अग्निकी ज्वालासे अभिमानी शत्रु क्षणमात्रमें इसतरह ठंडे होजाते थे जैसे आगके लगनेसे तिनके भस्म होजाते हैं। जैसे कमलकी सुगंधसे खिंचे हुए भौंरे कमलकी सेवा करते हैं वैसे बड़े बड़े राजा महाराजा श्रेणिकके चरणोंको सदा प्रणाम करते थे।

इसी राजाने पहले मिथ्यात्व अवस्थामें अज्ञानसे एक जैन मुनिराजको उपसर्ग किया था, तब तीव्र संक्लेशमई भावोंसे सातवें नर्ककी आयु बांधली थी। वही बुद्धिमान् श्रेणिक पीछे काललब्धिके प्रसादसे विशुद्ध भावधारी होकर क्षायिक सम्यग्दर्शनका धारी होगया। वह शीघ्र ही कर्मोंको नाश करनेवाला भावी उत्सर्पिणीकालमें प्रथम तीर्थंकर होगा। श्रेणिक राजाका सब वृत्तान्त अन्य कथा-ग्रन्थोंसे जानना चाहिये, यहां विस्तारभयसे संक्षेपमात्र ही कहा है।

धर्मात्मा रानी चेलना।

राजा श्रेणिककी धर्मपत्नी चेलना रानी पतिव्रता, व्रत, शील व धर्मसे पूर्ण सम्यग्दर्शनको धारनेवाली थी। यद्यपि अन्य अनेक स्त्रियां राजाके अंतःपुरमें थीं, परन्तु श्रेणिक चेलनाके सहवासमें ही अपनेको अर्धांगिनी सहित मानता था। वह चेलना रूप,

यौवन, सुंदरता, व गुणोंकी नदी थी। जैसे नदी समुद्रकी तरफ जाती है वैसे यह अपने भर्तारकी आज्ञानुकूल चलनेवाली थी। जैसे कल्पवृक्षमें लगी हुई कल्पवेल शोभती है वैसे यह चेलना रति कार्यमें अपने भर्तारसे संलग्न हो शोभती थी।

श्री महावीर विपुलाचल पर।

एक दिन सभाके भीतर नम्रीभूत राजाओंसे सेवित महाराजा श्रेणिक सिंहासनपर विराजमान थे। जैसे सुमेरु पर्वतपर झरनें पड़ते हुए शोभते हैं वैसे राजापर ढुरते हुए चमर चमक रहे थे। चन्द्र-मण्डलके समान सिरपर सफेद छत्र शोभता था। उस समय वनके मालीने आकर महाराजके दर्शन किये। प्रणाम करके विनय सहित निवेदन करने लगा कि हे देव! मैंने अपनी आंखोंसे प्रत्यक्ष कुछ आश्चर्यकारी घटनाएं देखी हैं, उन सबका थोड़ासा भी वर्णन मैं नहीं कर सक्ता हूं। तौभी हे महाराज! कुछ अवश्य कहने योग्य कहता हूं—

इसी विपुलाचल पर्वतके मस्तकपर तीन जगतके गुरु महान् श्री वर्द्धमान तीर्थंकरका समवसरण विराजमान है। मैं उस समवसरणकी शोभा क्या कहूं! जहां स्वर्गके देवोंके समूह नौकरोंकी तरह भक्ति व सेवा कर रहे हैं। स्वर्गवासी देवोंके विमानोंमें क्षोभित समुद्रकी ध्वनिके समान घंटोंके शब्द होने लगे। ज्योतिषी देवोंके विमानोंमें महान् सिंहनाद कासा शब्द होने लगा, जिससे ऐरावत हाथीकी मद दूर होजावे। व्यंतरोंक घरोंमें मेघोंकी गर्जनाको दूर

करता हुआ दुंदुभि बाजोंका शब्द होने लगा तथा धरणेंद्रोंके या भवनवासियोंके भवनोंमें शंखकी महान ध्वनि हुई।

चार प्रकारके देवोंने जब यह ध्वनि सुनी, इन्द्रोंके आसन कांपने लगे। भगवानको केवलज्ञान हुआ है, इस विजयको वे आसन सहन न कर सके। कल्पवृक्ष हिलने लगे, उनसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी, सर्व दिशाएं निर्मल झलकने लगीं, आकाश मेघरहित स्वच्छ भासने लगा, पृथ्वी धूलरहित होगई, शीत व सुहावनी हवा चलने लगी। जब केवलज्ञान रूपी चंद्रमा पूर्ण प्रगट हुआ तब जगतरूपी समुद्र आनन्दसे फूल गया। इसी समय सौधर्म इन्द्र कल्पित देवकृत ऐरावत हाथीपर चढ़कर विपुलाचल पर्वतपर आया।

अभियोगजातिके देवने ऐसा मनोहर हाथीका रूप धारण किया कि उसके बत्तीस मुख थे व एक एक मुखमें आठ आठ दांत थे, एकर दांतपर एक एक कमलिनीके आश्रय बत्तीस बत्तीस कमलके फूल थे, एक एक कमलके बत्तीस बत्तीस पत्ते थे, उन पत्तोंमेंसे हरएक पत्तेपर बत्तीस बत्तीस देवांगना नृत्य कररही थीं। उनका नृत्य अद्भुत था। ऐरावत हाथीपर चढ़ा हुआ इन्द्र था। उसके आगे किन्नरी देवियां मनोहर कंठसे श्री जिनेन्द्रका जयगान कर रहीं थीं। बत्तीस व्यंतरेन्द्र चमर ढार रहे थे, सरपर मनोहर छत्र था, अप्सरा देवियें मनोहर शोभाके लिये साथमें चल रही थीं, आकाशमें देवी-देवोंके द्वारा नील, रक्त आदि रङ्ग छारहे थे। ऐसा मालूम होता था कि आकाशमें संध्याकालका समय छाया हुआ है। देवोंकी सेना पूजाकी सामग्री

लिये हुए आकाशमें चलती हुई ऐसी झलकती थी कि देवोंकी सेनारूपी समुद्रमें अनेक तरंगें उठ रही हैं। इन्द्रादि देवोंने दूरसे समवसरणको देखा। इसे देव शिल्पियोंने बड़ी भक्तिसे निर्माण किया था।

इस समवसरणकी चौड़ाई एक योजन (४ कोस) थी। यह इन्द्रनीलमणिकी भूमिसे शोभित था। यह समवसरण इन्द्रनीलमणिसे रचा हुआ गोल था। मानो तीन जगतकी स्त्रियोंके मुख देखनेका दर्पण ही है। जिस समवसरणको इन्द्रकी आज्ञासे देवोंने रचा हो उसकी शोभाका वर्णन कौन करसक्ता है? प्रथम धूलीशाल कोट है जो पांच वर्णके रत्नोंसे बना है। उसके चारों तरफ सुवर्णके ऊंचे स्तंभ हैं, जिसके तोरणोंमें रत्नमालाएं लटक रही हैं। फिर कुछ दूर जाकर गलियोंके मध्यमें सुवर्ण रचित ऊंचे मानस्तंभ हैं। जिनको दूरसे देखनेपर मानियोंका मान गल जाता है। (यहां एक अन्य ग्रंथका श्लोक है जिसका भाव है कि) मानस्थंभोंके आगे चलकर सरोवर है। निर्मल जलकी भरी वापिका है। फिर पुष्पोंकी वाटिकाएं हैं, फिर दूसरा कोट है, नाट्यशाला है, उपवन है, वेदियोंपर ध्वजाएं शोभायमान हैं, कल्पवृक्षोंका वन है, स्तूप है, महलोंकी पंक्तियें हैं, फिर स्फटिक मणिका कोट है, उससे आगे श्री मंडप है वहां बारह सभाएं हैं, जहां देव, मनुष्य, पशु, मुनि आदि विराजते हैं, मध्यमें पीठ है उसके ऊपर स्वयंभू अरहंत तीर्थंकर विराजते हैं। यह पीठ या चबूतरा तीन कटनीदार है। मणियोंकी शोभासे शोभित है। भगवान्‌के ऊपर चलते हुए चमरोंकी प्रतिबिम्ब पड़ती है

तब ऐसा मालूम होता है कि इन कटनियोंपर हंस ही बैठे हैं।

आठ मंगलद्रव्यकी सम्पदा शोभायमान है। ये मंगलद्रव्य जिनेंद्रके चरणकमलोंके निकट रहनेसे पवित्र हैं व गंगाके फेन समान निर्मल स्फटिक मणिसे निर्मापित हैं। तीन कटनीदार पीठ पर गंध-कुटी है, जिस पर तीन लोकके नाथ विराजमान हैं। यह पीठ ऐसा शोभता है मानों देवलोकके ऊपर सर्वार्थसिद्धिके समान है। इस पीठके नीचे सुगंधित धूपके घट मालाओंसे शोभित विराजित हैं। उस गंधकुटीके मध्यमें रत्नमई सिंहासन मेरुशिखरको तिरस्कार करता हुआ शोभता है। उस सिंहासनपर अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान चार अंगुल ऊंचे अधर अपनी महिमासे विराजमान हैं। कहा है—

विष्टरं तदलंचक्रे भगवानंततीर्थकृत्।
चतुर्भिरंगुलैः स्वेन महिम्ना पृष्ठतत्तलम् ॥ २८९ ॥

आठ प्रातिहार्य।

इन्द्रादि देव बड़ी भक्तिसे पूजा कर रहे हैं। आकाशसे मेघ-धाराके समान फूलोंकी वर्षा होरही है। भगवानके पास आठ प्रातिहार्य शोभायमान हैं। अशोक वृक्ष वायुसे अपनी शाखाओंको हिलाता हुआ व सूर्यके आतापको रोकता हुआ भगवानके पास शोभ रहा है। चंद्रमाकी चांदनीके समान धवल तीन छत्र शोभायमान हैं, मानों चंद्रमा तीन रूप बनाकर तीन जगतके गुरुकी सेवा कररहे है। यक्षों द्वारा ढोरे हुए चमरोंकी पंक्तियां क्षीरसमुद्रकी तरङ्गोंके समान शोभ रही हैं। भगवानके शरीरकी चमकमें पड़ती हुई ऐसी

मालूम होती है, मानों शरदकालके चंद्रमाकी चांदनी ही फैली हो। आकाशमें देवदुंदुभी बाजे ऐसी मधुर ध्वनिसे बज रहे हैं कि मोरगण मेघोंके आनेकी शंकासे मदसे पूर्ण हो राह देख रहे हैं।

भगवानकी देहका प्रभामंडल बड़ा ही शोभायमान है, जिसके प्रकाशसे स्थावर जंगम जगत मानो झलक रहा है। भगवानके मुख-कमलसे मेघकी गर्जनाके समान दिव्यध्वनि प्रगट होरही है, जिससे भव्य जीवोंके मनके भीतरका मोह-अंधकार नाश होरहा है, जैसे प्रकाशसे अंधकार दूर होजाता है।

हे महाराज! इसतरह आठ प्रातिहार्योंसे शोभित व अनेक देवोंसे सेवित श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र विपुलाचल पर्वतपर विराजित हैं। उनके विराजनेका ऐसा महात्म्य है कि जिनका जन्मसे वैरभाव है ऐसे विरोधी पशु पक्षियोंने भी परस्पर वैरभाव त्याग दिया है। शांतिसे सिंह मृग आदि पास पास बैठे हैं। जिनका किसी कारणसे इस शरीरमें रहते हुए परस्पर वैरभाव होगया था वे भी भगवानके निकट आकर वैरभाव छोडकर शांतिसे तिष्ठे हुए हैं। महाराज! हस्तिनी सिंहके बालकको दूध पिला रही है। मृगोंके बालक सिंहनीको माताकी बुद्धिसे देख रहे हैं। महाराज! वहां सर्पोंके फणोंपर मेंढक निःशंक बैठे हैं, जिसतरह पथिकजन वृक्षोंकी छायामें आश्रय लेते हैं।

महाराज! सर्व ही वृक्ष सर्व ही ऋतुके पत्रोंसे व फलोंसे फल रहे हैं और आनंदके मारे लम्बी शाखाओंको हिलाते हुए नृत्य कर

रहे हैं। खेतोंमें बडे स्वादिष्ट धान्य पक रहे हैं। सर्व प्रकारकी सर्व रोगनाशक व पौष्टिक औषधियां प्रजाके सुखके लिये प्रगट होरही हैं। भगवानके प्रतापसे दुर्भिक्ष आदि संकट इसीतरह मूलसे नाश हो गए हैं जैसे सूर्यके उदयसे अंधकार विला जाता है। हे महाराज! श्री महावीर जिनेन्द्रके विराजनेसे एकसाथ इतने चमत्कार हो रहे हैं कि मैं इस समय कहनेको असमर्थ हूं।

श्रेणिकका वीर समवसरणमें आना।

इस तरह वनपालके मुखसे सुखप्रद वचन सुनकर महाराज श्रेणिकका शरीर आनन्दरूपी अमृतसे पूर्ण होगया। इसी समय श्री जिनेन्द्रकी भक्तिके भावसे सिंहासनसे उठकर भगवानके सम्मुख मुख करके सात पग चलकर श्रेणिकने तीन दफे नमस्कार किया। तथा अपने सर्व परिवारको लेकर श्री महावीर भगवानकी पूजाके लिये जानेकी तय्यारी करने लगा। भक्तिभावसे पूर्ण होकर धर्मकी प्रभावनाके लिये बड़े ठाठबाटसे वंदनाके लिये चला। सेनाको साथ लिया उसका क्षोभ हुआ, आनंदप्रद बाजोंकी ध्वनि सब दिशाओंमें छागई। हाथी, घोड़े, रथ, पैदलोंकी सेना साथ थी। हजारों ध्वजाएं दूरसे चमकती थीं। महान साज-सामानके साथ महाराज श्रेणिक समवसरणमें पहुंचे। वह समवसरण सूर्य मंडलकी प्रभाको जीतनेवाला शोभायमान होरहा था। प्रथम ही मानस्थंभोंकी प्रदक्षिणा देकर पूजा की। फिर समवसरणकी शोभाको क्रमशः देखते हुए महान आश्चर्यमें भर गया।

श्री मंडपके वहां पहुंचा, धर्मचक्रकी प्रदक्षिणा दी, पीठकी पूजा की, फिर गंधकुटीके मध्यमें सिंहासनपर उदयाचलपर सूर्यके समान विराजित श्री जिनेन्द्रका दर्शन किया। जिनेन्द्र पर चमर ढर रहे थे। भगवान आठ प्रातिहार्य सहित विराजमान थे। तीन लोकके प्रभु जिनेश्वरदेवकी गंधकुटीकी तीन प्रदक्षिणा दी, फिर बड़ी भक्तिसे श्री जिनेन्द्रकी पूजा की। पूजाके पीछे बड़े भावसे स्तुति की। उस स्तुतिका भाव यह है—आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। आप दिव्यवाणीके स्वामी हैं, आप कामदेवको जीतनेवाले हैं, पूजनेयोग्य हैं, धर्मकी ध्वजा हैं, धर्मके पति हैं, कर्मरूपी शत्रुओंके क्षय करनेवाले हैं, आप जगतके पालक हैं, आपका सिंहासन महान शोभायमान है, आपके पास अशोक वृक्ष शाखाओंसे हिलता हुआ, ऊंचा व आश्रय करनेवालोंको छाया देता हुआ विराजमान है। यक्ष भक्तिसे चमर ढारते हुए मानो भक्तजनोंके पापोंको उड़ा रहे हैं। स्वर्गपुरीसे पुष्पकी वृष्टि होरही है, मानो स्वर्गकी लक्ष्मी हर्षके मारे अश्रुबिंदु क्षेपण कर रही है। आकाशमें देवदुंदुभि बाजे बजते हैं। मानो आपकी जयघोषणा कर रहे हैं कि आपने सर्व कर्मशत्रुओंको विजय किया है। आपमें शुद्ध ज्ञान, दर्शन, वीर्य, चारित्र, क्षायिक सम्यग्दर्शन, अनंतदानादि लब्धियां हैं। मोतियोंसे शोभित आपके ऊपर तीन छत्र विराजित हैं जो आपके निर्मल चारित्रको प्रगट कर रहे हैं। आपके शरीरका प्रभामण्डल फैला हुवा है, मानो आपका पुण्य आपको अभिषेक

कर रहा है। आपकी दिव्यध्वनि जगतके प्राणियोंके मनको पवित्र करती है। आपका ज्ञान सूर्यका प्रकाश मोहरूपी अंधकारको दूर कर रहा है।

आपका ज्ञान अनंत है, अनुपम है व क्रमरहित है। आपका सम्यग्दर्शन क्षायिक है, सर्व विश्वको जानते हुए भी आपको किंचित् खेद नहीं होता है। यह आपके अनंत वीर्यकी महिमा है। आपके भावोंमें रागादिकी कलुषता नहीं है। आप क्षायिक चारित्रसे शोभित हैं। आपके पास स्वाधीन आत्मासे उत्पन्न अतीन्द्रिय पूर्ण सुख है। जैसे निर्मल जल शीतल व मलसे रहित भासता है वैसे आपका सम्यग्दर्शन मिथ्यादर्शनकी कीचसे रहित शुद्ध भासता है। अनंत दान भोगोपभोग लब्धियां आपके पास हैं, परन्तु उनसे कोई प्रयोजन आपको नहीं है, क्योंकि आप कृतकृत्य हैं, बाहरी सर्व विभूतिका सम्बन्ध आपके लिये निरर्थक है। आप तो अनंत गुणोंके स्वामी हैं। मुझ अल्पबुद्धिने कुछ गुणोंसे आपकी स्तुति की है। इसप्रकार परमैश्वर्य सहित श्री भगवान जिनेन्द्रकी स्तुति करके राजा श्रेणिक अपने मनुष्योंके बैठनेके कोठेमें गया और वहां बैठ गया।

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगधदेश विख्यात है। उसमें श्री राजगृह नगरी राजधानी है। उसका राजा महाराज श्रेणिक श्री विपुलाचल पर्वतपर विराजित श्री वर्द्धमान भगवानके समवसरणमें जाकर भक्तिपूर्वक तिष्ठा है।

दूसरा अध्याय

श्री जम्बूस्वामी पूर्वभव-भावदेव भवदेव स्वर्गगमन।

(श्लोक २४१ का भाव)

संसार दुःखोंको हरनेवाले तीर्थंकर श्री संभवनाथको व इन्द्रोंसे वन्दनीक श्री अभिनन्दनस्वामीको हम भावसहित नमस्कार करते हैं।

तब समवशरणमें विराजित राजा श्रेणिक प्रफुल्लित कमल समान दोनों हाथोंको जोड़कर व भक्तिसे नतमस्तक होकर श्री जगतके गुरुसे तत्त्वोंका स्वरूप जाननेकी इच्छासे यह प्रार्थना करने लगा- हे भगवान् सर्वज्ञ! मैं जानना चाहता हूं कि तत्त्वोंका विस्तार क्या है, धर्मका मार्ग क्या है, व उसका कैसा फल है। पुण्यवान महाराज श्रेणिकके प्रश्न करनेपर भगवान् श्री महावीरने गंभीर वाणीसे तत्त्वोंका व्याख्यान किया।

निरक्षरी ध्वनि।

व्याख्यान करते हुए महान् वक्ताके मुखकमलमें कोई विकार नहीं हुआ जैसे-दर्पणमें पदार्थोंके झलकनेपर भी कोई विकार नहीं होता है। तालु व ओष्ठ भी हिले नहीं। सर्व अंगसे उत्पन्न होनेवाली निरक्षरी ध्वनि भगवानके मुखसे प्रगट हुई-स्वयंभूके मुखसे वाणी ऐसी खिरी जैसे पर्वतकी गुफासे ध्वनि प्रगट हो। उस वाणीमें अर्थ भरा हुआ था। कहा है-

ताल्वोष्ठमपरिस्पंदि सर्वांगेषु समुद्भवाः।
अस्पृष्टकरणा वर्णा मुखादस्य विनिर्ययुः ॥ ७ ॥

स्फुरद्गिरिगुहोद्भूतप्रतिध्वनितसंनिभः।
प्रस्पष्टार्थको निरागाद्ध्वनिः स्वायंभुवात् मुखात् ॥ ८ ॥

भगवानकी इच्छा बिना भी जिनवाणी प्रगट हुई—महान पुरुषोंकी, योगाभ्याससे उत्पन्न शक्तियोंकी संपदा अचिंत्य है। चिंतवनमें नहीं आसक्ती है। कहा है—

विवक्षामंतरेणापि विविक्ताऽसीत् सरस्वती।
महीयसामचिन्त्या हि योगजाः शक्तिसम्पदः ॥ ९ ॥

सात तत्वकथन।

भगवानकी वाणी प्रगट होनेके पीछे गौतमगणधरने कहा—हे श्रेणिक! मैं अनुक्रमसे जीव आदिसे लेकर काल पर्यंत तत्वार्थके स्वरूपको अनुक्रमसे कहता हूं सो सुनो। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्व सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानके विषय हैं। पुण्य व पाप पदार्थ स्वभावसे आस्रव व बन्धमें गर्भित हैं इसलिये तत्वज्ञानी आचार्यने उनको तत्वोंमें नहीं गिना है।

द्रव्य लक्षणको धारण करनेसे लोकमें छः द्रव्य हैं। जिसमें गुण व पर्याय हो उसको द्रव्य कहते हैं। जीव गुणपर्याय धारी है इसलिये द्रव्यका लक्षण रखनेसे द्रव्य है। पुद्गलके भी गुणपर्याय होते हैं इसलिये पुद्गलको भी द्रव्य कहते हैं। इसीतरह गुणपर्यायके धारी अन्य चार द्रव्योंकी भी सत्ता है अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल प्रदेशोंकी बहुलता रखनेवाले द्रव्योंको अस्तिकाय कहते

हैं। ऐसे अस्तिकाय स्वभाववाले पांच द्रव्य हैं। कालके कायपना नहीं है। कालगुणके एक ही प्रदेश है इसलिये कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं है। जितने आकाशको एक अविभागी पुद्गलका परमाणु रोकता है उसको प्रदेश कहते हैं। इस मापसे मापने पर काल सिवाय अन्य पांच द्रव्योंके बहु प्रदेश मापमें आवेंगे। इसलिये जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म व आकाश अस्तिकाय हैं। जीव आदि पदार्थोंका जैसा उनका यथार्थ स्वरूप है वैसा ही श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तथा उनको वैसा ही जानना सम्यग्ज्ञान है। कर्मोंके बंधनके कारण भावोंका जिससे निरोध हो वह चारित्र है। इन तीनोंकी एकतासे कर्मोंका नाश होता है इसलिये यह रत्नत्रय मोक्षका मार्ग है। सम्यग्दर्शनको सम्यग्ज्ञानसे पहले इसलिये कहा गया है कि सम्यग्दर्शनके विना ज्ञानको अज्ञान या मिथ्या ज्ञान कहा जाता है।

यहां द्रव्यसंग्रहकी गाथा दी है, जिसका अर्थ है–जीवादि तत्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। निश्चयसे वह आत्माका स्वभाव है। संशय, विमोह, विभ्रम रहित ज्ञान तब ही सम्यग्ज्ञान कहलाता है जब सम्यग्दर्शन प्रगट होजावे। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक ही चारित्र अपना वास्तव कार्य करनेको समर्थ होता है। यदि ये दोनों न हों तो वह चारित्र मिथ्याचारित्र कहलाता है। इन तत्वोंका लक्षण तत्वज्ञानके लिये कुछ आगमानुसार कहा जाता है। द्रव्योंमें अस्तित्व आदि सामान्य स्वभाव है। तथा ज्ञानादि विशेष स्वभाव हैं।

जीवतत्व ।

यह जीव सदासे सत् है, अनादि अनंत है, नित्य है, स्वतः सिद्ध है, मूलमें पुद्गल सम्बन्धी शरीरोंसे रहित है, असंख्यात प्रदेशोंको रखनेवाला है, अनंत गुणोंका धारी है, पर्यायकी अपेक्षा जीवमें व्यय उत्पाद होता है। जीवका विशेष लक्षण चेतना है, वह ज्ञाताद्दष्टा है, वह कर्ता है, यही भोक्ता है, निश्चयसे अपने ही शुद्ध भावोंका कर्ताभोक्ता है। अशुद्ध निश्चयसे रागद्वेषादि भावोंका कर्ता व भोक्ता है। व्यवहारनयसे द्रव्यकर्म व नोकर्मका कर्ता व भोक्ता है।

संसारदशामें समुद्घातके सिवाय प्राप्त शरीरके प्रमाण आकारका धरनेवाला है। वेदना, कषाय, विक्रिया, आहारक, तैजस, मारणांतिक व केवल समुद्घातमें कुछ कालके लिये शरीरसे बाहर फैलता है, फिर संकोच कर शरीराकार होजाता है। नाम कर्मके उदयसे दीपकके प्रकाशकी तरह संकोच विस्तारके कारण छोटे व बड़े शरीरमें छोटे व बड़े शरीर प्रमाण होता है। मोक्ष होनेपर अंतिम शरीर प्रमाण रहता है। जब इस जीवके सर्वकर्मोंका नाश होजाता है तब यह जीव शुद्ध ज्ञानादि गुणोंके साथ ऊर्द्धगमन स्वभावसे लोकके ऊपर सिद्धक्षेत्रमें विराजता है।

इस जीवको प्राणी, जन्तु, क्षेत्रज्ञ, पुरुष, पुमान्, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञ, ज्ञानी आदि नामोंसे कहते हैं। क्योंकि संसारके जन्मोंमें यह जीता है, जीता था व जीवेगा। इसलिये इसको जीव

कहते हैं। संसारसे छूटकर मोक्ष होनेपर भी सदा जीता रहता है, तब इसको सिद्ध कहते हैं। जीवके तीन भेद भी कहे जाते हैं—भव्य, अभव्य और सिद्ध। जिनके सुवर्ण धातु पाषाणके समान सिद्ध होनेकी शक्ति है, उनको भव्य कहते हैं। अन्ध पाषाणके समान जिनमें सिद्ध होनेकी शक्ति नहीं है उनको अभव्य कहते हैं। अभव्योंको कभी भी मोक्षके कारणरूप सामग्रीका लाभ नहीं होगा। जो कर्मबन्धसे मुक्त होकर तीन लोकके शिखर पर बिराजमान होते हैं और जो अनंत सुखके भोक्ता हैं वे कर्मोंके अंजनसे रहित निरंजन सिद्ध हैं। इस तरह जीवतत्वका संक्षेपसे कथन किया गया। अब अजीव पदार्थको कहता हूं, सुनो—

अजीव तत्व।

जिसमें जीव तत्व न हो उसको अजीव कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य और पुद्गलद्रव्य। जो द्रव्य अमूर्तीक लोकव्यापी है व जो जीव और पुद्गलके गमनमें उदासीन निमित्त कारण है वह धर्म द्रव्य है, यह गमनमें प्रेरणा नहीं करता है। जैसे मछलीके इच्छापूर्वक गमनमें जल सहायक है, जल मछलीको प्रेरणा नहीं करता है, इसी तरहका लोकव्यापी अमूर्तीक अधर्म द्रव्य है जो जीव और पुद्गलोंके ठहरनेमें उदासीन निमित्त कारण है। जैसे वृक्षकी छाया पथिकको ठहरानेमें निमित्त कारण है—प्रेरक नहीं है, इसी तरह अधर्म भी प्रेरक नहीं है। आकाश द्रव्य, अनंत व्यापी, अमूर्तीक, हलन चलन क्रिया रहित,

स्पर्शमें न आने योग्य एक द्रव्य है, जो जीवादि पदार्थोंको अवगाह देता है। काल द्रव्य वर्तना लक्षण है, सर्व द्रव्य अपने २ गुणोंकी पर्यायोंमें वर्तन करते हैं उनके लिये कालद्रव्य निमित्त कारण है। जिस तरह कुम्हारके चक्रके स्वयं घूमनेमें नीचेकी शिला कारण है इसी तरह स्वयं परिणमन करनेवाले द्रव्योंकी पर्याय पलटनेमें निमित्त कारण काल है ऐसा पण्डितोंने कहा है। व्यवहार समय घटिका आदि कालसे ही मुख्य या निश्चय कालका निर्णय होता है, क्योंकि निश्चय कालके विना व्यवहार काल नहीं होसकता। व्यवहार काल परम सूक्ष्म एक समय है, जो निश्चय काल-कालाणु द्रव्यकी पर्याय है। जैसे बाहीक या पंजाबीको देखनेसे पंजाबका निश्चय होता है, पंजाब न हो तो पंजाबका निवासी नहीं कहा जासक्ता। काल द्रव्य कालाणुरूपसे असंख्यात है, लोकाकाश प्रमाण प्रदेशोंमें भिन्न २ रत्नोंकी राशिके समान व्यापक है। क्योंकि एक कालाणुका प्रदेश दूसरे कालाणुके प्रदेशसे कभी मिलता नहीं है। इसलिये कालको काय रहित कहते हैं। शेष पांच द्रव्योंके प्रदेश एकसे अधिक हैं व परस्पर मिले हुए हैं इसलिये इन पांच द्रव्योंको पंचास्तिकाय कहते हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार अजीव पदार्थ स्पर्शादि गुणरहित होनेसे अमूर्तीक हैं, केवल पुद्गल द्रव्य मूर्तीक है, क्योंकि उनमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाया जाता है। पुद्गलके भेद सुनो:—

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इन चार मुख्य गुणोंके धारी पुद्गल द्रव्यको

पुद्गल इसलिये कहते हैं कि उसमें पूरण और गलन होता है। परमाणु मिलकर स्कंध बनते हैं, स्कंधसे छूटकर परमाणु बनते हैं तथा परमाणुओंमें भी पुरानी पर्यायका गलन व नई पर्यायका प्रकाश होता है। पुद्गलोंके मूल दो भेद हैं, परमाणु और स्कंध—परमाणुओंमें रूक्ष तथा स्निग्ध गुणके कारण परस्पर बंध होनेसे स्कंध बनते हैं। दो अंश अधिक चिकना या रूखा गुण होनेसे बंध होजाते हैं, जैसे १२ अंश चिकना परमाणु १४ अंश चिकने या रूक्षमें मिलजायगा या १९ अंश रूखा परमाणु १७ अंश रूखे या चिकने परमाणुमें मिल जायगा। जिसमें अधिक गुण होगा वह दूसरे परमाणुको अपने रूप कर लेगा। जघन्य अंशधारी चिकने व रूखे परमाणुका बन्ध नहीं होता है। स्कंधोंके अनेक भेद दो परमाणुओंके स्कंधसे लेकर महा स्कंध पर्यंत हैं। छाया, धूप, अंधेरा, प्रकाश आदिके स्कंध होते हैं।

पुद्गलोंके छः भेद किये गए हैं—१ सूक्ष्म सूक्ष्म, २ सूक्ष्म, ३ सूक्ष्म स्थूल, ४ स्थूल सूक्ष्म, ५ स्थूल, ६ स्थूल स्थूल। सूक्ष्म सूक्ष्म एक अविभागी पुद्गल परमाणु है जो देखनेमें नहीं आता। अनुमानसे ही जाना जाता है। सूक्ष्म पुद्गलोंका दृष्टांत कार्मणवर्गणा है, जिसमें अनंत परमाणुओंका संयोग है तौ भी वह इन्द्रियोंके गोचर नहीं है। चार इन्द्रियोंका विषय शब्द, स्पर्श, रस, गंध सूक्ष्म स्थूल हैं। ये चारों आंखसे नहीं दिखलाई पडते हैं। स्थूल सूक्ष्म पुद्गल छाया, प्रकाश, आतप आदि हैं, जो आंखसे दिखलाई पडते हैं परन्तु उनको न तो ग्रहण किया जा सक्ता है न उनका घात किया जा सक्ता है। वहनेवाले

द्रव्य जल आदि स्थूल हैं। पृथ्वी आदि मोटे स्कंध जो टुकड़े करने पर स्वयं नहीं मिल सक्के स्थूल स्थूल हैं।

आस्रव तत्व।

आस्रवके दो भेद हैं—भावास्रव और द्रव्यास्रव। कर्मके निमित्तसे होनेवाले जीवके अशुद्ध भावोंको भावास्रव कहते हैं। आगमानुसार भावास्रवके चार भेद हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय तथा योग। जीवादि तत्वोंका व सच्चे देव शास्त्र गुरुका श्रद्धान न होना मिथ्यात्व है। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रहमें वर्तन अविरति है। क्रोध, मान, माया, लोभके वश होना कषाय है। मन, वचन, कायके निमित्तसे आत्मामें चंचलता होना योग है। इन भावास्रवोंके निमित्तसे कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल कर्मरूप अवस्थाके होनेको प्राप्त होते हैं वह द्रव्यास्रव है।

बन्ध तत्व।

आस्रवपूर्वक बन्ध होता है अर्थात् कर्म बन्धके सम्मुख होकर बंधते हैं। इस बंधतत्वके भी दो भेद हैं—भावबन्ध और द्रव्यबन्ध। जिन अशुद्ध भावोंसे बन्ध होता है वह भावबन्ध है। कर्मवर्गणाका कार्मण शरीरके साथ बन्धजाना द्रव्यबन्ध है। बंधके चार भेद हैं—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूप स्वभाव पड़ना प्रकृतिबन्ध है। कितनी संख्या किस कर्मकी बंधी सो प्रदेशबंध है। कर्मोंमें कितनी मर्यादा पड़ी यह स्थितिबन्ध है। उन कर्मोंमें तीव्र व मंद फलदान

शक्ति पड़ना अनुभाग बंध है। चारों ही बंध एक साथ योग और कषायोंसे होते हैं।

संवर तत्व।

आस्रवके रोकनेको संवर कहते हैं। जिन शुद्ध भावोंसे कर्मोंका आना रुकता है वह भाव संवर है। कर्मोंके आस्रवका रुक जाना यह द्रव्य संवर है।

निर्जरा तत्व।

कर्मोंके आत्मासे अलग होनेको निर्जरा कहते हैं। निर्जराके दो भेद हैं—सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा। जो कर्म पककर अपने समयपर झड़ता है वह सविपाक निर्जरा है। जो कर्म पकनेके पहले शुद्ध भावोंसे दूर किया जाता है वह अविपाक निर्जरा है। यह निर्जरा संवरपूर्वक होती है व यही कार्यकारी है। तत्वज्ञानियोंने इस निर्जराके दो भेद कहे हैं—जिन शुद्ध भावोंसे कर्मकी निर्जरा होती है वह भाव निर्जरा है। उन शुद्ध भावोंके प्रभावसे कर्मोंका झड़ जाना द्रव्य निर्जरा है।

मोक्ष तत्व।

जीवका सब कर्मोंके क्षय होनेपर अशुद्धावस्थाको छोड़कर शुद्ध अवस्थाको प्राप्त होना मोक्ष है। मोक्ष पर्यायमें अनंत ज्ञान, अनंत आनंद आदि स्वभावोंका प्रकाश स्वतः होजाता है।

पुण्य पाप पदार्थ।

शुभ भावोंसे पुण्य कर्मका व अशुभ भावोंसे पाप कर्मका बंध

होता है। अहिंसादि व्रतोंके पालनेसे शुभ भाव होते हैं। हिंसादि पापोंसे अशुभ भाव होते हैं।

इस प्रकार श्री गौतमस्वामीने श्रेणिक महाराजको सात तत्वोंका वर्णन किया। इतने हीमें आकाशसे कोई तेजमई पदार्थ उतरता हुआ दिखलाई पड़ा। ऐसा झलकता था कि सूर्यका बिम्ब अपना दूसरा रूप बनाकर पृथ्वीतलपर वीतराग भगवानकी समवशरण लक्ष्मीके दर्शन करनेको आया हो।

विद्युन्माली देवका आना।

महाराजा श्रेणिक इस अकस्मात्को देखकर आश्चर्यमें भर गए। गौतमस्वामीसे पुनः पूछा कि यह क्या दिखलाई पड़ रहा है? ऐसा पूछनेपर गौतमस्वामी कहने लगे कि हे राजन्! यह महाऋद्धिका धारी विद्युन्माली नामका देव है, प्रसिद्ध है। अपनी चार महादेवियोंको लेकर धर्मके अनुरागसे श्री जिनेन्द्रकी वन्दना करनेके लिये शीघ्र २ चला आरहा है। यह भव्यात्मा आजसे सातवें दिन स्वर्गसे चयकर मानव जन्ममें आयगा। यह चरम शरीरी है, इसी मनुष्य भवसे मोक्ष जायगा।

श्रेणिकके प्रश्न।

गौतमस्वामीके वचन सुनकर राजा श्रेणिक भक्तिभारसे पूर्ण हो व परम प्रीतिपूर्वक तीन जगतके गुरु श्री जिनेन्द्र भगवानसे प्रार्थना करने लगे कि हे कृपानिधि स्वामी! आपने अपनी दिव्यध्वनिसे यह उपदेश किया था कि जब देवोंकी आयु छः मास शेष रह जाती

है तब उनके गलेमें पुष्पोंकी माला मुरझा जाती है, शरीरकी चमक मन्द पड़जाती है, उनके कल्प वृक्षोंकी ज्योति कम होजाती है, महाराज ! इस देवके मुखका तेज सब दिशाओंमें व्याप्त है। इसका शरीर बड़ा तेजस्वी है, यह प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है। यह बात बड़े आश्चर्यकी है। तब सिंहासन पर बिराजमान श्री जिनेन्द्ररूपी देवने राजा श्रेणिकके संशयरूपी अंधकारको दूर करते हुए गम्भीर वाणीसे यह प्रकाश किया कि हे राजन् ! इस देवका सर्व वृतान्त आश्चर्य-कारक है। इस देवकी कथाको सुननेसे धर्मप्रेमकी वृद्धि होगी व संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न होगा। तू चित्त लगाकर सुन।

भावदेव भवदेव ब्राह्मण।

इसी धनधान्य सुवर्णादिसे पूर्ण मगधदेशमें पूर्वकालमें एक वर्द्धमान नामका नगर था। वह नगर वन व उपवनोंकी पंक्तिसे व कोट खाई आदिसे शोभनीक था। विशाल कोटके चार विशाल द्वार थे। जहांकी महिलाएं भी सुन्दर थीं, वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत थीं। वहां ऐसे ब्राह्मण रहते थे जो वेद मार्गको जाननेवाले थे। पुण्यके व हितके लाभके लिये यज्ञमें हिंसा पशुवध करते थे। मिथ्यात्वके अंधकारसे कुमार्गगामी विप्र यज्ञोंमें गौ, हाथी, बकरादि यहां तक कि मानवकी भी बलि करते थे। उन्हींमें एक आर्यावसु नामका ब्राह्मण रहता था, जो वेदका ज्ञाता व अपने धर्म कर्ममें प्रवीण था। उसकी स्त्री सोमशर्मा बड़ी पतिव्रता सीताके समान साध्वी तथा पतिकी आज्ञानुकूल चलनेवाली थी। उस ब्राह्मणके दो पुत्र भावदेव, भवदेव

थे जो चंद्रमा व सूर्यके समान शोभते थे। धीरे २ दोनों पुत्रोंने विद्याभ्यास करके वेदशास्त्र, व्याकरण, वैद्यक, तर्क, छन्द, ज्योतिष, संगीत, काव्यालंकार आदि विषयोंमें प्रवीणता प्राप्त की। वे विद्या-रूपी समुद्रके पार पहुंच गए।

ये दोनों ब्राह्मण वाद-विवाद करनेमें बहुत प्रवीण थे, ज्ञान-विज्ञानमें चतुर थे। दोनो भाइयोंमें ऐसा प्रेम था, जैसा पुण्यके साथ सांसारिक सुखका प्रेम होता है। ये दोनो विना किसी उपद्रवके सुखसे बढ़कर कुमार वयको प्राप्त हुए। पूर्व पाप-कर्मके उदयसे उनके पिता महान व्याधिसे पीड़ित होगए। उसको कोढ़का रोग हो गया। शरीरभरमें कुष्टरोग फैल गया। कान, आंख, नाक गलने लगे, अंग उपङ्ग सड़ने लगे, तीव्र वेदनासे वह ब्राह्मण व्याकुल हो गया। यह प्राणी अज्ञानसे पापकर्म बांध लेता है। जब उस कर्मका फल दुःख होता है तब उसको सहना दुष्कर होजाता है। जो कोई स्वादिष्ट भोजनको अधिक मात्रामें खालेता है, जब वह भोजन पचता नहीं तब वह दुःखदाई होजाता है, ऐसा जानकर बुद्धि-मानको उचित है कि वह इन्द्रियोंके विषयोंको विषके समान कटुक फलदाई जानकर छोड़ दे और विकार रहित मोक्षपदके देनेवाले धर्मामृतका पान करे। कहा है:—

अज्ञानेनार्यंते कर्म तद्विपाको हि दुस्तरः।
स्वादु संभोज्यते पथ्यं तत्पाके दुःखवानिव॥ ८८॥
मत्वेति धीमता त्याज्या विषया विषसंनिभाः।
धर्मामृतं च पानीयं निर्विकारपदप्रदम्॥ ८९॥

वह ब्राह्मण महान दुःखी होकर अपना मरण नित्य चाहता था। मरण न होते हुए वह पतंगके समान अग्निकी चितापर पड़कर भस्म होगया। अपने पतिके वियोगसे शोकपीडित होकर सोमशर्मा ब्राह्मणी भी उसीकी चितामें भस्म होगई। मातापिता दोनोंके मरनेपर ये दोनो भावदेव व भवदेव अत्यंत दुःखी हुए—शोकके संतापसे तप्त होगए। करुणा उत्पादक शब्दोंसे विलाप करने लगे। उनके निजी बन्धुओंने समभावसे बहुत समझाया तब उन्होंने शोकको छोड़कर मातापिताकी मरणक्रिया की। जैसी ब्राह्मणोंकी रीति है उसके अनुसार तर्पण आदि क्रिया की। फिर शोकके वेगोंको दूर करके वे दोनों ब्राह्मण पहलेके समान अपने घरके कामोंमें लग गए।

बहुत दिनोंके पीछे उस नगरमें एक सौधर्म नामके मुनिराज पधारे, जो धर्मकी मूर्ति ही थे। जो बाहरी व भीतरी सर्व परिग्रहके त्यागी थे, जन्मके बालकके समान नग्न स्वरूपके धारी थे, मन, वचन, कायकी गुप्तिसे सज्जित थे, जैन शास्त्रोंके अर्थमें शंका रहित थे, परन्तु व्रतोंसे कभी च्युत न होजावें इस शंकाको रखते थे, सर्व प्राणी मात्रपर दयालु थे, तथापि कर्मोंके नाशमें दया रहित थे, मिथ्या एकांत मतके खण्डनमें स्याद्वाद बलके धारी थे, सूर्यके समान तेजस्वी थे, चंद्रमाके समान सर्वांग शांत थे, मेरू पर्वतके समान उन्नत व धीर थे। वे जैन साधु संसारकी दावानलसे तप्त प्राणियोंको मेघके समान शांतिदाता थे। भव्यरूपी चातकोंको धर्मोपदेशरूपी जलसे पोषनेवाले थे, आलस्य रहित थे, इंद्रियोंके जीतनेवाले थे, ज्ञान विज्ञानसे पूर्ण थे,

गुणोंके सागर थे, वीतराग थे, गणके नायक थे, शत्रु मित्र, जीवन मरणमें समान भावधारी थे। लाभ अलाभमें व मान अपमानमें विकार रहित थे, रत्नत्रय धारी थे, धीर थे, तप रूपी अलंकारसे भूषित थे, संयम पालनेमें निरन्तर सावधान थे, वैराग्यवान होनेपर भी प्रायः करुणा रससे पूर्ण होजाते थे। ऐसे मुनिराज आठ मुनियोंके संघ सहित वनमें विराजमान हुए। कहा है—

सर्वसंगविमुक्तात्मा बाह्याभ्यंतरभेदतः।
यथाजातस्वरूपोऽपि सज्जो गुप्तश्च गुप्तिभिः ॥ ९६ ॥
स्याद्वादी कुमतध्वान्ते तेजस्वी भानुमानिव।
सौम्यः शशीव सर्वांगे धीरो मेरुरिवोन्नतः ॥ ९८ ॥

(नोट—जैन साधुका ऐसा स्वरूप होना चाहिये।)

अवसर पाकर मुनिराजने दयामई जैन धर्मका उपदेश देना आरम्भ किया।

मुनिराजका धर्मोपदेश।

हे भव्यजीवो! तुम सब श्रवण करो, यह धर्म उत्तम है। स्वर्ग तथा मोक्षका बीज है, शुभ है व तीन लोकके प्राणियोंका रक्षक है।

इस संसारमें सर्व ही प्राणी यहांतक कि स्वर्गके देव भी सब अपनेर कर्मोंके उदयके वश हैं। उनको रंच मात्र भी सुख नहीं है। तो भी मोहके माहात्म्यसे यह मूढ़ संसारी प्राणी ज्ञानके लोचनको बन्द किये हुए इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होकर सुख मान रहा है। यह शरीर अनित्य है, पुत्र-पौत्र आदि नाशवन्त हैं, संपदा,

घर, स्त्री आदि सब छूट जानेवाले हैं। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी इन सब अनित्य पदार्थोंमें नित्यपनेकी बुद्धि करता है। चाहता है कि ये सदा बना रहे। अपनेको सुख मिलेगा, इस आशासे दुःखोंके मूल कारण इन विषयभोगोंमें रमण करता है। जब विषयभोगोंका वियोग होजाता है तब दुःखोंसे पीड़ित होकर पशुके समान कष्ट भोगता है।

क्षणभरमें कामी होजाता है, क्षणभरमें लोभी होजाता है, क्षणभरमें तृष्णासे पीडित होता है, क्षणमें भोगी बन जाता है, क्षणभरमें रोगी होजाता है, भूतपीडित प्राणीकी तरह व्यवहार करता है। कहा है—

क्षणं कामी क्षणं लोभी क्षणं तृष्णापरायणः।
क्षणं भोगी क्षणं रोगी भूताविष्ट इवाचरेत् ॥ १०९ ॥

यह अज्ञानी मोही प्राणी वारवार रागद्वेषमई होकर ऐसे कर्म बांधता है जिनका छूटना कठिन है। इसलिये वारवार दुर्गतिमें जाता है। कभी अत्यन्त पापकर्मके उदयसे नारकी होकर असहनीय ताडनमारणादि दुःखोंको सागरोंतक सहता है।

कभी तिर्यंच गतिमें जन्म लेकर या मनुष्यगतिमें नीच कुलमें जन्म लेकर हजारों प्रकारके दुःखोंसे पीडित होता हुआ इस संसारमें भ्रमण किया करता है। चार गतियोंमें भ्रमण करते हुए इस जीवको अनंतकाल होगया। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई धर्मको न पाकर इसे कभी थिरता नहीं मिली। इसलिये जो कोई प्राणी सुखका अर्थी है उसको अवश्य ही जिनेन्द्र कथित धर्मका संग्रह सदा करना चाहिये।

भावदेव मुनिदीक्षा।

इसप्रकार मुनिमहाराजके शांतिगर्भित अनुपम वचनोंको सुनकर भावदेव ब्राह्मणका हृदय कंपित होगया, संसार भ्रमणसे भयभीत होगया, मनमें वैराग्य पैदा होगया। हाथ जोडकर सौधर्म मुनिराजसे प्रार्थना करने लगा कि हे स्वामी! मैं संसार-समुद्रमें डूब रहा हूं, मेरी रक्षा कीजिये, जिससे मैं अविनाशी आत्मीक सुखको प्राप्त कर सकूं। कृपा करके मुझे पवित्र जैन साधुकी दीक्षा दीजिये। यह दीक्षा सर्वपरिग्रहके त्यागसे होती है तथा यही संसारका छेद करनेवाली है ऐसा मुझे निश्चय होगया है। भावदेवके ऐसे शांत वचन सुनकर सौधर्म मुनिराजने उसको संतोषप्रद वचन कहे-हे ब्रह्म! यदि तू वास्तवमें संसारके भोगोंको रोगके समान जानकर वैराग्यवान हुआ है तो तू इस जिनदीक्षाको धारण कर। जो जीव संसारमें रागी हैं वे इसे धारण नहीं कर सक्ते। गुरुमहाराजके उपदेशसे शुद्ध बुद्धि-धारी भावदेवको बहुत धैर्य प्राप्त हुआ। वह ब्राह्मणोत्तम सब शल्य त्यागकर मुनिदीक्षामें दीक्षित होगया।

फिर वे सौधर्म योगीराज अपने संयमकी विराधना न करते हुए पृथ्वीतल पर विहार करने लगे। वे मुनिराज गुणोंमें महान थे। ऐसे गुरुके साथ साथ भावदेव मुनि पापरहित भावसे घोर तप करने लगा। दुःख तथा सुखमें समान भाव रखता था। एकाग्र भावसे कभी ध्यान कभी स्वाध्यायमें निरंतर लगा रहता था। विनयवान होकर ब्रह्म भावको उत्पन्न करनेवाले शब्द ब्रह्ममई तत्वका अभ्यास

करता था। अर्थात् ॐ, सोहम् आदि मंत्रोंसे निजात्माके स्वरूपको ध्याता था। कहा है—

स्वाध्यायध्यानमैकाग्र्यं ध्यायन्निह निरंतरम्।
शब्दब्रह्ममयं तत्त्वमभ्यसन् विनयानतः॥ १२४॥

वह भावदेव मनमें ऐसा समझता था कि मैं धन्य हूं, कृतार्थ हूं, बड़ा बुद्धिशाली हूं, अवश्य भवसागरसे तिरनेवाला हूं जो मैंने इस उत्तम जैन धर्मका लाभ प्राप्त किया है।

बहुत काल विहार करते हुए वे सौधर्म मुनिराज एक दफे भावदेवके साथ उसी वर्द्धमानपुरमें पधारे। उससमय विशुद्ध बुद्धिधारी भावदेवने अपने छोटे भाई भवदेवको याद किया। भवदेव ब्राह्मण इस नगरमें प्रसिद्ध था, परन्तु संसारके विषयोंमें अंधा था, एकांत मतके शास्त्रोंमें अनुरागी था, अपने यथार्थ आत्महितको नहीं जानता था। भावदेवके भावोंमें करुणाने घर किया और यह संकल्प किया कि मैं स्वयं उसको जाकर सम्बोधूं तो उसका कल्याण होगा। परम वैराग्यवान होनेपर भी परहितकी कांक्षासे उसके घर स्वयं जानेका मनोरथ कर लिया।

मैं उसको अर्हत् धर्मका उपदेश करूं। किसी तरह भी यदि वह समझ आयगा तो वह अवश्य संसारके भोगोंसे विरक्त होकर मुनि हो जायगा ऐसा अपने मनमें विचार कर भावदेव अपने गुरुके पास आज्ञा मांगनेके लिये गए और कहा—हे महाराज! मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं जाकर अपने छोटे भाईको संबोधन करूं,

आपके प्रसादसे मेरे भावमें यह करुणा पैदा हुई है। इस प्रकार अपने गुरुको प्रसन्न करके व आज्ञा लेकर तथा वारंवार नमस्कार करके भावदेव मुनि शुद्ध भावसे ईर्या समिति पालते हुए-भूमिको निरख कर चलते हुए भवदेवके सुन्दर घरमें पधारे। भवदेवके घरमें आकर वहींकी अवस्था देखकर आश्चर्यमें भर गए। क्या देखते हैं कि तोरणोंमें शोभित मंडप छाया हुआ है, मंगलमई बाजोंके शब्द होरहे हैं जिनके शब्दोंसे दिशा चूर्ण होती है। युवती स्त्रियां मंगलगान कररही हैं, बंदीजन वेद—वाक्योंसे स्तुति पढ़ रहे हैं। चित्रोंसे लिखित ध्वजा हिल रही हैं। सुगंधित कुंद आदि फूलोंकी मालाएं लटक रही हैं। कर्पूरसे मिश्रित श्रीखंडसे रचना बनी हुई है। ऐसा देखकर भी दयालु मुनिराज भावदेव उसके घरके आंगणमें शीघ्र ही जाकर खड़े होगए। मुनिराजको देखकर भवदेव उसी समय स्वागतके लिये उठा, नतमस्तक हुआ, उच्च आसनपर विराजमान किया, वार वार नमस्कार किया और भावदेव मुनिके निकट विनयसे बैठगया।

भवदेव संबोधन व जैनधर्म ग्रहण।

योगीमहाराजने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया। व उसको संतोषित किया। तब भवदेवने पूछा—हे भ्रात! आपके संयममें, तपमें, एकाग्र चिन्तवन ध्यानमें, स्वात्मजनित ज्ञानमें कुशल हैं? महान बुद्धिमति मुनिने समभावसे कहा कि वत्स! हमें सब समाधान है। हमें यह तो बताओ कि इस घरमें क्या हुआ था, क्या होरहा है, व क्या होनेवाला है? हे भ्राता! तेरे घरमें मण्डपका आरम्भ

दिखाई पड़ता है, तेरा सौम्य शरीर परम सुन्दर व भूषणोंसे अलंकृत है। तेरे हाथमें कंकण बन्धा है, तेरे यहां कोई उत्सव दिखाई पड़ता है। गुरुमहाराजके इस वाक्योंको सुनकर भवदेवने मुख नीचा कर लिया। कुछ मुसकराते हुए व लज्जासे डगमगाते हुए वचनोंसे कहा- —

हे स्वामी! इस नगरमें दुर्मिषण नामका ब्राह्मण रहता है उसकी नागश्री नामकी स्त्री है। वह कुलवान व शीलवान है। उनकी नागश्री नामकी पुत्री है। बन्धुजनोंकी आज्ञासे उसके साथ आज मेरा विवाह वेदवाक्योंके साथ हुआ है। अपने छोटे भाईकी इस उचित वाणीको सुनकर मुनिराज बोले—हे भ्राता! इस जगतमें धर्मके प्रतापसे कोई बात दुर्लभ नहीं है। धर्मसे ही इन्द्रपद, सर्वसंपदासे पूर्ण चक्रवर्तीपद, नारायण व प्रतिनारायणपद व राजाका पद प्राप्त होता है। धर्मका लक्षण सर्व प्राणियोंपर दया भाव है अर्थात अहिंसा लक्षण धर्म है, वही धर्म यती तथा गृहस्थके भेदसे दो प्रकार हैं। तथा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र मय रत्नत्रयके भेदसे तीन प्रकार हैं ऐसा जिनेन्द्रने उपदेश किया है। कहा है—

सर्वप्राणिदयालक्ष्मो गृहस्थशमिनोर्द्विधा।

रत्नत्रयमयो धर्मः स त्रिधा जिनदेशितः ॥१५१॥

मनुष्य जन्म बहुत कठिनतासे प्राप्त होता है। ऐसे नर जन्मको पाकर जो कोई धर्मका आचरण नहीं करता है उसका जन्म

पुछा जाता है, ऐसा मैं मानता हूं। इत्यादि मुनिरूपी समुद्रसे धर्मामृतसे पूर्ण पवित्र वचनोंके रसको पीकर भवदेव बहुत संतुष्ट हुआ और उन्होंने भावपूर्वक श्रावकके व्रत ग्रहण कर लिये।

भवदेवका आहारदान।

व्रतोंको ग्रहणकर उसी समय मुनिराजसे प्रार्थना की कि स्वामी! आज मेरे घरमें कृपाकर आप भोजन स्वीकार करें। धर्मके अनुरागसे पूर्ण अपने छोटे भाईके वचन सुनकर मुनिमहाराजने दोषरहित शुद्ध आहार ग्रहण किया। कहा है—

पीत्वा वाक्यामृतं पूतं प्राप्तं मुनिमहोदधेः।
भवदेवो व्रतान्युच्चैः श्रावकस्याग्रहीत्तदा ॥ १५३ ॥
संगृहीतव्रतेनाशु विज्ञप्तो मुनिनायकः।
स्वामिन्नत्र गृहे मेऽद्य त्वया भोज्यं कृपापर ॥ १५४ ॥
विज्ञप्तेरनुजस्यैव भ्रातृधर्मानुरागतः।
मुनिः स शुद्धमाहारं निःसावद्यं जघास सः ॥१५५॥

(नोट-इन वाक्योंसे मुनिराजकी उदारता व सरलता व सज्जनता व निरभिमानता प्रगट होती है। एक यज्ञकी हिंसाका माननेवाला ब्राह्मण जब हिंसाको त्यागकर श्रावकके अहिंसादि बारह व्रतोंको स्वीकार करलेता है तब उसी क्षण वह श्रद्धावान श्रावक माना जाने लगा। उसके हाथका आहार उसी दिन लेना मुनिने अनुचित नहीं समझा। उसको आहारकी विधि सब बतादी थी। यद्यपि उसकी प्रार्थना एक निमंत्रण रूपमें थी। जैन मुनि निमंत्रण नहीं मानते

हैं इस अतीचारका ध्यान उससमय मुनिराजने उसके धर्मानुरागके महत्वको देखकर नहीं किया। यह उनका भाव था कि किसी प्रकार यह मोक्षमार्ग पर दृढतासे आरूढ़ होजावे। यद्यपि मुनिने आहार अवश्य नवधाभक्तिसे लिया होगा। जब भोजनका समय होगा तब उस श्रावकने अतिथि संविभाग व्रतके अनुसार ही आहारदान दिया होगा। यदि वह स्वीकार नहीं करते तो उसका मन मुरझा जाता व धर्मप्रेम कम होनेकी भी संभावना थी। इत्यादि बातोंको विचार कर परम उदार, जिन धर्मके ज्ञाता, द्रव्य, क्षेत्र, काल भावको विचारनेवाले मुनिराजने उसके हाथका उसी दिन आहारदान लेना उचित समझा। किंचित् अतिचार पर ध्यान नहीं दिया। उसके सुधारका भाव अतिशय उनके परिणाममें था।)

आहारके पश्चात् भावदेव मुनिराज अपने गुरु सौधर्मके पास, जो अनेक मुनिसंघ सहित वनमें तिष्ठे थे, ईर्यापथ सोधते हुए चलने लगे तब नगरके कुछ लोग मुनिकी अनुमति बिना ही विनय करनेकी पद्धतिसे मुनिराजके पीछे चलने लगे। वे लोग कितनी दूरतक गए फिर अपने प्रयोजनके वशसे मुनिको नमस्कार करके अपने २ घर लौट आए।

भवदेव छोटा भाई भी मुनिके साथ पीछे २ गया था। वह भोला यह विचारने लगा कि जब मुनि आज्ञा देंगे कि तुम जाओ तब मैं लौटूंगा। इसी प्रतीक्षासे अपने गौरववश पीछे २ चला गया। मुनि महाराजने ऐसे वचन नहीं कहे न वह कह सक्ते थे;

क्योंकि ये वचन अहिंसा व्रतके घातक थे, वे मुनि धर्म—नाशसे भय-भीत थे व संयमादिकी भलेप्रकार सदा रक्षा करते थे। इस तरह चलते चलते वह बहुत दूर चला गया। यद्यपि भवदेव मोक्षका प्रेमी होगया था तो भी उसके कंकणकी गांठ थी। उसका चित्त व्याकुलित होने लगा। वह बारबार अपने मनमें नवीन वधू नागवसूके मुखकमलको याद करता था। उसका पग मूर्छित मानवकी तरह लड़खड़ाता हुआ पड़ता था। घर लौटनेकी इच्छासे कुछ उपाय विचार कर वह भवदेव अपने भाई भावदेवसे किसी बहानेसे बारबार कहने लगा कि—हे स्वामी! यह वृक्ष हमारे नगरसे दो कोस दूर है आप स्मरण करें, यहां आप और हम प्रतिदिन क्रीड़ा करनेको आते थे व बैठते थे। महाराज! यह देखिये। कमलोंसे शोभित सरोवर है। यहां हम दोनों मोरकी ध्वनि सुननेको बैठते थे। स्वामी देखिये, यह नाना वृक्षोंसे संगठित लगाया हुआ बाग है जहां हम दोनों बड़े भावसे पुष्प चुननेको आया करते थे।

कृपानाथ! यह वह चांदनीके समान उज्वल स्थान है जहां हम सब गेंद खेला करते थे। (नोट—गेंद खेलनेका रिवाज पुरातन है)। इसतरह बहुतसे वाक्योंसे भवदेवने अपना अभिप्राय कहा परन्तु भव-देव श्री मुनिराजके मनको जरा भी मोहित न करसका। मुनिराज मौनसे जारहे थे—न वचनसे हुंकार शब्द कहते थे न भुजाका संकेत करते थे। चलते चलते दोनों भाई श्री गुरुमहाराजके निकट पहुंच

गए। वे दोनों वृषभोंके समान धर्मरूपी रथकी धुराको चलानेवाले थे (भावार्थ–दोनों मोक्षगामी आत्मा थे) तब सब मुनियोंने भावदेव मुनिको कहा–हे महाभाग! तुम धन्य हो जो अपने भाईको यहां इससमय लेआए हो।

भावदेव मुनि भक्तिपूर्वक सौधर्म गुरुको नमस्कार करके अपने योग्य स्थानपर बैठ गए।

वहांके शांत वातावरणको देखकर भवदेव अपने मनमें विचारने लगा कि मैंने नवीन विवाह किया है। मैं यहां संयम धारण करूं या लौटकर घरको जाऊँ? सूझ नहीं पड़ता है क्या करूं? चित्तमें व्याकुल होने लगा, संशयके हिंडोलेमें झूलने लगा। अपने मनको क्षणभर भी स्थिर न कर सका। कभी यह सोचता था कि नवीन वधूके साथ घर जाकर दुर्लभ इच्छित भोग भोगूं। मेरे मनमें लज्जा है, इस बातको मैं कह नहीं सक्ता, तथा यह मुनीश्वरोंका पद बहुत दुर्द्धर है। कामरूपी सर्पसे मैं डसा हुआ हूं। मेरे ऐसा दीन पुरुष इस महान पदको कैसे धारण कर सकेगा? तथा यदि मैं गुरु वाक्यका अमादा करके दीक्षा धारण न करूं तो मेरे बड़े भाईको बहुत लज्जा आयगी। इस तरह दोनों पक्षकी बातोंको विचार कर शल्यवान होकर यह सोचने लगा कि दोनों बातोंमें कौनसी बात करने योग्य है, कौनसी करने योग्य नहीं है, यही स्थिर किया कि इस समय तो मुझे जिन दीक्षा लेना ही चाहिये, फिर कभी अवसर होगा तो मैं अपने घर लौट आऊंगा।

भवदेवको मुनिदीक्षा।

इस तरह कपट सहित वह भवदेव नतमस्तक होकर मुनि महाराजको कहने लगा कि—स्वामी! कृपा करके मुझे अर्हंत दीक्षा प्रदान कीजिये। मुनिराजने अवधि ज्ञानरूपी नेत्रसे यह जान लिया कि यह ब्राह्मण अपने मनके भीतरी अभिप्रायको छिपा रहा है। भोगोंकी अभिलाषा रखते हुए भी दीक्षा लेना चाहता है, यह भी जाना कि यह भविष्यमें वैरागी हो जायगा ऐसा समझकर महामुनिने मुनिदीक्षा प्रदान करदी। भवदेवने सर्वके समक्ष निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण करली तौ भी उसका मन कामकी अग्निरूपी शल्यसे रहित नहीं हुआ। उसके मनमें यह बात खटकती रही कि मैं कब उस तरुणी, चंद्रमुखी, मृगनयनी अपनी भार्याको देखूं जो मेरेपर मोहित है व मेरे विना दुःखी होगी, मेरा स्मरण भले प्रकार करती होगी, मेरे विना उसका चित्त सदा व्याकुल रहेगा। ऐसा मनमें चिंतवन करता रहता था तौ भी बराबर ध्यान, स्वाध्याय, ज्ञान, तप व व्रतमें लगा रहता था।

भवदेवका पत्नी प्रति गमन।

बहुत काल पीछे एक दिन संघसहित सौधर्म गणी विहार करते हुए फिर उस वर्द्धमान नगरमें पधारे। सर्व ही संयमी मुनि नगरके बाहर उपवनके एकांत स्थानमें ठहर गए। जब अनेक मुनि शुद्धात्माके ध्यानकी सिद्धिके लिये कायोत्सर्ग तप कर रहे थे तब भवदेव मुनि पारणा करनेके छलसे नगरकी तरफ चला। उसका चित्त इस

भावदेव प्रमाद रहित हो तप करते थे। कुछ काल पीछे भावदेव उसी नगरमें गए और धर्मानुरागसे छोटे भाईके समझानेको उसके घर गए। धर्मोपदेश देकर उसे गुरुके पास ले आए।

भवदेवने शुद्ध–बुद्धि होनेपर भी शल्यसहित लज्जासे गुरुके पास दीक्षा लेली। जब किसी कारणसे उसकी शल्य दूर होगई। तब वह मुनिराजके साथ २ चारित्रको पालता हुआ चारित्रका भंडार होगया। भावदेव भवदेव दोनों मुनिचारित्रको पालते हुए, अंतमें समाधिमरणपूर्वक प्राण त्याग कर तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें देव हुए। वहां उपपाद शय्यामें अंतर्मुहूर्तमें पूर्णयौवनवान होकर उठे और सात-सागरपर्यंत मनोहर भोगोंको विना किसी विघ्न बाधाके भोगते रहे। आयुके अंतमें भावदेवके जीव तुम सो वज्रदंत राजाके घरमें सागरचंद्र पैदा हुए। और भवदेवका जीव चक्रवर्तीके घरमें शिवकुमार नामका पुत्र हुआ है जो सूर्यके समान तेजस्वी है। तुम्हारे दर्शन मात्रसे उसको अपने पूर्वभवका स्मरण होजायगा और वह संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होजायगा।

इसतरह कुमारने मुनिराजसे अपने पूर्वभव सुने। संसारको असार जानकर अपना मन धर्मसाधनमें तत्पर कर दिया। वह विचारने लगा कि इस जगतमें सर्व ही प्राणी जन्म, मरण, जराके स्थान हैं। इस जगतके भोगोंमें कुछ सार नहीं है, सार यदि कुछ है तो वह मुक्तिके सुखको देनेवाला दयामई जैनधर्म है। उसी धर्मकी सेवासे इन्द्रियोंके व कषायोंके मदको दमन किया जासक्ता है। जो कोई

आत्मीक सुखको चाहता है उसे इसी जैन धर्मका सेवन करना चाहिये । कहा है—

सारोऽस्त्यत्र दयाधर्मो जैनो मुक्तिसुखप्रदः ।
स चेन्द्रियकषायाणां दुर्मदे दमनक्षमः ॥ ९५ ॥

सागरचन्द्रका मुनि होना ।

इस तरह विद्वान सागरचन्द्रने विचार कर श्री मुनिराजके पास जिनेन्द्रकी मुनि दीक्षा धारकी । यह सुख दुःखमें, शत्रु मित्रमें, महल मशानमें, जीवन मरणमें समभावका धारी होगया । परम शांत होगया । बाह्य और अभ्यन्तर बारह प्रकारका तप बड़े यत्नसे करने लगा । परीषह व उपसर्गोंके पड़नेपर भी अपने मनको समाधिसे चंचल न कर सका । ध्यानमें स्थिर रहा । तपके साधनसे उसको चारण ऋद्धि सिद्धि होगई, वह श्रुतकेवली होगया । एक दफे विहार करते हुए वे सागरचन्द्र मुनि वीतशोकापुरीमें पधारे ।

मध्याह्न कालमें (अर्थात् ९ से ११ के मध्य) ईर्यापथकी शुद्धिसे वह नगरमें विधिपूर्वक विनयसे पारणाके लिये गए । राजमहलके निकट किसी सेठका घर था । उस सेठने शुद्ध भावोंसे आहार दिया । मुनिराजने नवकोटि शुद्ध ग्रासको शांतिपूर्वक ग्रहण किया । मन वचन कायसे कृत कारित अनुमोदना रहितको नवकोटि शुद्ध कहते हैं ।

मुनिराज ऋद्धिधारी थे । मुनिदानके महात्म्यसे दातारके पवित्र घरके आंगणमें आकाशसे रत्नोंकी वृष्टि हुई । इस बातको देखकर

वहांके सर्व जन परस्पर बातें करने लगे। यह क्या हुआ, सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। परस्पर वादविवाद करनेपर बड़ा कोलाहल हुआ। शिवकुमारने अपने महलमें सब वृत्तान्त सुना। वह महलके ऊपर आया और आनन्दसे कौतुकपूर्वक देखने लगा। मुनिराजका दर्शन करके चित्तमें आश्चर्यपूर्वक विचारने लगा। अहो! मैंने किसी भवमें इन मुनिराजका दर्शन किया है। पूर्व जन्मके संस्कारसे मेरे मनमें स्नेह भर गया है और बड़ा ही आल्हाद होरहा है। इसलिये मैं जाऊं और अपना संशय मिटानेके लिये मुनिराजसे प्रश्न करूँ।

शिवकुमारको जाति स्मरण।

ऐसा विचारता ही था कि इतनेमें उसको पूर्वजन्मका स्मरण होगया। उसी समय पूर्वजन्मका सब वृत्तान्त जानकर उसने यह निश्चय कर लिया कि यह मेरे पूर्वभवके बड़े भाई हैं। आप यह तपस्वी महामुनि हैं। इन्होंने ही कृपा करके मुझे धर्ममें स्थापित किया था। उस धर्मके साधनसे पुण्य बांधकर पुण्यके उदयसे मैं परम्परा सुखको पाता रहा हूं। मैंने तीसरे स्वर्गमें देव होकर महान भोग भोगे और अब सर्व सम्पदासे पूर्ण चक्रवर्तीके घरमें जन्मा हूं। यह मेरा सच्चा भाई है, इस लोक पर लोकका सुधारनेवाला है। इस तरह बुद्धिमान शिवकुमारने पूर्वभवका सर्व वृत्तान्त स्मरण किया और उसी क्षणमें मुनिराजके निकट आगया। मुनिवरको देखकर शिवकुमारकी आंखोंमें प्रेमसे आंसू निकल आए। जैसे वह मुनिराजके पास गया, प्रेमके उत्साहके वेगसे वह मूर्छित होगया।

चक्रवर्तीने जब यह सुना कि शिवकुमारको मूर्छा आगई है

तब वह उसी क्षण आया और मोहसे आंसू भरकर रोने लगा। और यह कहने लगा—हे पुत्र! तूने यह अपनी क्या व्यवस्था की है। इसका क्या कारण है? शीघ्र भयहारी वचन कह! क्या अपनी स्त्रीके स्नेहसे आतुर हो लताके समान श्वास ले लेकर कांप रहा है। क्या किसी स्त्रीका नवीन अवलोकन किया है, जिसके संगमके लिये रुदन कर रहा है? क्या तुझे तरुणावस्थामें कामभावकी तीव्रता होगई है, जिससे आतुर हो जल रहा है? क्या किसी स्त्रीके वचनोंको व उसके गुणोंको स्मरण कर रहा है! इतनेमें सर्व नगरके मनुष्य आगए। देखकर व्याकुलचित्त होगए। दुःसह शोक पृथ्वीपर छागया। सबने अन्न पानी त्याग दिया। ठीक है, पुण्यवान पदार्थको कोई हानि पहुं-चती है तो सबको उद्वेग होजाता है।

फिर किसी उपायसे चेतनता आगई, मूर्छा टल गई। कुमार प्रातःकालके सूर्यके समान जागृत होगया। सर्व लोग पूछने लगे—हे कुमार! मूर्छा आनेका क्या कारण है? शीघ्र ही यथार्थ कह जिससे सबको सुख हो, चिंता मिटे। तब शिवकुमारने मंत्रीके पुत्र दृढ़रथको जो उसका मित्र था, एकांतमें बुलाकर अपने मनका सब हाल वर्णन कर दिया। ठीक है, चिंतारूपी गूढ़ रोगसे दुःखी जीवोंके लिये मित्र बड़ी भारी औषधि है, क्योंकि मित्रके पास योग्य व अयोग्य सर्व ही कह दिया जाता है। कहा है:—

चिंतागूढ़गदार्तानां मित्रं स्यात्परमौषधम्।
यतो युक्तमयुक्तं वा सर्वं तत्र निवेद्यते॥ १९५॥

शिवकुमारने मित्रसे अपना गूढ़ हाल कह दिया कि हे मित्र ! मैं संसारके भोगोंसे भयभीत हुआ हूं। मैं नाना योनियोंके आवर्तोंसे भरे हुए महा भयानक इस दुस्तर संसार समुद्रसे पार होना चाहता हूं। उसके अभिप्रायको जानकर दृढ़धर्मने चक्रवर्तीको सर्व वृत्तांत कह दिया कि महाराज ! शिवकुमार तप करना चाहता है।

शिवकुमारको वैराग्य।

हे महाराज ! यह निकट भव्य है, शुद्ध सम्यग्दृष्टी है, यह राज्यसम्पदाको अपने मनमें तृणके समान गिनता है, यह आज बिलकुल विरक्त चित्त है, सर्व भोगोंसे यह उदासीन है, इसका जरा भी मोह न धनमें है न जीवनमें है। यह अपने आत्माके स्वरूपका ज्ञाता है, तत्वज्ञानी है, विद्वानोंमें श्रेष्ठ है। यह जैन यतिके समान सर्व त्यागने योग्य व ग्रहण करने योग्यको जानता है। इसका मन मेरु पर्वतके समान निश्चल है, यह परम दृढ़ है। किसीकी शक्ति नहीं है जो रागरूपी पवनसे इसके मनको डिगा सके। इसको इस समय पूर्व जन्मके संस्कारसे वैराग्य होगया है। इसका भाव सर्व जीवोंकी तरफ रागद्वेष शल्यसे रहित सम है, यह संशय रहित जिनदीक्षा लेना चाहता है।

चक्रवर्ती इन कठोर वज्रके घातके समान वचनोंको सुनकर चित्तमें अतिशय व्याकुल होगया। इसका मोहित हृदय विंध गया। आंखोंमेंसे बलपूर्वक आंसुओंकी धारा बह निकली। गद्गद् वचनोंको दीन भावसे कहता हुआ रुदन करने लगा। मेरा बड़ा दुर्भाग्य है !

मैंने विचार कुछ किया था, दैवके उदयसे कुछ और ही होरहा है। जैसे कमलके बीचमें सुगंधकी इच्छासे बैठा हुआ भ्रमर हाथीद्वारा कमल मुखमें लेनेपर प्राण खो बैठता है। वह कहने लगा कि—हे पुत्र! तुझको यह शिक्षा किसने दी है? तेरी यह बुद्धि विचारपूर्ण नहीं है। कहां तेरी बाल अवस्था व कहां यह महान् मुनिपदकी दीक्षा? यह कार्य असंभव है, कभी नहीं होसक्ता है। इसलिये हे पुत्र! इस साम्राज्यको ग्रहण करो जिसमें सर्व राजा सदा नमन करते हैं। देवोंको भी दुर्लभ महाभोगोंको भोगो!

शिवकुमारका उपदेश।

इत्यादि पिताके वचनोंको सुनकर उसने घरमें रहना स्वीकार किया तथा कोमल वाणीसे कहने लगा—हे तात! इस संसाररूपी वनमें प्राणी कर्मोंके उदयसे चारों गतियोंमें भ्रमण करते रहते हैं। कहीं भी निश्चल नहीं रह सक्ते। कभी यह जीव नारकी होता है। फिर कभी पशु होजाता है फिर मनुष्य होजाता है। कभी आयुके क्षयसे मरके देव होता है। इसी तरह देवसे नर व तिर्यंच होता है। हे तात! न कोई किसीका पुत्र है न कोई किसीका पिता है। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उठती व बैठती हैं वैसे इस संसारमें प्राणी जन्मते व मरते हैं।

हे पिता! यह लक्ष्मी भी उत्तम वस्तु नहीं है। महा पुरुषोंने भोग करके इसे चंचला जान छोड़ दी है। यह लक्ष्मी वेश्याके समान चंचल है। एकको छोड़कर दूसरेके पास चली जाती है। इस लक्ष्मीका

विश्वास क्षण मात्र भी नहीं करना चाहिये। यह ठगनीके समान फसानेवाली है, व अनेक दुःखोंमें पटकनेवाली है। इन्द्रियोंके भोग सर्पके रमण समान शीघ्र ही प्राणोंके हरनेवाले हैं। यह जवानी जिसे भोगोंको भोगनेका स्थान माना जाता है, स्वप्नके समान या इन्द्रजालके समान विला जाती है, ऐसा प्रत्यक्ष भी दिखता है। तथा भूतकालके ज्ञानका स्मरण भी इसे देखकर होता है। यदि यह राज्यलक्ष्मी उत्तम थी तो महान ऋषियोंने क्यों इसका त्याग किया! पूर्वकालका चरित्र सुनाई पडता है कि पहले बड़े बड़े ज्ञानी श्रीमान् ऐश्वर्यवान होगए हैं, उन्होंने सर्व परिग्रह व राज्यको त्यागकर मोक्षके लिये तप स्वीकार किया था। हे तात! ये भोग भोगने योग्य नहीं हैं। ये वर्तमानमें मधुर दीखते हैं, परन्तु इनका फल या विपाक कडुवा है। इन भोगोंसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।

धर्म वही है जहां अधर्म न हो, पद वही है जिसमें कोई आपत्ति न हो। ज्ञान वही है जहां फिर कोई अज्ञान न हो। सुख वही है जहां कोई दुःख न हो।

भावार्थ—वीतराग विज्ञान धर्म है, मोक्षपद ही उत्तम पद है, केवल ज्ञान ही श्रेष्ठ ज्ञान है, अतीन्द्रिय आत्मीक सुख ही सुख है। कहा है—

स धर्मो यत्र नाधर्मस्तत्पदं यत्र नापदः।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं तत्सुखं यत्र नासुखम्॥ १५१॥

बुद्धिमान् चक्रवर्ती इस तरह बोधमद पुत्रके वचनोंको सुनकर

पुत्रके मनकी बातको ठीक ठीक जान गया। उसको निश्चय होगया कि यह मेरा पुत्र संसारसे भयभीत है, वैराग्यसे पूर्ण है, यह अपना आत्महित चाहता है, यह अवश्य उग्र तप ग्रहण कर मोक्षको प्राप्त करेगा, ऐसा जानकर भी मोहके उदयसे चक्रवर्ती कहने लगा—हे पुत्र! जैसी तुम्हारी दया सर्व प्राणियों पर है वैसी दया मुझपर भी करो। सौम्य! एक बुद्धिमानीकी बात यह है कि जिससे तुम्हें तपकी सिद्धि हो और मैं तुम्हें देखता भी रहूं इसलिये हे पुत्र! घरमें रहकर इच्छानुसार कठिन २ तप व्रत आदि अपनी शक्तिके अनुसार साधन करो।

शिवकुमार घरमें ब्रह्मचारी।

हे पुत्र! यदि मनमें रागद्वेष नहीं है तो वनमें रहनेसे क्या? और यदि मनमें रागद्वेष है तो वनमें रहनेका क्लेश वृथा है। इत्यादि पिताके वचनोंको सुनकर शिवकुमारका मन करुणाभावसे पूर्ण होगया। वह कहने लगा—हे तात! जैसा आप चाहते हैं वैसा ही मैं करूँगा। उस दिनसे कुमार सर्व संगसे उदास हो एकांतमें घरमें रहने लगा, ब्रह्मचर्य पालने लगा, एक वस्त्र ही रखा, मुनिके समान भावोंसे पूर्ण व्रत पालने लगा। वह रागियोंके मध्यमें रहता हुआ भी कमल पत्तेके समान उनमें राग नहीं करता था। अहा! यह सब सम्यग्ज्ञानकी महिमा है। महान् पुरुषोंके लिये कोई बात दुर्लभ नहीं है। कहा है—

कुमारस्तद्दिनान्नूनं सर्वसंगपराङ्मुखः।
ब्रह्मचार्यैकवस्त्रोऽपि मुनिवत्तिष्ठते गृहे ॥ १३० ॥

अकामी कामिनां मध्ये स्थितो वारिजपत्रवत् ।
अहो ज्ञानस्य माहात्म्यं दुर्लभ्यं महतामपि ॥ १६१ ॥

कभी वह एक उपवास करके पारणा करता था, कभी दो दिनके पीछे, कभी एकपक्ष, कभी एक मासका उपवास करके आहार करता था। वह शुद्ध प्राशुक आहार, बहुधा जल व चावल लेता था। जिसमें कृत व कारितका दोष न हो ऐसा आहार दृढ़वर्म मित्र द्वारा भिक्षासे लाया हुआ ग्रहण करता था। (नोट—ऐसा मालूम होता है दृढ़वर्म मित्र भी क्षुल्लक होगया था। वह भिक्षासे भोजन लाता था। उसे ही दोनो ग्रहण करते थे। एक या अनेक घरोंसे लाया हुआ भोजन लेना क्षुल्लकोंके लिये विधिरूप था। कहा है—

प्राशुकं शुद्धमाहारं कृतकारितवर्जितम् ।
आदत्त भिक्षयानीतं मित्रेण दृढवर्म्मणा ॥ १६३ ॥

उस कुमारने घरमें रहते हुए भी तीव्र तपकी अग्निमें काम, क्रोधादिकको ऐसा जला दिया था कि ये भाग गए थे, फिर निकट नहीं आते थे। इस तरह शिवकुमार महात्माने पापसे भयभीत होकर चौसठ हजार वर्ष ६४००० वर्ष तप करते हुए पूर्ण किये। आयुका अन्त निकट देखकर वह नग्न दिगम्बर मुनि होगया। उसने इन्द्रियोंको जीतकर चार प्रकारके आहारका त्याग कर दिया। इस तपके करनेसे शुभोपयोग द्वारा बांधे हुए पुण्यके फलसे वह छट्ठे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें अणिमादि गुणोंसे पूर्ण विद्युन्माली नामका इन्द्र उत्पन्न हुआ। इसकी दश सागरकी आयु हुई। अब उसके पास वे चार महादेवी

विद्यमान हैं। वही विद्युन्माली यहांपर स्वर्गमें इंद्रके समान शोभ रहा है। यह सम्यग्दृष्टी है। इस सम्यग्दर्शनके अतिशयसे इसकी कांति मलीन नहीं हुई। (नोट–इससे सिद्ध है कि मिथ्यादृष्टी देवोंकी ही माला मुरझाती है, शरीरकी शोभा कम होती है, आभूषणोंकी चमक घटती है, परन्तु सम्यग्दृष्टी देवोंकी शोभा नहीं घटती है; क्योंकि उनके मनमें वियोगका दुःख व शोक नहीं होता है। सम्यक्तीको वस्तु स्वरूपके विचारसे इष्ट वियोगका व मरणका शोक नहीं होता है।) कहा है—

सोऽयं प्रत्यक्षतो राजन् राजते दिवि देवराट्।
नास्य कांतिरभूत्तुच्छा सम्यक्त्वस्यातिशायितः ॥१६९॥

सागरचन्द्र मुनिने भी व्रतमें तत्पर रहकर समाधिमरणपूर्वक शरीर छोड़ा। उसका जीव भी छट्ठे स्वर्गमें जाकर प्रतीन्द्र हुआ। वहां भी पंचेन्द्रिय सम्बन्धी नाना प्रकार सुखकी इच्छापूर्वक विना बाधाके दीर्घ कालतक भोग किया।

धर्मके फलसे सुख होता है, उत्तम कुल होता है, धर्मसे ही शील व चारित्र होता है। धर्मसे ही सर्व सम्पदाएं मिलती हैं, ऐसा जानकर हरएक बुद्धिमान्को योग्य है कि वह प्रयत्न करके धर्मरूपी वृक्षकी सदा सेवा करे। कहा है—

धर्मात्सुखं कुलं शीलं धर्मात्सर्वा हि संपदः।
इति मत्वा सदा सेव्यो धर्मवृक्षः प्रयत्नतः ॥ १७२ ॥

चौथा अध्याय।

जम्बूस्वामीका जन्म व बालक्रीड़ा।

(श्लोक १६० का भावार्थ)

सर्व विघ्नोंकी शांतिके लिये प्रकाशमान सुपार्श्वनाथको वन्दना करता हूं। तथा चन्द्रमाकी ज्योतिके समान निर्मल यशके धारी श्री चंद्रप्रभ भगवानको मैं नमस्कार करता हूं।

चार देवियोंके पूर्वभव।

श्रेणिक महाराज विनय पूर्वक गौतम गणधरको पूछने लगे कि इस विद्युन्माली देवकी जो ये चार महादेवियां हैं वे किस पुण्यसे देवगतिमें जन्मी हैं. मेरे संशय निवारणके लिये इनके पूर्वभव वर्णन कीजिये। योगीश्वर विनयके आधीन होजाते हैं, इसलिये श्री गौतमस्वामीने उनका पूर्वभव कहना प्रारम्भ किया। वे कहने लगे-हे श्रेणिक! इसी देशमें चंपापुरी नामकी नगरी थी, वहां धनवानोंमें मुख्य सुरसेन सेठ था। उस सेठके चार स्त्रियां थीं। उनके नाम थे जयभद्रा, सुभद्रा, धारिणी, यशोमती। इन महिलाओंके साथ यह सेठ बहुत काल तक सुख भोगता रहा, जबतक पुण्यका उदय रहा। फिर तीव्र पापके उदयसे सेठका शरीर रोगमई होगया, एक साथ ही सर्वरोगोंका संयोग होगया। कास, श्वास, क्षय, जलोदर, भगंदर, गठिया आदि रोग प्रगट होगए। जब शरीरमें रोग बढ़ गए तब शरीरकी धातुएं विरोधरूप होगईं। उस सेठके भीतर अशुभ वस्तुओंकी तीव्र अभिलाषा पैदा होगई। रोगी होनेसे उसका ज्ञान भी मंद होगया। वह

अपनी स्त्रियोंको मुट्ठीसे व लकड़ीसे मारने लगा। वह दुर्बुद्धि अकस्मात् भ्रांतिवान् होगया। मस्तिष्क बिगड़ गया। खोटे दुष्ट वचन कहने लगा-तुम्हारी पास कोई जार पुरुषको खड़े देखा था। फिर कभी देखूंगा तो तुम्हारे नासादिको छेद डालूंगा व प्राण ले लूंगा। इत्यादि कर्णभेदी शस्त्रके समान कठोर वचन स्त्रियोंको कहता था, पापके उदयसे रौद्रध्यानी होगया।

वे चारों बहुत दुःखी हुईं अपने जीवनको धिक्कार युक्त मानने लगीं। एक दफे वे तीर्थयात्राके लिये घरसे वनमें गईं। वहां श्री वासुपूज्यस्वामीका महान् मंदिर था, उसको देखकर भीतर जाकर श्री जिनबिम्बोंके दर्शन करके मानने लगी कि आज हमारा जन्म सफल हुआ है, आज हम कृतार्थ हुए। वहां मुनिराज विराजमान थे, उनके मुखारविंदसे धर्म व धर्मका फल सुना व गृहस्थ श्रावकके व्रत ग्रहण किये। व्रत लेकर वे घरमें लौट आईं। इतनेमें महापापी सूरसेनका मरण होगया।

तब चारोंने अपना सर्व धन धर्मबुद्धिसे एक महान् जिनमंदिर बनानेमें खर्च कर दिया। फिर वैराग्यवान होकर चारोंने गृहका त्याग करके आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये। शास्त्रानुसार उन्होंने तीव्र तप किया। अतः शुभ भावोंसे पुण्य बांधकर उसी छठे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें देवियां पैदा हुईं और इस विद्युन्माली देवकी वे प्राणधारी महादेवियां होगईं।

श्रेणिक महाराज इस धर्मकथाको सुनकर बहुत ही प्रमुदित

हुए। फिर मनमें विचार किया कि एक और प्रश्न करें। स्वामी ! आज आपने यह भी कहा था कि विद्युन्मालीका जीव जब मानव-भवको ग्रहण करेगा तब विद्युच्चर नाम चोर भी इनके साथ तप ग्रहण करेगा। यह विद्युच्चर कौन है, इसका क्या कुल है, चोरीकी आदत कैसे पड़ी, फिर वह मुनि कैसे होगा, विद्युच्चर ! कृपा करके इसका सब वृत्तांत कहिये। मैं धर्मफलकी प्राप्तिके लिये विस्तार सहित सुनना चाहता हूं।

श्री महावीर तीर्थंकरके दयारूपी जलसे पूर्ण समुद्रके समान गंभीर श्री गौतमस्वामी कहने लगे-हे श्रेणिक ! धर्मका अद्भुत महात्म्य है। तू श्रवण कर।

विद्युच्चरका वृत्तांत।

इसी मगधदेशमें हस्तिनागपुर नामका महान नगर है, जो स्वर्गपुरीके समान है। वहां संवर नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानी प्रियवादिनी कामकी खान श्रीषेणा थी। उसका पुत्र विद्युच्चर पैदा हुआ। यह बहुत विद्वान् होगया। जैसे जैसे कुमार अवस्था आती गई यह अनेक विद्याओंको सीख गया। इसको जो कुछ भी विज्ञान सिखाया जाता था, जल्दी ही सीख लेता था। रात दिन अभ्यास करनेसे कौनसी विद्या है जो प्राप्त न हो ? यह शस्त्र व शास्त्र सर्व विद्याओंमें निपुण हो गया।

किसी एक दिन इसके भीतर पापके उदयसे यह खोटी बुद्धि उत्पन्न हुई कि मैंने चोरी करना नहीं सीखा, उसका भी अभ्यास

करना चाहिये, ऐसा विचारकर वह एक रात्रिको अपने पिताके ही महलमें धीरे २ चोरकी तरह गया। बड़ी बुद्धिमानीसे बहुत मूल्य रत्न उठा लिये। उन रत्नोंका बड़ा भारी प्रकाश था। जब वह लौटने लगा तब उसको किसीने देख लिया। इस दर्शकने सवेरा होते ही राजाके सामने कुमारकी चोरीका वृत्तांत कह दिया। सुनकर राजाने उसे उसी समय बुलवाया। कर्मचारी दौड़कर उसको ले आए। वह वीर सुभटके समान धैर्यके साथ सामने आकर खड़ा होगया। तब राजाने मीठी वाणीसे पुत्रको समझाया—हे पुत्र! चोरीका काम बहुत बुरा है। तूने यह चोरी किसलिये की? यदि तु भोगोंको भोगनेकी इच्छा करता है तो मेरी क्या हानि है। तू अपनी स्त्रियोंके साथ इच्छित भोगोंको भोग। जो वस्तु कहीं नहीं मिलेगी सो सब मेरे घरमें सुलभ हैं। जो तुझे चाहिये सो ग्रहण कर ले, परन्तु इस चोरी कर्मको तू न कर। यह बहुत निंद्य है, इसलोक व परलोकमें दुःखदाई है, सर्व संतापका कारण है, तू तो महान विवेकी है, ऐसे कामको कभी न कर।

पिताके ऐसे उपदेशप्रद वचनोंको सुनकर भी उसको शांति न मिली। जैसे ज्वरसे पीड़ित प्राणीको शक्करादि मिष्ट पदार्थ नहीं सुहाते हैं। वह दुष्ट चोरीका प्रेमी अपने पिताको उत्तरमें कहने लगा कि महाराज! चोरी कर्म व राज्यमें बहुत बड़ा भेद है। राज्यमें लक्ष्मी परिमित होती है। चोरी करनेसे अपरिमितका लाभ होता है। इन दोनोंमें समानता नहीं है। इसलिये चोरीके गुणको ग्रहण करना

उचित है। कर्तव्य व अकर्तव्यका विचार न करके पिताके वचनका उलंघन कर वह दुष्ट घरसे उदास होकर राजगृही नगरको चल दिया। वहां कामलता नामकी वेश्या बहुत सुंदर काम भावसे पूर्ण थी, उसके रूपमें आसक्त होगया। उस वेश्याके साथ इच्छित भोगोंको भोगने लगा। वह कामी विद्युच्चर चोर रात दिन चोरी करके जो धन लाता है वह सब वेश्याको दे देता है।

जम्बूस्वामी जन्मस्थान।

भगवान गौतमके मुखसे इस प्रश्नके उत्तरको सुन कर राजा श्रेणिक बहुत संतुष्ट हुआ। फिर प्रश्न करने लगा–हे भगवान्! आपने जो इस विद्युन्माली देवकी कथा कही थी, उसमें कहा था कि आजसे सातवें दिन यह इस पृथ्वीतलपर जन्मेगा, सो यह किस पुण्यवानके घरको अपने जन्मसे भूषित करेगा? जगतके स्वामीने उसके प्रश्नका यह समाधान किया कि इसी राजगृह नगरमें धन-सम्पन्न अर्हद्दास सेठ रहता है जो जैनधर्ममें तत्पर हैं। उसकी स्त्री स्वरूपवान जिनमती नामकी है, जो धर्मकी मूर्ति है, महान साध्वी है। जैसे उत्तम विद्या मानवको सुखदाई होती है, वैसे वह सुखको देनेवाली है। कहा है:—

तस्य भार्या सुरूपाद्या नाम्ना जिनमती स्मृता।
धर्ममूर्तिर्महासाध्वी सद्विद्येव सुखावहा ॥ ५२ ॥

उस जिनमतीके पवित्र गर्भमें पुण्योदयसे यह अवतार धारण करेगा। यह सम्यग्दर्शनसे पवित्र है। इसका आत्मा अवश्य मोक्ष-रूपी स्त्रीका स्वामी होगा।

वहां कोई यक्ष बैठा था, वह यह सुनकर आनंदसे पूर्ण हो नृत्य करने लगा। हे स्वामी! ऐ केवलज्ञानी! हे नाथ! जय हो, जय हो, आपके प्रसादसे मैं कृतार्थ होगया। मैंने पुण्यका फल पालिया। उसका कुल धन्य है, प्रशंसनीय है, जहां केवलीका जन्म हो, उस कुलमें सूर्यके समान केवलज्ञानसे वह प्रकाशित होगा। वही पवित्र देश है, वही शुभ नगर है, वही कुल पवित्र है, वही घर पावन है, जहां सदा धर्मका प्रवाह रहता है। कहा है:—

स एव पावनो देशस्तदेव नगरं शुभम्।
तत्कुलं तद्गृहं पूतं यत्र धर्मपरंपरा॥ ५७॥

जम्बूस्वामी कुलकथा।

वह यक्ष अपने आसनपर खड़ा खड़ा बारबार हर्षसे नृत्य करने लगा। तब श्रेणिकने पूछा कि महाराज! यह यक्ष क्यों नृत्य कर रहा है? गौतम गणेशराज श्रेणिकसे कहने लगे-इसी नगरमें एक श्रेष्ठ वणिक् पुत्र था, जिसका नाम धनदत्त था जो सौम्यपरिणामी था व धनमें कुबेरके समान था। उसकी स्त्री सुन्दर गोत्रमती नामकी थी, उसके दो पुत्र थे। बड़ेका नाम अर्हदास जो बहुत बुद्धिमान् है। छोटेका नाम जिनदास था, जो चंचल बुद्धि था। पापके तीव्र उद-यसे वह सर्व जुआ आदि व्यसनोंमें फंस गया। वह दुर्बुद्धि मांस खाने लगा, मदिरा पीने लगा, वेश्यासेवन करने लगा। पापी जुआ भी रमने लगा। उसका सर्व कर्म निंदनीय हो गया। इधर उधर दुःखदाई चोरीका कर्म भी करने लगा। अधिक क्या कहा जावे।

उसका आचरण सर्व बिगड़ गया। जगतमें प्रसिद्ध है, एक जूएके व्यसनमें फंसकर युधिष्ठिर आदि पांडुपुत्रोंने राज्यभ्रष्ट होकर महान दुःखोंको भोगा, परन्तु जो कोई इन सर्व ही व्यसनोंमें लोलुप होगा वह इस लोकमें आज व कल अवश्य दुःख भोगेगा व परलोकमें भी पापके फलसे दुःख सहन करेगा। कहा है:—

अहो प्रसिद्धिर्लोकेऽस्मिन् द्यूताद्धर्मसुतादयः।
एकस्माद्व्यसनान्नष्टाः प्राप्ता दुःखपरम्पराम् ॥ ६६ ॥
अयं सर्वैः समग्रैस्तु व्यसनैर्लोलमानसः।
अद्य श्वो वा परश्वश्च ध्रुवं दुःखे पतिष्यति ॥ ६७ ॥

इस तरह नगरके लोग परस्पर बातें करते थे। उसके जातिवाले उसको शिक्षा देनेके लिये दुर्वचन भी कहते थे।

इसतरह एक दिन जुआ खेलतेर जिनदास इतना सुवर्ण हार गया जितना उसके घरमें भी नहीं था। तब जीतनेवाले जुआरीने जिनदासको पकड़कर कहा कि शीघ्र मुझे जितना तूने द्रव्य हारा है, दे। जिनदास तीव्र धनकी हारसे आकुलित हो विना विचार किये हुए कठोर वचनोंसे उत्तर देने लगा—तू चाहे जो वध बन्धन आदि करे, मेरे पास आज इतना सुवर्ण देनेको नहीं है। मैं अपने प्राणोंका अंत होनेपर भी नहीं दूंगा। जिनदासके वचन सुनकर वह क्षत्रिय जुआरी क्रोधमें भर गया। कहने लगा कि मैं आज ही सर्व सुवर्ण लूंगा, नहीं तो तेरे प्राण लूंगा। तू ठीक समझ—दूसरी गति नहीं होसक्ती। परस्पर लड़ाई झगड़ा होने लगा। बड़ा भारी कोलाहल होगया।

दुष्ट क्षत्रियने क्रोधके आवेशमें आकर अपनी तलवारसे जिनदासको मारा। वह जिनदास मूर्छा खाकर गिर पड़ा। तब वह क्षत्रिय अपनेको अपराधी समझकर मारा गया। इतनेमें नगरके बहुत लोग वहां देखनेको आगए। जिनदासका भाई अर्हद्दास भी आया। भाईको मूर्छित देखकर व्याकुल चित्त हो उसे यत्नपूर्वक अपने घरमें लेगया। शस्त्र वैद्यको बुलाकर उसकी चिकित्सा कराई परन्तु जिनदासका समाधान नहीं हुआ। ठीक है जब दुष्ट कर्मरूपी शत्रुका उदय होता है तब सब उपाय वृथा जाता है। जैसे दुर्जन पुरुषके साथ किया हुआ उपकार उसके स्वभावसे वृथा ही होता है। कहा है—

उदिते दुष्टकर्मारौ प्रतीकारो वृथाखिलः।
निसर्गतः खले पुंसि कृताप्युपकृतिर्यथा॥ ७९॥

उसको ज्ञान देनेके लिये अर्हद्दास जैन सूत्रके अनुसार धर्म-भरी वाणी कहने लगा–हे भ्रात! इस संसाररूपी समुद्रमें मिथ्या-दृष्टी दुष्ट जीव सदा भ्रमण किया करता है, व महादुखोंको सहता है। इस जीवने संसारमें अनंतवार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव इन पांच परिवर्तनोंको किया है। पापबंधके कारण भाव मिथ्यात, विषयभोग, कषाय व मनवचन कायके योग हैं, इनमें भी जूआ आदिके व्यसन तो दोनों लोकमें निन्दनीय हैं। जूआ आदिके व्यसनोंमें जो फंस जाते हैं उनको इसलोकमें भी वध बंधन आदि कष्ट होता है व परलोकमें महान असाताकर्म उदयमें आकर तीव्र दुःख होता है।

हे भाई! तूने प्रत्यक्ष ही द्युत कर्मका महान खोटा फल प्राप्त कर लिया। यह भी निश्चयसे जान, तू परलोकमें भी तीव्र दुःख पावेगा। अर्हद्दासके वचनोंको सुननेसे जिनदासका मन पापोंसे भयभीत होगया। रोगातुर होनेपर भी उसकी रुचि धर्मामृत पीनेमें होगई।

तब जिनदासने अर्हद्दासकी तरफ देखकर कहा कि वास्तवमें मैंने बहुत खोटे काम किये हैं। मैंने व्यसनोंके समुद्रमें मगन होकर अपना समय वृथा खो दिया। हे भाई! मैं अपराधी हूं, मेरा तू उद्धार कर। इस लोकमें जैसा तू मेरा सच्चा हितैषी बन्धु है वैसा हे धर्मात्मा! तू मेरी परलोकमें भी सहायता कर। अर्हद्दास भी जिनदासके करुणापूर्ण वचन सुनकर शुद्ध बुद्धि धारकर उसका धर्म साधन हो वैसा उपाय करने लगा। अर्हद्दासके उपदेशसे जिनदासने श्रावकके अणुव्रत ग्रहण कर लिये और तब समाधि-मरणसे मरके पुण्यके उदयसे यह यक्ष हुआ है। इसीलिये हे राजन्! मेरे वचनोंको सुनकर यह नाच रहा है। इसके मनमें बड़ा हर्ष है कि मेरे वंशमें अंतिम केवलीका जन्म होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। यह विद्युन्मालीदेवका जीव अर्हद्दास सेठका पुत्र जन्मेगा और यही जम्बूस्वामी नामका धारी अंतिम केवली होगा।

हे राजन्! जम्बूस्वामीकी कथा बड़ेर मुनींद्र सत्धर्मकी प्राप्तिके हेतु वर्णन करेंगे। श्रेणिक महाराज इस प्रकार भगवानकी दिव्यवाणी सुनकर व अपने इच्छित प्रश्नोंका समाधान करके बहुत प्रसन्न हुआ। और घर लौटनेकी इच्छा करके श्री जिनेन्द्रकी स्तुति गद्य

व पद्यमें करने लगा। भगवत्‌के गुणोंका स्मरण किया। स्तुतिके कुछ वाक्य ये हैं—हे देव महादेव! जय हो, जय हो। केवलज्ञान नेत्रके धारी भगवानकी जय हो। आप दयाके सागर हैं, सर्व प्राणी मात्रके हित कर्तार हैं। हे देवाधिदेव! आपकी जय हो, आपने घातीय कर्मोंका नाश कर दिया है, आपने मोहरूपी योद्धाको जीतकर वीरत्व प्रगट किया है, आप धर्मरूपी तीर्थके प्रवर्तन करनेवाले हो। हे स्वामी! आपके समान तीन जगतमें कोई शरण नहीं है। हे विभु! जब तक मैं आपके समान न हो जाऊं, तब तक मुझे आपकी शरण प्राप्त हो। कहा है:—

यथा त्वं शरणं स्वामिन्नस्ति त्रिजगतामपि।
तथा मे शरणं भूयाद्यावत्स्यां त्वत्समो विभो॥ ९८॥

इस तरह स्तुति करके श्रेणिक राजा अपने नगरमें प्रयाण कर गया। घरमें रहते हुए वह श्रेणिक जिनेन्द्रकथित धर्मका पालन करने लगा। यह जिनधर्म, भावकर्म और द्रव्यकर्मका नाश करनेवाला है।

जम्बूस्वामीका जन्म।

राजा श्रेणिकको राज्य करते हुए कुछ काल बीत गया, तब श्री जम्बूस्वामीका जन्म हुआ था। अर्हद्दास सेठ राज्यश्रेष्ठी थे। राज्यकार्यमें मुख्य थे। उनकी स्त्री जिनमती सीताके समान शीलवती, गुणवती व रूपवती थी। दोनों दम्पति परस्पर स्नेहसे भीगे हुए सुखसे काल बिताते थे। यद्यपि वे गृहस्थके न्यायपूर्वक भोग करते थे, तथापि रात दिन जैन धर्ममें दत्तचित्त थे।

एक रात्रिको जिनमती सुखसे शयन कर रही थी, उसने रात्रिके पिछले पहर कुछ स्वप्न देखे। एक स्वप्न यह देखा कि जामुनका वृक्ष है, फलोंसे भरा हुआ है, भ्रमर गुंजार कर रहे हैं, देखनेसे बड़ा प्रिय दीखता है। दूसरा स्वप्न देखा कि अग्निकी ज्वाला जल रही है, परन्तु धूप नहीं निकलता है। तीसरा स्वप्न चावलका खेत फूला हुआ हराभरा देखा। चौथा स्वप्न कमल सहित सरोवर देखा। पांचवां स्वप्न तरङ्ग सहित समुद्र देखा। प्रातःकाल उठकर अपने पतिसे स्वप्नोंका हाल जानकर अर्हद्दासको बहुत आनंद हुआ। जैसे मेघोंको देखकर मोरनी शब्द करती हुई नाचती है वैसे ही सेठका मन हर्षसे पूर्ण होगया। वह उसी समय उठा, स्त्री सहित श्री जिन मंदिरजी गया। वारवार नमस्कार किया। श्री जिनेन्द्रोंकी भले भावोंसे पूजा की। फिर वह वैश्यराज मुनीश्वरोंको प्रणाम करके स्वप्नोंका फल पूछने लगा—

हे स्वामी! आज रातको पिछले भागमें मेरी स्त्रीने कुछ शुभ स्वप्न देखे हैं, आप ज्ञाननेत्रधारी हैं! शास्त्रानुसार उनका क्या फल है सो कहिये। तब मुनिराजने कुछ देर विचार किया फिर कहने लगे कि—जम्बूवृक्ष देखनेका फल यह है कि कामदेव समान तुम्हारे पुत्र होगा। प्रज्वलित अग्नि देखनेका फल यह है कि वह कर्मरूपी ईंधनको जलाएगा। खेतके धान्य देखनेका फल यह है कि वह लक्ष्मीवान् होगा। कमलसहित सरोवर देखनेका फल यह है कि वह भव्यजीवोंके पापरूपी दाहकी संतापको शांत करनेवाला होगा। हे श्रेष्ठी! समुद्रके दर्शनका फल यह है कि वह

तरफ केरल-देशमें ऐसे लोग रहते थे जिनको विद्याधर कहते हैं। ये लोग आकाशमें विमानोंपर चढ़के चलते थे। उस समय भी विमानपर चढ़कर चलनेकी कलाका प्रचार था, ऐसा इस चरित्रसे झलकता है।)

हे स्वामी! हंसद्वीपका निवासी विद्याधरोंका राजा बड़ा तेजस्वी रत्नचूल नामका विद्याधर है। उसने उस सुंदर कन्याको अपने लिये वरनेकी इच्छा प्रगट की। राजा मृगांकको मुनिराजके वचनोंपर श्रद्धा थी। उसने श्रेणिकको ही देनेका विचार स्थिर करके रत्नचूलकी बात अस्वीकार की। इस बातसे रत्नचूलने अपना बहुत अपमान समझा, क्रोधित हो गया, मृगांक राजासे वैर बांध लिया, सेनाको सजकर उसने मृगांकके नगरको नाश करना प्रारम्भ कर दिया है। उस पापीने मकान तोड़ डाले हैं। धन-धान्यसे पूर्ण व ग्रामोंकी पंक्तियोंसे शोभित ऐसे ऐश्वर्यवान देशको ऊजड़ कर दिया है। वनोंको उखाड़ डाला है, किला भी तोड़ दिया है। और अधिक क्या कहूं, सर्व ही नाश कर दिया है। मृगांक भयसे पीड़ित होकर अपने किलेके भीतर ठहर कर किसी तरह अपने प्राणोंकी रक्षा कर रहा है। वर्तमानमें जो वहांकी दशा है सो मैंने कह दी। आगे क्या होगा, उसे ज्ञानीके सिवाय और कौन जान सक्ता है? मृगांक राजा भी युद्धमें सावधान है। आज व कलमें वह भी अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करेगा।

क्षत्रियोंका यह धर्म है कि जब युद्धमें शत्रुका सामना किया

जाता है तब प्राणोंका त्याग करना तो अच्छा है परन्तु पीठ दिखाकर जीना अच्छा नहीं। कहा है—

क्रमोऽयं क्षात्रधर्मस्य सन्मुखत्वं यदाहवे।
वरं प्राणात्ययस्तत्र नान्यथा जीवनं वरं ॥ ३० ॥

महान पुरुषोंका धन व प्राण नहीं है, किन्तु मानरूपी महान धन है। प्राण जानेपर भी यशको स्थिर रखना चाहिये। मान नहीं रहा तो यश कहांसे हो सक्ता है। कहा है—

महतां न धनं प्राणाः किंतु मानधनं महत्।
प्राणत्यागे यशस्तिष्ठेत् मानत्यागे कुतो यशः ॥ ३१ ॥

जो कोई शत्रुके पूर्ण बलको देखकर विना युद्ध किये शीघ्र भाग जाते हैं उनका मुख मैला होजाता है। जो कोई बुद्धिमान धैर्यको धारण करके युद्ध करते हैं, मर जाते हैं, परन्तु पीठ नहीं दिखाते हैं, वे ही यशस्वी धन्य हैं। कहा है—

ये तु धैर्य विधायाशु युद्धं कुर्वंति धीधनाः।
मृतास्तत्रैव नो भग्ना धन्यास्ते हि यशस्विनः ॥ ३२ ॥

हे राजन्! मैं वचन देकर आया हूं, मुझे वहां शीघ्र जाना है। यह कार्य परम आवश्यक है, मुझे विलम्ब करना उचित नहीं है। मैं क्षण मात्र यहांपर आपका दर्शन करता हुआ इस उत्तम स्थानमें वहांका वर्णन करता हुआ ठहरा था। अब मेरा मन यहां अधिक ठहरना नहीं चाहता है। हे राजन्! आज्ञा दीजिये जिससे मैं शीघ्र जाऊं। ऐसा कहकर वह आकाशगामी विद्याधर तुरंत चल-

नेको उद्यमी हुआ। इतनेमें जम्बूस्वामी उस विद्याधरसे कहने लगे—

हे विद्याधर! क्षणभर ठहरो ठहरो, जबतक श्रेणिक महाराज तैयारी करें। यह महाराज बड़े पराक्रमी हैं। सर्व शत्रुओंको जीत चुके हैं, उनके पास हाथी, घोड़े, रथ, बल्दोंकी चार प्रकारकी सेना है, यह महा धीर हैं, राजा बड़ा बुद्धिमान है, राज्यके सातों अंगोंसे पूर्ण है, तेजस्वी है व यशस्वी है। कुमारके वीरतापूर्ण वचन सुनकर विद्याधरको आश्चर्य हुआ। फिर वह विद्याधर सर्व वचन युक्तिपूर्वक कहने लगा-हे बालक! तूने जो कुछ कहा है वही क्षत्रियोंका उचित धर्म है, परन्तु यह काम असंभव है। इसमें तुम्हारी युक्ति नहीं चल सक्ती। यहांसे वह स्थान सैकड़ों योजन दूर है, वहां जाना ही शक्य नहीं है तब वीर कार्य करनेकी बात ही क्या? तुम सब भूमिगोचरी हो, वे आकाशगामी योद्धा हैं, उनके साथ आपकी समानता कैसे हो सक्ती है? जैसे कोई बालक हाथीको पानीमें डालकर चन्द्रबिम्बकी परछाईको चन्द्र जानकर पकड़ना चाहें वैसा ही आपका कथन है। अथवा कोई बौना मानव बाहु रहित हो और ऊंचे वृक्षके फलको खाना चाहे तो यह हास्यका भाजन होगा वैसा ही आपका उद्यम है। यदि कोई अज्ञानी पगोंसे सुमेरु पर्वतपर चढ़ना चाहे, कदाचित् यह बात होजावे परन्तु आपके द्वारा यह काम नहीं होसक्ता है। जैसे कोई जहाजके बिना समुद्रको तरना चाहे वैसे ही यह आपका मनोरथ है कि हम रत्नचूलको जीत लेंगे।

इस तरह हजारों दृष्टांतोंसे उस विद्याधरने अपने प्रभावका

बल दिखलाया। सर्व और चुप रहे, परन्तु यशस्वी कुमारसे न रहा गया। वह वादी-प्रतिवादीके समान अनेक दृष्टान्तोंसे उत्तर देने लगा। हे विद्याधर! ऐसे विना जाने वचन कहना ठीक नहीं है। ज्ञान विना किसीके बल व अबलको कौन जान सक्ता है? कुमारके वचनको सुनकर व्योमगति विद्याधर निरुत्तर होगया। मौनसे कुमारके पराक्रमको देखनेके लिये ठहर गया। श्रेणिकराजा उनके वचनोंको सुनकर अहंकार युक्त होकर यह विचारने लगा कि यह काम बहुत कठिन है, ऐसा सोचकर मनमें घबड़ा गया। राजा बार बार विचार करता है, खेदित होता है, उस कामको दुर्लभ जानकर कुछ करनेका दृढ़ संकल्प न कर सका। न तो शीघ्र चलनेको तय्यार हुआ न उसको कुछ उत्तर ही दे सका। दो काठकी तराजूमें चढ़कर राजाका मन हिलने लगा।

जम्बूकुमारका साहस।

इतने हीमें जंबूस्वामी कुमारने आनंद सहित गंभीर वाणीसे शांतभावके द्वारा ऊंचे स्वरसे कहा—हे स्वामी! यह काम कितना है? आपके प्रसादसे सिद्ध हो जायगा। सूर्यकी तो बात ही दूर रहे, उसकी किरण मात्रसे अंधकार मिट जाता है। मेरे समान बालक भी उस कामको कर सक्ता है तो आपकी तो बात ही क्या है, जिनके पास चार प्रकारकी सेना तय्यार है।

जंबूकुमारके वचन सुनकर श्रेणिक महाराज आनंदित होगए। जैसे सम्यग्दृष्टी तत्वकी बात कर आनंदित होजाता है और जम्बु-

किसी वीर योद्धाको भेजा है। इन वचनोंको सुनकर मृगांक राजाके शरीरमें आनंदसे रोएं खड़े होगए। तब वह मृगांक भी अपनी सब सेनाको सजकर युद्धके लिये नगरसे बाहर निकला। उसकी सेनाकी बाजोंकी ध्वनि सुनकर रत्नचूल भी सावधान होगया। क्रोधाग्निसे जलता हुआ युद्ध करनेको सामने आया। इसतरह दोनों तरफकी सेनाओंमें भयंकर युद्ध चल पड़ा। हाथी हाथियोंसे, घोड़े घोड़ोंसे, रथ रथोंसे, विद्याधर विद्याधरोंसे परस्पर भिड गए।

इस भयंकर युद्धका वर्णन हम क्या करें? रूधिरकी धारासे समुद्र ही होरहा है। जिनकी छाती भिद गई है वे उसको पार करके शत्रुके ऊपर आ नहीं सकते थे। घोड़ोंके खुरोंका धूला आकाशमें छाया हुआ है। जिससे दिनमें भी रात्रिका अनुमान होता है। कहीं योद्धा एक दूसरेका नाम लेकर ललकार रहे हैं। रथोंके चलनेकी, हाथियोंकी घंटियोंकी व उनके दहाड़नेकी, धनुषोंकी टंकारकी, योद्धाओंके रे रे शब्दकी महान ध्वनि हो रही है। कहीं योद्धा, कहीं गज, कहीं रथ भग्न पड़े हैं। तलवार, कुन्त, मुद्गर, लोहदंड आदि शस्त्रोंसे सैकड़ोंके सिर चूर्ण हो गए हैं। कितनोंहीकी कमर टूट गई है, आकाशमें तलवार पवनादिके कारण बिजलीसी चमक रही है।

ऐसा महान युद्ध होरहा है कि वहां अपना पराया नहीं दिखता है। कहीं भूमिमें आंतें पडी हैं, कोई बालोंको फैलाए मुर्छित पड़े हैं, कोई किसीके केशोंको पकड़कर मार रहा है। सिरसे रहित धड़ भी जहां युद्धके लिये नाचते थे। कुमार व रत्नचूल दोनों आकाशमें

विमानों पर युद्ध करने लगे। जम्बूस्वामीने रत्नचूलका विमान तोड़ दिया तब वह भूमिपर आगया। जैसे ही यह भूमिपर गिर पड़ा, तब हाथीपर चढ़े मृगांकने महावतको पूछा कि किसको किसने मारा? तब उसने कहा कि पराक्रमी जम्बूकुमारने रत्नचूलको भूमिपर गिरा दिया। इतनेमें कुमारने रत्नचूलको दृढ़ बांध लिया। राजाके बांधे जानेपर रत्नचूलकी सब सेना भाग गई। तब राजा मृगांकने व उसकी ओरके विद्याधरोंने जम्बूकुमारकी प्रशंसा की। चारों तरफ जय जयकार शब्द हो गया। कहने लगे—

धन्योऽसि त्वं महाप्राज्ञ रूपनिर्जितमन्मथ।
क्षात्रधर्मस्य चौन्नत्यमद्य जातं त्वया कृतम्॥ २५२॥

भावार्थ-हे महाबुद्धिवान्, कामदेवके रूपको जीतनेवाले कुमार तू धन्य है। तुमने आज क्षत्रिय धर्मके ऐश्वर्यको भले प्रकार प्रगट कर दिया। केरल राजाकी सेनामें जीतके नगारे बजने लगे। बंदीजन कुमारके यश कहने लगे। व्योमगति विद्याधरने जंबूकुमारका मृगांकके साथ बहुत प्रेम करा दिया।

घुटनोंतक लम्बी भुजाधारी जंबूकुमारने आठ हजार विद्याधरोंको लीला मात्रमें जीत लिया। यह सब पुण्यका महात्म्य है। उस पुण्यके उदयसे ही कुमारने जयलक्ष्मी प्राप्त की। इसलिये जिनको सुखकी इच्छा है उनको एक धर्मका सेवन सदा करना योग्य है। कहा है:—

एक एव सदा सेव्यो धर्मो सौख्यमभीप्सुभिः।
यद्विपाकात्कुमारेण जयश्रीः किंकरीकृता॥ २५७॥

सातमा अध्याय।

जंबूस्वामी व श्रेणिक महाराजका राजगृहमें प्रवेश।

(श्लोक १४५ का भावार्थ)

मैं शुद्ध भावोंको रखनेवाले निर्मल ज्ञानधारी विमलनाथकी स्तुति करता हूं तथा अपने गुणोंकी प्राप्तिके लिये अनंत वीर्यवान अनंतनाथ भगवानको वंदना करता हूं।

जम्बूकुमारकी वैराग्यपूर्ण आलोचना।

जम्बुकुमारने जब भयानक युद्धक्षेत्रको देखा तब मनमें दया-भाव पैदा होगय—विचारने लगे, संसारकी अवस्था अनित्य है। अहो! जलका स्वभाव शीतल है परन्तु अग्निके संयोगसे उष्ण होजाता है, परन्तु स्वरूपसे तो जल शीतल ही है। शीतलता जलका गुण है, वैसे ही आत्माका स्वभाव शांत है, कषायके उदयसे मोहित हो जाता है। ज्ञानवान पुरुषोंने इस संसारकी स्थितिको उच्छिष्ट (झूठन) मानके इसका मोह त्याग किया है, परन्तु जो अज्ञानसे व मानसे अंध हैं वे मरके दुर्गतिको जाते हैं। जो प्राणी इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होते हैं वे इसीतरह मरते हैं जैसे पतंगा स्वयं आकर अग्निमें पड़कर मर जाता है। एक तो विषयोंका मिलना दुर्लभ है, कदाचित् इच्छित विषय प्राप्त भी होजावें तो उन विषयोंके भोगसे तृष्णाकी आग बढ़ती ही जाती है। ये विषय किंपाक

फलके समान हैं—सेवते अच्छे लगते हैं, परन्तु इनका फल कडुवा है। ऐसा होनेपर भी यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि बड़े बड़े ज्ञानी भी इन विषयोंका सेवन करते हैं।

वास्तवमें यह मोहरूपी पिशाच बड़ा भयंकर है, महान पुरुषोंको भी इससे पीछा छुड़ाना कठिन है। इस मोहके उदयसे यह प्राणी परको अपना माना करता है। जैसे मृग जंगलमें मरीचिका (चमकती हुई घास या बालू)को जल समझकर पानी पीनेके लिये दौडते हैं, जल न पाकर अधिक तृषातुर हो जाते हैं, वैसे मोही प्राणी अज्ञानसे विषयोंसे सुख होगा ऐसा जानकर विषयोंको भोगनेके लिये दौड़ते हैं, परन्तु अधिक तापको बढ़ा लेते हैं। जो मिथ्यात्व अंधकारसे अंध हैं, वे ही इन्द्रियोंके विषयोंसे सुख मानते हैं। जैसे कोई अग्निको ठंडा करनेके लिये शीघ्र ईंधन डाल दे वैसे ही अज्ञानी तृष्णाकी दाहको शमनके लिये विषयोंके सामने जाता है, उल्टा अधिक तृष्णाको बढ़ा लेता है। उस चतुराईको धिक्कार हो जो दूसरोंको तो उपदेश करे व अपने आत्माके हितका नाश करे। उस आंखसे क्या लाभ, जिसके होते हुए भी गड्ढेमें गिर पड़े। उस ज्ञानसे भी क्या जो ज्ञानी होकर विषयोंके भीतर पड़ जावे।

अहो! मैं भी तो ज्ञानी हूं, मुझ ज्ञानीने भी प्रमादके वश होकर यश पानेकी इच्छासे घोर हिंसाकर्म कर डाला। शास्त्र कहता है कि अपने प्राण जानेपर भी किसी प्राणीकी हिंसा न करनी चाहिये। मुझ निर्दयीने तो आठ हजार योद्धाओंको मारा है। वास्तवमें ऐसा

ही कोई शुभ या अशुभ कर्मोंका उदय आगया। कर्मके तीव्र उदयको तीर्थंकर भी निवारण नहीं कर सक्ते। जैसे स्फटिकमणि स्वभावसे स्वच्छ है तौ भी रक्त पीत आदि उपाधिके बलसे रक्त पीत आदि रंगके भावको प्राप्त होजाती है वैसे ही यह जीव स्वभावसे चैतन्यमई है व अतीन्द्रिय सुखका धारी है। संसारमें रहता हुआ कर्मोंके उदयसे अहंकार आदि नाना भावोंमें परिणमन कर जाता है। कहा है—

जानतापि मयाकारि हिंसाकर्म महत्तरम्।
तत्केवलं प्रमादाद्वा यद्वेच्छता यशश्चयम् ॥ १८ ॥
प्राणान्तेऽपि न हंतव्यः प्राणी कश्चिदिति श्रुतिः।
मया चाष्टसहस्राह्ते हता निर्दयचेतसा ॥ १९ ॥
आफलोदयमेवैतत्कृतं कर्म शुभाशुभम्।
शक्यते नान्यथा कर्तुमातीर्थाधिपतीनपि ॥ २० ॥
यत्स्फाटिको मणिः स्वच्छः स्वभावादिति भावतः।
सोऽप्युपाधिबलादेव रक्तपीतादिकां व्रजेत् ॥ २१ ॥
तथ.यं चित्स्वभावोऽपि जीवोऽतीन्द्रियसौख्यवान्।
धत्ते मानादिनानात्वमुदयादिह कर्मणाम् ॥ २२ ॥

(नोट–सम्यग्दृष्टी गृहस्थका ऐसा ही भाव रहता है। वह कषायोंको न रोक सकनेके कारण गृहस्थ सम्बन्धी सब काम युद्धादि करता है, परन्तु अपनी निन्दा गर्हा किया करता है। कर्मकी तीव्र प्रेरणासे काम करता है। आपको स्वभावसे अकर्ता व अभोक्ता ही समझता है।)

जब तक जम्बूकुमार अपने मनमें अपने कार्यकी आलोचना कर रहे थे, तब तक रत्नचूलादि राजा इस प्रकार कह रहे थे कि गुण स्वयं निर्गुण होने पर भी अर्थात् गुणमें दूसरा गुण न होने पर भी वे गुण किसी द्रव्यके ही आश्रय पाए जाते हैं। हे स्वामी! आप बड़े गुणवान हैं, आपमें ऐसे गुण हैं जिनका वर्णन नहीं हो सक्ता है। दूसरे लोग परकी सहायतासे जय प्राप्त करने पर भी अभिमानसे उद्धत होजाते हैं। आपने विना किसीकी सहायतासे केवल अपने ही पराक्रमसे विजय प्राप्त की है तब भी आप मद-रहित व रागरहित हैं। जिस वृक्षमें आमके फल लदे होते हैं वही झुकता है, फलरहित वृक्ष नहीं झुकता है। हे सौम्यमूर्ति! आपके समान कौन महापुरुष है जो विजयलाभ करके भी शांत भावको धारण करे?

इस तरह परस्पर अनेक राजा स्वामीकी तरफ लक्ष्य करके बातें कर रहे थे कि इतनेमें अकस्मात् व्योमगति विद्याधर बोल उठा—हे स्वामी जम्बूकुमार! जब आप युद्धमें वीरोंका संहार कर रहे थे तब इस मृगांक राजाने भी अपना पुरुषार्थ प्रगट किया था। आपके सामने हे स्वामी! मैं क्या कह सकता हूं, आपका पुरुषार्थ तो वीरोंसे प्रशंसनीय है। जैसा मैंने सुना था वैसा मैंने प्रत्यक्ष देख लिया। मृगांककी प्रशंसा सुनकर रत्नचूल क्रोधमें आकर कहने लगा—रत्न-चूल इस मिथ्या कथनके भारको सह नहीं सका।

रत्नचूलको अपनी हार होनेसे जितना दुःख नहीं हुआ था, उससे

अधिक दुःख मृगांकके बलकी प्रशंसा सुननेसे व उसके मिथ्या अहं-कारसे हो गया। कहा है—जो गुण रहित है वह गुणीको नहीं यह मान सक्ता है। गुणवान गुणीको जानकर ईर्षाभाव कर लेता है। वास्तवमें इस जगतमें महान् गुणी भी विरले हैं व गुणवानोंके साथ प्रीति करनेवाले भी विरले हैं। हे व्योमगति विद्याधर! तू बुद्धिमान है, तुझे ऐसे मृषा वचन नहीं कहने चाहिये। कहीं आकाशके फूलोंसे वंध्याके पुत्रका मुकुट बन सक्ता है। मेरी सेना बड़ेर परा-क्रमी योद्धासे भी नहीं जीती जासक्ती थी, उसको केवल स्वामी जंबूकुमारने ही जीती है। यदि यह एक वीर योद्धा संग्राममें नहीं होता तो मैं क्या कर सक्ता था सो तुम देख लेते। अभी भी यदि मृगांकको गर्व है तो वह आज भी मेरे साथ युद्ध कर सक्ता है। हम दोनों यहां ही पर विद्यमान हैं। कुमार इस बीचमें माध्यस्थ रहे। केवल तमाशा देखने लगे कि क्या होता है।

मृगांक व रत्नचूलका युद्ध।

रत्नचूलके वचनोंको सुनकर मृगांकको भी क्रोध आगया। ईंधनोंको रगड़नेसे धूआं निकलता ही है। कहने लगा—हे रत्नचूल! जैसा तू चाहता है वैसा ही हो। काला भी सुवर्ण अग्निसे भिड़नेपर शुद्ध होजाता है। अब तू विलम्ब न कर। ऐसा कह कर युद्धके लिये तैयार होगया। कुमारने रत्नचूलको छोड़ दिया। दोनोंमें परस्पर युद्ध छिड़ गया। कुमार मौनसे बैठे हुए तमाशा देखने लगे। कुमारने विचार किया कि बीचमें बोलना ठीक नहीं होगा। माध्यस्थ

रहना ही सुंदर है। यदि मैं मृगांकको मना करता हूं तो इसके बलकी लघुता होती है और मैं मृगांकका पक्ष लेता हूं, ऐसा रत्नचूल विपक्षीको होगा। यदि मैं रत्नचूलको मना करता हूं तौ भी रत्नचूलको घमण्ड होजायगा। रत्नचूल और मृगांक दोनोंने कुमारको नमस्कार किया और रणक्षेत्रमें युद्ध करने लगे। दोनों ओरकी सेनाके योद्धा सावधानीसे लड़ने लगे। चारों प्रकारकी सेना परस्पर भिड़ गई। दोनोंने अहंकारमें भरकर राम रावणके समान घोर युद्ध किया। साधारण शस्त्रोंसे युद्ध किये जानेपर कोई नहीं हारा। तब रत्नचूलने क्रोधवान होकर विद्यामई युद्ध प्रारम्भ किया। मृगांक भी विद्यामई युद्धमें सावधान होगया। रत्नचूलने सब सेनामें ऐसी धूला फैला दी कि मृगांककी सेना व्याकुल होगई। तब मृगांकने पवनके शस्त्रसे उस राज्यको उड़ा दिया। तब अग्निबाण चलाकर रत्नचूलने सेनामें आग लगादी। तब मृगांकने जलकी वर्षा करके अग्निको शांत किया। इस तरह विद्यामई शस्त्रोंसे बहुत देरतक युद्ध हुआ। अंतमें रत्नचूलने नागपाशिसे मृगांकको बांध किया। अपनेको विजयी मानकर व मृगांकको दृढ़ बंधनोंसे बांधकर रणक्षेत्रसे जाने लगा। तब जम्बूस्वामीने तुर्त मना किया।

हे मूढ़! मैं मृगांकके साथ हूं, मेरे होते हुए तू इसे कहां लिये जारहा है? शेषनागके सिरकी उत्तम मणिको कौन ले सक्ता है? कालके मुखसे कौन अपनेको बचा सक्ता है? महा मेरु पर्वतको कौन हाथसे हिला सक्ता है? सिंहकी शय्यापर सोकर कौन

समवशरणमें वंदनाके लिये पधारे। श्री वर्द्धमान भगवानके मुखकमलसे धर्मोपदेश सुना। सुनकर उसका मन भोगोंसे उदास होगया। अपने मनमें विचारने लगा कि यह संसार असार है, चंचल है, धनादि सब जलके बुद् बुदके समान क्षणिक हैं। उसी दिन उस राजाने आठ कर्मोंको नाश करनेके लिये सर्व परिग्रह त्याग कर स्वर्ग व मोक्ष-सुखको देनेवाली निर्ग्रंथकी दीक्षाको ग्रहण कर लिया। कुछ दिनोंके पीछे सुप्रतिष्ठ मुनि सर्व श्रुतके पारगामी होगए। तथा वर्द्धमान जिनेश्वरके ग्यारह गणधरोंमें चौथे गणधर हुए। अपने पिता गणधरको एक दिन देखकर सौधर्मने भी कुमार वयमें वैराग्यवान हो, मुनिपदको स्वीकार कर लिया। वह फिर श्री वीर भगवानका पांचमा गणधर होगया। वही मैं तेरे सामने भावदेवका जीव सुधर्म नामका बैठा हू और तू भवदेवका जीव है। ऐसा तू अपने पूर्व जन्मका वृतांत जान। हे वत्स! संसारी जीव कर्मोंके आधीन होकर अपने कर्म विनाशक वीतराग भावको न पाते हुए संसारमें भ्रमण किया करते हैं। तुम छट्ठे स्वर्गमें विद्युन्माली देव थे, सो वहांसे आकर सेठ अर्हदासके सुखकारी पुत्र हुए हो। तेरी स्वर्गकी चारों देवियां भी वहांसे च्युत होकर सागरदत्त आदि श्रेष्ठियोंकी चारों पुत्रियां जन्मी हैं। उन चारोंके साथ तेरा विवाह होगा। वे पूर्व स्नेहवश ही तेरी चार भार्या होंगी।

जम्बूकुमारका वैराग्य।

मुनिराजके मुखसे अपना भवांतर सुनकर जंबूस्वामी कुमारके

मनमें तीव्र वैराग्य बढ़ गया। विनय पूर्वक प्रार्थना करने लगा कि मैं संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होगया हूं। आप मेरे विनाकारण परम बंधु हैं। आप मेरा संसारसागरसे उद्धार कीजिये। कृपा करके मुझे निर्ग्रन्थ दीक्षा प्रदान कीजिये, मेरी इच्छा भोगोंमें नहीं है, आत्माके दर्शनकी ही भावना है। कुमारकी वाणीको सुनकर महामुनि समाधानकारी वचन साम्य मुखसे कहने लगे। वह अवधिज्ञानके बलसे जान गए कि वह अति निकट भव्य है। भाषा समितिकी शुद्धिसे कोमल वाणी प्रगट करने लगे। हे वत्स ! तेरी अवस्था क्रीड़ा करने योग्य है। कहां तेरी वय और कहां तेरा यह कठिन दीक्षाका श्रम जो महान पुरुषोंसे भी कठिनतासे पालने योग्य है। यदि तेरे मनमें दीक्षा लेनेकी तीव्र उत्कंठा है तो तू अपने घरमें जा। वहां बंधुवर्गोंको पूछकर उनका समाधान करके परस्पर क्षमाभाव करादे, फिर लौटकर उस कर्म क्षयकारी निर्ग्रंथ दीक्षाको ग्रहण कर। यही पूर्वाचार्योंके द्वारा बताया हुआ दीक्षा लेनेका क्रम है।

सौधर्मसूरिके वचनोंको सुनकर जंबूकुमार विचारने लगा कि यदि मैं अपने भीतरी हठसे घर नहीं जाता हूं तो गुरुकी आज्ञाका लोप होना ठीक नहीं होगा। इससे मुझे शीघ्र ही अपने घर अवश्य जाना चाहिये। पीछे लौटकर मैं अवश्य इस दीक्षाको ग्रहण करूंगा। ऐसा मनमें निश्चय करके कुमारने सौधर्म गुरुको नमस्कार किया और अपने घर प्रस्थान किया। घर पहुंचकरके कुमारने अपनी माता जिनमतीको विना किसी गुप्त बातको रक्खे हुए अपने

मनका सर्व हाल जैसाका तैसा कह दिया। हे माता! मैं अवश्य इस संसारसे वैराग्यवान हुआ हूं, अब तो मैं अपनी हथेलीमें रक्खा हुआ ही आहार ग्रहण करूंगा।

इस वार्तालापको सुनकर सती जिनमती कांपने लगी जैसे मानो पवनका झोका लगा हो। फलैसे कमलिनी मुरझा जाती है इस-तरह जिनमती उदास होगई। कहने लगी—हे पुत्र! ऐसे वज्रपा-तके समान कठोर वचन क्यों कहे? इस कार्यके होनेमें अकस्मात् क्या कारण हुआ है सो कह। तब कुमारने समाधान करते हुए जो कुछ सुधर्माचार्यने वर्णन किया था सो सब कह दिया।

जंबूकुमारके पूर्वजन्मकी वार्ता सुनकर जिनमतीके भीतर धर्म-बुद्धि उत्पन्न हुई। चित्तको समाधान करके उसने सेठ अरहदासके आगे सर्व वृत्तान्त कह दिया कि यह चरमशरीरी कुमार है यह जैन दीक्षाको लेना चाहता है। अर्हद्दास इस वचनको सुनते ही मूर्छित होगया, महा मोहका उदय आगया, हाहाकार शब्द रटने लगा। किन्हीं उपायोंसे सेठजीने मूर्छा छोड़ी, फिर उठकर इसतरह आकुल हो विलाप करने लगा कि उसका कथन कौन कवि कर सक्ता है। फिर समाधान-चित्त होकर अर्हद्दासने एक चतुर दूतको भेजा कि वह यह सब बात समुद्रदत्त आदि सेठोंको कहे। वह दूत शीघ्र ही पहुंचा और चारों सेठोंको एकत्र कर विवाहका निषेधक निवेदन किया। अंतमें कहा कि आपके समान सज्जनोंका समागम बडे भाग्यसे मिला था सो हमारा दुर्भाग्य है कि अकस्मात् विघ्न आ खडा हुआ।

शस्त्रपातके समान दुःखदाई इन कठोर वचनोंको सुनते ही चारों सेठ कांपने लगे, मनमें आश्चर्य हो आया। शोचसे आंखोंमें पानी आगया, आकुलित होकर कहने लगे। क्या कुमार कहीं अन्य कन्यासे विवाह करना चाहते हैं, या कोई और कारण है सो सच सच कहो। तब दूतने बड़ी चतुराईसे यह सच बात कह दी कि अहो जम्बूस्वामी तो संसारसमुद्रसे शीघ्र तरना चाहते हैं। वह संसारके दुःखोंसे भयभीत हैं। निश्चयसे कामभोगोंसे उदासीन हैं, उनके भीतर मुक्तिरूपी कन्याके लाभकी भावना है। वे अवश्य जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण करेंगे। इस बातको सुनकरके चारों सेठ उदास होगए। और घरके भीतर जाकर उन कन्याओंको बुलाया और उनको समझाने लगे। वे कन्या मन, वचन, कायसे कुलाचार व शीलव्रतको पालनेवाली थीं। हे पुत्री! सुनाजाता है, जंबुकुमार भोगोंसे उदास होगये हैं व मोक्षलाभके लिये तप पूर्वक व्रत लेना चाहते हैं। जैसी उनकी इच्छा, उनको कौन रोक सक्ता है? अभी तक हमारी कोई हानि नहीं है, तुम्हारे लिये दूसरा वर देखलिया जायगा। कहा है—

तद्गृह्णातु यथाकामं का नो हानिस्तु सांप्रतम्।
भवतीनां समुद्वाहे भवेच्चान्य वरोऽपरः॥ ७० ॥

कन्याओंकी विवाहकी दृढ़ता।

पिताके इन वचनोंको सुनकर पद्मश्री उसी तरह कांपने लगी जैसे कोई योगीके प्रमादसे प्राणीकी हत्याके होजानेपर योगीका तन कंपित होजाता है। पद्मश्री कहने लगी—हे पिता! ऐसे लज्जाकारी अशुभ वचन

हे स्त्रियो ! वही विपत्तिमें पड़ना चाहता हूं। यदि मैं तुमसे संसर्ग करके भोग भोगूं, और मोहसे कर्म बांधूँ—जब कर्मोंका उदय होगा और मैं भवसागरमें डूबूंगा तब मुझे कौन उद्धार करेगा ?

इस दृष्टांतसे पद्मश्रीकी कथाका खण्डन होगया।

कनकश्रीकी कथा।

तब कनकश्री कौतूहलसे पूर्ण कथा कहने लगी—रमणीक कैलाश पर एक बन्दर रहता था। एक दिन वह पर्वतकी चोटीपर चढ़ गया। यकायक वह गिर गया। शरीरके खण्ड खण्ड होगए। शांत भावसे अकाम निर्जरासे मरकर एक विद्याधरका पुत्र हुआ। एक दफे बड़ी आयु पानेपर विद्याधरने मुनि महाराजसे नमन करके अपना पूर्व भव पूछा। मुनि महाराजने अवधिज्ञान नेत्रसे देखकर कह दिया कि पूर्व जन्ममें तुम बन्दर थे। कैलाशसे गिरकर पुण्यके फलसे विद्याधर हुए हो। इस बातको सुनकर विद्याधरने कुमति ज्ञानसे यह मनमें निश्चय कर लिया कि जिस स्थानसे मरकर मैं कपिसे विद्याधर हुआ हूं, उसी स्थानसे गिरकर यदि मैं फिर मरूंगा तो अवश्य देव हो जाऊंगा। इसलिये मुझे अवश्य जाकर कैलाशके शिखरसे गिरकर मरना चाहिये। एक दिन विद्याधरने अपनी स्त्रीसे अपने मनकी बात कही कि हे प्रिये ! कैलाशके शिखरसे गिरकर मरनेसे स्वर्ग मोक्षके फल मिलते हैं, इससे मैं कैलाशसे पड़ूंगा। उसकी स्त्री सुनकर दीनमन हो दुःखित होकर रुदन करने लगी व कहने लगी—हे स्वामी ! आप बड़े बुद्धिमान

हैं, आप क्यों मरण चाहते हैं, आप तो विद्याधर हैं, आपको किस बातकी कमी है? उस मूर्खने स्त्रीकी बातपर ध्यान नहीं दिया–जाकर कैलाशके शिखरसे पड़ा तो आर्तध्यानसे मरकर फिर वहीं लाल मुखका बन्दर पैदा होगया। हे सखियो! जैसे मूर्ख विद्याधरने स्वाधीन सम्पदाको छोड़कर मरण करके पशु पर्याय पाई वैसे हमारे स्वामीका व्यवहार है। महारमणीक सर्व संपदाओंको छोड़कर आगेकी वांछासे तप करने जाते हैं, फिर ये संपदाएं मिले या न मिले, क्या भरोसा है।

जम्बूस्वामीकी कथा।

जम्बूस्वामी कनकश्रीकी कथाको सुनकर उसको उत्तर देनेके लिये एक कथा कहने लगे। विन्ध्याचल पर्वतपर एक बलवान कोई बंदर था। वह बड़ा कामी था। वह वनके बंदरोंको मार डालता था। ईर्षावान भी बहुत था। अपनी बंदरीसे जो बच्चे होते थे उनको भी मार डालता था। अकेला ही काम क्रीड़ा करते हुए तृप्त नहीं होता था। एक दफे उसीका एक बंदर पुत्र हुआ, वह उसके जाननेमें न आया। किसी तरह बच गया। जब वह पुत्र युवान हुआ, तब कामातुर होकर अपनी माताको स्त्री मानकर रमण करनेको उद्यत हुआ। तब उसके पिता बंदरने देख लिया और उसके मारनेको क्रोध करके दौड़ा। उस युवान बंदरने पिताको दांतोंसे व नाखूनोंसे काटा। दोनों पितापुत्र बहुत देरतक परस्पर नख व दांतोंसे काटकाटकर युद्ध करने लगे। घबड़ाकर बूढ़ा बंदर भाग निकला

तब युवान बंदरने उसका पीछा किया। जब वह बहुत दूर निकल गया तब युवान बंदर लौट आया। वृद्ध बंदरको बहुत प्यास लगी। वह पानी पीनेको कीच सहित पानीमें घुसा। मैले पानीको पी लिया। परन्तु कीचड़में ऐसा फंस गया कि निकल न सका। मूर्ख विषयवासनासे आतुर होता हुआ मर गया। हे प्रिये! मैं इस बंदरके समान इस संसारमें विषयोंके भीतर यदि फंस जाऊं तो मुझे कौन उद्धार करेगा? जंबूस्वामीके इस उत्तरके बलसे कनकश्री मुरझा गई, तब कथा कहनेमें चतुर तीसरी विनयश्री बोली—

विनयश्रीकी कथा।

एक कोई दरिद्री पुरुष था, जिसका नाम संख था। वह रोज सवेरे वनमें लकड़ी काटने जाया करता था। ईंधन लाकर विक्रय करके बड़े कष्टसे असाताके उदयसे पेट पालता था। एक दफे लकड़ीका दाम बाजारमें अधिक मिला। तब भोजनमें खर्च करनेके पीछे एक रुपया बच गया। तब अपनी स्त्रीके साथ सम्मति करके उस रुपयेको भूमिमें गाड़ दिया कि कभी आपत्ति पड़ेगी तो वह काम आयगा। कुछ दिन पीछे एक प्रवासी यात्री उसी वनमें आया। वहां उसने अपना रत्नोंका पिटारा गाड़ दिया और तीर्थ-यात्रादिके लिये चला गया। उस दलिद्री संखने उसे गाड़ते देख लिया था। जब वह प्रवासी चला गया तब संखने उस रत्नभांडको लोभसे दूसरी जगह गाड़ दिया। और मनमें विचारने लगा कि इसमेंसे जब चाहूंगा एक एक रत्न निकालता रहूंगा। घरमें आकर

अपनी स्त्रीसे सर्व हाल कहा कि पुण्यके उदयसे एक रत्नोंका पिटारा मुझे मिल गया। मैंने उसे यत्नपूर्वक गाड़ दिया है। हे प्रिये! यह बात सच है, मैं झूठ नहीं कहता हूं।

इस बातको सुनकर स्त्रीको आश्चर्य हुआ, तो भी हर्षसे फूल गई। हे भद्र! बहुत अच्छा हुआ, तुम चिरकालतक जीओ। मेरी सलाह और मानो। जो एक रुपया तुमने एकत्र किया है उसको भी उस रत्नभांडमें कुशलतासे घर दो। हम तुम दोनों अपना नित्य कर्म बराबर करते रहें। मोहके कारण स्त्रीके वचनोंको दरिद्रीने मान लिया कि तूने ठीक कहा–दरिद्रीने वैसा ही किया। दोनों ही जने वनसे काष्ठ ले जाते थे और विक्रय करके पेट भरते थे। कुछ दिनोंके बाद रत्नभांडका स्वामी पीछे उसी वनमें आया। अपने रत्नभांडको जहां रक्खा था वहां न पाकर इधर उधर भूमि खोदकर ढूंढ़ने लगा। बहुत देरके परिश्रमके बाद पुण्यके योगसे उसको वह रत्न पिटारा मिल गया। उसको लेकर वह आनन्दसे अपने घर चला गया। पुण्यके बलसे चंचला लक्ष्मी गई हुई भी सुखसे मिल जाती है। उस दरिद्रीने एक घड़ेके भीतर रत्न पिटारी रखकर रुपया रख दिया था। एक दिन वह वहां आकर खोदता है तो घड़ेको खाली पाता है। रत्न पिटारा भी गया व एक रुपया भी गया। वह मूर्ख हावभाव करके सिरको पीट पीटकर रोने लगा। हा! रत्न पिटारेके साथ मेरा पहला संचय किया हुआ रुपया भी चला गया। हा! पापके उदयसे मैं ठगा गया। मैंने प्राप्त धनको

न भोगमें लगाया न दानमें लगाया। जिसके स्वाधीन लक्ष्मी हो फिर भी वह उसका भोग न करे तो वह पीछे उसी तरह पछताएगा जैसे संख दरिद्रीको पछताना पड़ा।

जम्बूस्वामीकी कथा।

विनयश्रीकी कथा सुनकर जम्बूस्वामीने फिर एक कथाके बहाने उत्तर दिया। लब्धदत्त नामका एक बनिया था। व्यापारके लिये बाहर गया था, सो मार्गमें एक भयानक वनमें आ पड़ा। पापके उदयसे उसके पीछे एक भयानक हाथी क्रोधित हो उसको मारनेको दौड़ा। उससे भयभीत होकर वह बनिया भागा और यकायक एक कूपके ऊपर वटवृक्षकी शाखा पकड़कर लटक गया। उस शाखाकी जड़को दो चूहे एक सफेद एक काले काट रहे थे। वणिक देखकर विचारने लगा कि क्या किया जाय। यह शाखा कटी कि कूपके भीतर अवश्य गिर जाऊँगा, शरीरके शतखण्ड हो जायगे। ऐसा विचारते हुए नीचे देखा तो कूपमें एक बड़ा अजगर बैठा हुआ है, देखकर कांपने लगा। फिर देखा तो चारों कोनोंसे निकले हुए भयानक सांप कूपमें बैठे हैं। उस समय उस वणिकको जो संकट हुआ वह कहा नहीं जा सक्ता। हाथी क्रोधमें होकर उस वटवृक्षको अपने कन्धेसे उखाड़नेका उद्यम करने लगा व ध्वनि करने लगा। जहां वह वणिक लटक रहा था उसके ऊपर एक मधु मक्खियोंका छत्ता था। यकायक मधुकी बूँद उस वणिकके मुखमें आपड़ी। उस बूँदके स्वादसे वह बड़ा राजी होगया।

इतनेहीमें एक विद्याधर आकाश मार्गसे जारहे थे उसने वणिकको कूपके ऊपर लटकते देखकर वह विमानसे उतरा और बोला—हे मूढ़! मैं विद्याधर हूँ, मैं तुझे निकाल सक्ता हूँ! मेरी भुजाको पकड़, तू निकल जा, संकटसे बच जा। सुनकर वह मधुके रसके स्वादका लोलुपी कहने लगा—थोड़ी देर ठहर जाओ, जबतक एक मधुकी बूँद मेरे मुखमें और न आजावे। दयावान विद्याधरने फिर भी कहा कि रे मूढ़! तेरा मरण निकट है, बिंदु मात्रके लोभसे कूपमें प्राण न गमा। तू हलाहल विष खाकर जीना चाहता है सो ठीक नहीं है। मेरी भुजा पकड़, देर न कर। इस तरह बहुत बार समझाया परन्तु वह रसना इन्द्रियके लोभवश नहीं समझा। विद्याधरने उसे मूर्ख समझा और वह अपने मार्गसे चला गया। थोड़ी देरमें मूषकोंके द्वारा शाखा कटनेसे वह कूपमें गिर पड़ा और अजगरने उसे भक्षण कर लिया। जिस तरह लब्धदत्त वणिक मधु-बिंदुके लोभसे काल ग्रसित हुआ वैसे मैं इस तुच्छ विषयसुखके लिये महा भयानक कालके मुखमें प्रवेश करना नहीं चाहता हूं।

विनयश्री स्वामीसे वचन सुनकर मूढ़तारहित होगई।

अब चौथी स्त्री रूपश्री कथा कहने लगी—

नियश्रीकी कथा।

एक दफे मनोहर वर्षाकाल आगया। मेघ छा गए। पानीकी वर्षासे तलैया तलाव भर गए, बिजली चमकने लगी। मार्गमें कीचड़से आना जाना कठिन होगया। दिनमें अन्धकार छागया।

ऐसे समयमें एक कुकलास (किरला) भूखी होकर अपने विलसे निकली। वह घूमती थी। उसने एक काले भयानक दंदशूक सर्पको देखा। ऐसे भयानक कालस्वरूप सर्पको देखकर वह भयसे चिंतातुर हो भागी और नदीमें एक नकुलके विलमें चली गई। वह सर्प भी उसीके पीछे पीछे उसी विलमें घुस गया। वहां सर्पने उसको तो छोड़ दिया। और विलके भीतर बहुत इसका कुटुम्ब मिलेगा उसको पकडूंगा इस आशासे चला गया। नकुलोंने सर्पको देखकर क्षुधासे आतुर हो उसे मारडाला और खा लिया।

जैसे इस सर्पकी दशा हुई वैसे हमारे स्वामी विवेक रहित हैं जो सामने पड़ी लक्ष्मीको छोड़कर आगेकी आशा करके पथभ्रष्ट हो रहे हैं। रूपश्रीकी कथा सुनकर जम्बूकुमार उसे समझानेके लिये एक सुंदर कथा कहने लगे—

जम्बूकुमारकी कथा।

इस पृथ्वीपर एक शृगाल था। रातको वह नगरके भीतर गया, वहां एक बूढे बैलको मरा हुआ देखकर प्रसन्न होगया कि अब मेरे मनका मनोरथ सिद्ध होगा, वह शृगाल उस बैलके हाड़पिंजरके भीतर घुस गया। मांसको खाते खाते तृप्त नहीं हुआ। इतनेमें रात चली गई। सबेरा होगया तब नगरके लोगोंने उस शृगालको देख लिया, वह उस अस्थिके पंजरसे निकलकर भाग न सका, चित्तमें व्याकुल होगया कि आज मेरा मरण अवश्य होगा। इतनेमें किसी नागरिकने शृगालक दोनों कान व उसकी पूंछ किसी औषधि बनानेके

लिये फाट की। फिर वह विचारने लगा कि इसतरह भी जीता बचे तो ठीक है, अभी तो कुछ बिगड़ा नहीं है। इतनेमें किसीने पत्थर लेकर उसके दांत तोड़कर निकाल लिये कि इनसे घर जाकर वशीकरण मंत्र सिद्ध करूंगा। तब भी शृगाल विचारने लगा कि इसी तरह जान बचे तो वनमें भाग जाऊं। इतनेमें कुत्तोंने आकर क्षणमात्रमें मार डाला। रसना इन्द्रियके वश वह शृगाल जैसे मारा गया व कुत्तोंसे खाया गया वैसे मैं विषयोंके मोहमें अंधा होकर नष्ट होना नहीं चाहता हूं। कौन बुद्धिमान जान बूझकर कुमार्गमें पड़ेगा। यदि मैं इन्द्रियोंके विषयोंके वशमें निर्बल होकर फंस जाऊं तो फिर मेरा कौन उद्धार करेगा? हे प्रिये! तुम्हारे वचन परीक्षा में उचित नहीं बैठते हैं।

इसतरह उन चारों महिलाओंकी नाना प्रकारकी वार्तालापोंसे महात्मा कुमारका मन किंचित् भी शिथिल नहीं हुआ।

विद्युच्चरका आगमन।

इधर कुमारके साथ स्त्रियां वार्तालाप कर रही थीं, उधर उस रात्रिको विद्युच्चर नामका एक चोर कामलता वेश्याके घरसे चोरी करनेको निकला। कोतवालसे अपनी रक्षा करता हुआ वह चोर उस रातको अर्हद्दास सेठके घर चोरी करनेको आया। जहां कुमारका शयनालय था वहांपर आगया। कुमारका अपनी स्त्रियोंसे जो वार्तालाप होरहा था उसको सुनकर विचारने लगा कि पहले इस कौतुकको देखूं कि रत्नोंको चुराऊं? सुननेकी दृढ़ आकांक्षा होगई।

यही निश्चय कर लिया कि पहले सब सुनना चाहिये फिर धनको चुराऊंगा। वह ध्यानसे उनकी वार्ताको सुनने लगा। वर व कन्याओंकी कथाओंको सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचने लगा कि कुमारके धैर्यकी महिमा कौन कह सक्ता है। इन वधुओंने किंचित् भी कुमारके मनको नहीं डिगाया। उधर जंबूकुमारकी माता घबड़ाई हुई मकानमें इधर उधर फिर रही थी। बारबार कुमारके शयनालयके द्वारपर आकर देखती थी कि इन स्त्रियोंके मोहमें कुमार आया कि नहीं।

यकायक भीतके पास खड़े हुए चोरको देखकर भयभीत हो बोली—यह कौन है? तब विद्युच्चरने कहा कि माता! घबड़ा नहीं, मैं प्रसिद्ध विद्युच्चर नामका चोर हूं। मैं तेरे नगरमें नित्य चोरी किया करता हूं। अबतक मैंने बहुतोंका धन चुराया है। तेरे घरसे भी सुवर्णरत्न चुराये हैं। और क्या कहूं। इसीलिये आज भी आया हूं। कुमारकी माता कहने लगी—हे वत्स! तुझे जो चाहिये सो मेरे घरसे ले जा। तब विद्युच्चरने जिनमतीसे कहा—हे माता! मुझे आज धन लेनेकी चिंता नहीं है, किंतु मैं बहुत देरसे यह अपूर्व कौतुक देख रहा हूं कि युवती स्त्रियोंके कटाक्षोंसे इस युवानका मन किंचित् भी विचलित नहीं हुआ है। हे माता! इसका कारण क्या है सो कह। अब तु मेरी धर्मकी बहन है, मैं तेरा भाई हूं। तब जिनमती धैर्य धारकर कहने लगी—एक ही मेरा यह कुलदीपक पुत्र है। मैंने मोहसे इसका आज विवाह कर दिया है। परन्तु यह

विरक्त है व तप लेना चाहता है। सूर्यके उदय होते ही वह नियमसे तप ग्रहण करेगा, इसमें कोई संशय नहीं है। उसके वियोगरूपी कुठारसे मेरे मनके सैकड़ों खंड होरहे हैं। इसीलिये मैं घबड़ाई हुई हूं और वारवार इस घरके द्वारपर आकर देखती हूं कि कदाचित् पुत्रका संगम अपनी वधुओंके साथ होजावे।

जिनमतीके वचन सुनकर विद्युच्चरके मनमें दया पैदा होगई, कहने लगा—हे माता! मैंने सब हाल जान लिया। तू भय न कर, मुझसे इस कार्यमें जो हो सकेगा मैं करूंगा। तू मुझे जिस तरह बने कुमारके पास शीघ्र पहुंचा दे। मैं मोहन, स्तंभन, वशीकरण मंत्र तंत्र सब जानता हूं। उन सबसे मैं प्रयत्न करूंगा। आज यदि मैं तेरे पुत्रका संगम वधुओंसे न करा सकूंगा तो मेरी यह प्रतिज्ञा है, जो उसकी गति होगी वह मेरी गति होगी। ऐसी प्रतिज्ञा करके वह विद्युच्चर बाहर खड़ा रहा। माताने धीरे२ द्वार खटखटाया। हाथकी अंगुलीसे द्वारपर थपकी दी, परन्तु लज्जावश मुखसे कुछ नहीं बोली। कुमारने शीघ्र किवाड़ खोल दिये। कुमारने नमन किया, माताने आशीर्वाद दिया।

तब जंबूकुमारने विनयसे पूछा—हे माता! यहां इस समय आनेका क्या कारण है? तब जिनमती कहने लगी कि जब तुम गर्भमें थे तब मेरा भाई—तुम्हारा मामा वाणिज्यके लिये परदेश गया था। आज वह तेरे विवाहका उत्सव सुनकर यहां आया है—तुम्हारे दर्शनकी बड़ी इच्छा है, वह बहुत दूरसे पधारा है। जिनमतीके वचन

सुनकर कुमारने कहा कि मेरे मामाको शीघ्र यहां बुलाओ। पुत्रकी आज्ञा होनेपर माता शीघ्र विद्युच्चरको जंबूकुमारके पास ले गई। जम्बूकुमार मामाको देखकर पलंगसे उठे और आदर सहित स्नेह पूर्ण हो गले मिले। स्वामीने पूछा-इतने दिन कहां २ गए थे, मार्गमें सब कुशल रही ना?

सुनकर विद्युच्चरने आनजेकी बुद्धिसे कहा कि हे सौम्य! सुन, मैंने इतने दिन कहां कहां व्यापार किया।

दक्षिण दिशामें समुद्र तक गया हूं चंदनके वृक्षोंसे पूर्ण ऊंचे मलयागिर पर, सिंहलद्वीपमें (वर्तमान सीलोन) केरलदेशमें, मंदिरोंसे पूर्ण व जैनोंसे भरे हुए द्राविड़देश (तामीलमें), चीणमें, कर्णाटकमें, काम्बोजमें, अति मनोहर बांकीपुरमें, कोंतलदेशमें होकर उन्नत सह्य पर्वतके वहां आया। फिर महाराष्ट्र देशमें गया। वहांसे अनेक वनोंसे शोभित वैदर्भदेश बरारमें गया। फिर नर्मदा नदीके तटपर विंध्य पर्वतके वहां पहुंचा। विंध्याचलके वनोंको लांघकर आगे आहीर देशमें, चउलदेशमें, भृगुकच्छ (भरोंच)के तटपर आया। वहां धवल सेठका पुत्र श्रीपाल राजा राज्य करता है। कोंकणनगरमें होकर किष्किंध्य नगरमें आया। इत्यादि बहुतसे नगर देखे, फिर पश्चिममें जाकर सौराष्ट्र देश (काठियावाड़) देखा। श्री गिरनार पर्वत पर आया। श्री नेमिनाथ तीर्थंकरके पंचकल्याणकोंके स्थान व वह स्थान देखा जहां श्री नेमनाथने राजीमतीको छोड़कर तप किया था। उसी गिरनार पर्वतसे यदुवंश शिरोमणि नेमनाथ मोक्ष प्राप्त हुए हैं।

भिल्लमाल विशाल देशमें गया। अर्बुदाचल (आबू) पर प्राप्त हुआ। महा रमणीक संपत्ति पूर्ण लाट देशको देखा। चित्रकूट पर्वत होकर मालवादेशमें गया। इस अवंतीदेशके जिन मंदिरोंकी महिमा क्या वर्णन करूं। फिर उत्तर दिशामें गया। शाकंभरी पुरी गया, जो जिन मंदिरोंसे पूर्ण है व मुनियोंसे शोभित है। काश्मीर, कंदहार, सिंधुदेश आदिमें होकर मैं व्यापार करता हुआ पूर्वदेशमें आया। कनौज, गौड़देश, अंग, बंग, कलिंग, जालंधर, बनारस व कामरूप (आसाम)को देखा। जो जो मैंने देखा मैं कहांतक कहूं।

इस तरह परम विवेकी जंबूकुमार स्वामी जगत्पूज्य जयवंत हो जो विरक्तचित्त हो पर पदार्थके ग्रहणसे उदास हो स्त्रियोंके मध्यमें बैठे चोरकी बात सुन रहे हैं।

दशवां अध्याय।

जंबूस्वामी विद्युच्चर वार्तालाप।

(श्लोक १५९ का सारांश।)

मोहरूपी महायोद्धाको जीतनेवाले मल्लिनाथकी तथा सुव्रतोंको बतानेवाले मुनिसुव्रत तीर्थंकरकी स्तुति करता हूं।

विद्युच्चरका समझाना व कथा कहना।

अब विद्युच्चर मामाके रूपमें श्री जंबूकुमार स्वामीको कोमल वचनोंसे समझाता हुआ कहने लगा—हे कुमार! तुम बड़े भाग्यवान हो, ऐश्वर्यवान हो, कामदेवके समान तुम्हारा रूप है। वज्रधारी इन्द्रके समान बलवान हो, चंद्रमाकी किरण समान यशस्वी व शांत हो, मेरु पर्वतके समान धीरवीर हो, समुद्रके समान गंभीर हो, सूर्यके समान तेजस्वी हो, कमलपत्रके समान नम्र स्वभावधारी हो, शरणागतकी रक्षा करनेको बलवान हो। जो जगतमें दुर्लभ भोग सामग्री है सो पूर्व बांधे हुए पुण्यके उदयसे तुमने प्राप्त की है। किनही को दुर्लभ वस्तु मिल जाती है, परन्तु वे भोग नहीं कर सक्ते हैं, जैसे भोजन सामने होनेपर भी रोगी खा नहीं सक्ता। किसीको भोजनकी शक्ति तो है, परन्तु भोगादि सामग्री नहीं मिलती है। जिसके पास मनोज्ञ भोग सामग्री भी हो व भोगनेकी शक्ति भी हो, फिर भी वह भोग न करे तो उसको यही कहा जायगा कि वह दैवसे

ठगा गया है। जैसे किसीके पास स्त्रियां हों, परन्तु उसके काम-भोगका उत्साह न हो। या किसीको काम-भोगका उत्साह हो, परन्तु स्त्रियां न हों। किसीको दान करनेका उत्साह तो है परन्तु घरमें द्रव्य नहीं है। किसीके घरमें द्रव्य है परन्तु दान करनेका उत्साह नहीं है। दोनों बातोंको पुण्यके उदयसे पाकर जो नहीं भोगता है उसे मूर्ख ही कहना चाहिये। मूर्ख मानव खरगोशके सींगको व वंध्याके पुत्रको मारना चाहता है सो उसकी मूर्खता है। जिसके लिये चतुर पुरुष तप करनेका क्लेश करते हैं। वह सब सर्वांग पूर्ण सुख तेरे सामने उपस्थित है, उसको छोड़कर और अधिककी इच्छासे जो तुम तप करना चाहते हो सो यह तुम्हारा विचार उचित नहीं है। दृष्टांतरूपमें मैं एक कथा कहता हूं। सो हे भागिनेय! ध्यानसे सुन—

एक युवान ऊंट था, वह वनमें इच्छानुसार बहुतसे वृक्षोंको खाता फिरता था। एक दिन वह एक वृक्षके पास आया जो कूपके पास था। उसके पत्तोंको गलेको ऊँचा करके खाने लगा। उसके स्वादिष्ट पत्तोंको खाते खाते उसके मुखमें एक मधुकी बूंद पड़ गई। मधुके रसका स्वादका लोभी हो वह विचारने लगा कि इस वृक्षकी सबसे ऊँची शाखाको पकड़नेसे बहुत अधिक मधुका लाभ होगा। मधुका प्यासा होकर ऊपरकी शाखापर बारबार गलेको उठाने लगा तो पग उठ गए, यकायक वह बिचारा कूपमें गिर पड़ा। उसके सब अङ्ग टूट गए। जैसे महा लोभके कारण इस ऊँटकी दशा

हुई; वैसे ही तुम्हारी दशा होगी, जो तुम अज्ञानसे मोहित होकर प्राप्त संपदाको छोड़कर आगेके भोगोंके लाभके लिये तप करना चाहते हो।

जम्बूस्वामीकी कथा।

तब जम्बूस्वामी कहने लगे कि हे मामा! आपके कथनके उत्तरमें मेरी कथा भी सुनो—

एक वणिक पुत्र घरके कार्यमें लीन था। एक दिन व्यापारके लिये स्वयं परदेश गया। मार्ग भूलकर वह एक भयानक वनमें फंस गया। प्यास भी बहुत लगी। पानी न पाकर पश्चाताप करने लगा कि मैं घरसे वृथा ही आकर इस वनके भीतर फंस गया। यदि जल न मिला तो प्याससे मेरा मरण अवश्य होजायगा। ऐसा विचार करते हुए बैठा था कि चोरोंने आकर उसका माल लूट लिया। धनकी हानिके शोकसे व प्याससे पीड़ित होकर वह एक पग भी चल न सका। एक वृक्षके नीचे सोगया, वहां सोते हुए उसने एक स्वप्न देखा कि वनमें एक सरोवर है, उसका पानी मैं पीरहा हूं, जिह्वासे पानीका स्वाद लेरहा हूं। इतनेमें जाग उठा तो देखता है कि न कहीं सरोवर है, न कहीं जल है। हे मामा! स्वप्नके समान सब सम्पदाओंको जानो। यकायक मरण आता है, सब छूट जाता है। ऐसे स्वप्नके समान क्षणभंगुर भोगोंमें महान् पुरुषोंका स्नेह कैसे होसक्ता है?

विद्युच्चरकी कथा।

कुमारकी कथाको सुनकर वास्तवमें वह उसी तरह निरुत्तर होगया जैसे एकांत मतवादी स्याद्वादीके सामने निरुत्तर होजाते हैं। फिर भी वह विद्युच्चर दूसरी कथा कहकर उद्यम करने लगा।

एक कोई वृद्ध बनिया था, वह अपनी स्त्रीसे प्रेम करता था परन्तु उसकी स्त्री नवयौवन व्यभिचारिणी व दुष्टा थी। एक दिन वह घरसे सुवर्णादि लेकर निकल गई। वह काम-लंपटी इच्छानुसार भोगोंमें रत होना चाहती थी। जाते हुए किसी धूर्त ठगने देख लिया, देखकर उसको मीठे वचनोंसे रिझाने लगा।

हे सुंदरी! तुझे देखकर मेरे मनमें स्नेह पैदा होगया है कि न जाने क्या कारण है। जन्मांतरका तेरे साथ स्नेह है ऐसा विदित होता है। वह कहने लगी कि यदि तेरे मनमें मेरी तरफ प्रेम है तो आजसे तुमही मेरे भर्तार हो, दूसरा नहीं है। इस तरह परस्पर स्नेहवान हो वे पति पत्नीके समान रहने लगे, इच्छानुसार कामक्रीडा करने लगे। इस तरह दोनोंका बहुतसा काल वीत गया। एक दिन वह दूसरे कामी पुरुषके साथ स्नेहवर्ती होगई, वह निर्लज्ज घृणा रहित माया व मिथ्या भावसे भरी हुई कामभावसे जलती हुई दोनों हीके साथ रतिकर्म करने लगी। वास्तवमें स्त्रियोंके मनमें कुछ और होता है, वचन कुछ कहती हैं। पण्डितोंको कभी भी स्त्रियोंका विश्वास न करना चाहिये।

एक दिन दुष्टबुद्धिधारी प्रथम जार पुरुष दूसरे पुरुषका आना

जानकर विचारने लगा कि किसीतरह स्त्रीसे उसका पिंड छुड़ाना चाहिये।

उसने जाकर कोतवालसे कहा–कि रात्रिको कोई आकर मेरी स्त्रीके साथ रमण करता है, उसे रात्रिको आकर पकड़ ले तो तुझे सुवर्णका लाभ होगा। ऐसा कह कर वह घर आगया। रात्रि होने पर पहला पति जागता हुआ ही सो गया कि मैं इस स्त्रीके खोटे चारित्रको देखूं। इतनेमें रात्रिको दूसरा जार पति आगया तब वह व्यभिचारिणी पहले पतिके पाससे उठ कर दूसरेके पास चली गई। जब वह दूसरा जार कामातुर हो स्त्रीभोग करनेको ही था कि कोतवाल उसके पकडनेको आगया। कोलाहल होने पर वह दुष्टा पहले जारके साथ आके सोगई। रुद्र स्वभावधारी सिपाहियोंने कहा कि यहां वह जार चोर कहां है। इतनेमें दूसरा जारपति बोल उठा कि मैं तो निन्द्रामें था, मैं नहीं जानता हूं। इधर उधर देखते हुए व स्त्रीके साथ पूर्वपतिको देखकर पूर्वपतिको पकड़ लिया कि यही वह जार है, तथा यही वह स्त्री है। जिसने पकड़ाना चाहा था वही पकड़ा गया। सिपाहियोंने मारते मारते बड़ी निर्दयतासे उसे कोतवालीमें पहुंचाया।

इस बातको देखकर वह स्त्री डरी, कदाचित् मुझे भी सिपाही पकड़ लें। इसलिये उसने भागना निश्चय किया तब उसने दूसरे जारको समझा दिया कि हम दोनों मिलकर यहांसे निकल चलें। उस स्त्रीने घरके वस्त्राभूषणादि बहुमूल्य वस्तु ले ली और जारके साथ घरसे निकली।

मार्गमें गहरी नदी मिली। तब वह दूसरा जार मायाचारसे

ठगनेके लिये बोला कि हे प्रिये! वस्त्राभूषणादि सब मुझे दे दे, मैं पहले पार जाकर एक स्थानमें इनको रखकर पीछे आकर तुझे अपने कंधे पर चढ़ाकर भले प्रकार पार उतार दूंगा। स्वयं वह धूर्त थी ही, उसने उस धूर्तका विश्वास कर लिया। उसने पति जानकर अपने सब गहने कपड़े उतार कर दे दिये। आप नग्न होकर इस तटपर बैठी रही। वह दुष्ट ठग नदी पार करके लौट कर नहीं आया। यह अकेली यहां बैठी रही, तब स्त्रीने कहा—हे धूर्त! तू लौट कर आ। मुझे छोड़कर चला गया? उस ठगने कहा कि तू बड़ी पापिनी है। वहीं बैठी रह। इतनेमें एक शृगाल आगया। जिसके मुखमें मांसपिंड था, पूछ ऊंची थी। उस शृगालने पानीमें उछलते हुए एक मछलीको देखा। तब वह अपने मुखके मांसको पटककर महा लोभसे मछलीके पकड़नेको दौडा। इतनेमें वह खूब गहरे पानीमें चला गया, तब वह कोभी स्यार उसी मांसको लेकर दूसरे वनमें भाग गया, वह स्त्री ऐसा देखकर हंसी कि स्यारको मछली नहीं मिली। उसने विना विचारे काम किया। स्वाधीन मांसको छोडकर पराधीन मांस लेनेकी इच्छा की। वह धूर्त चोर भी दूसरे पारसे कहने लगा—हे मूर्खे! तूने क्या किया, तू अपनेको देख। यह पशु तो अज्ञानी है, हित अहितको नहीं जानता है, तू कैसी अज्ञानी है कि अपने पतिको मारकर दूसरेके साथ रति करने लगी।

इतना कहकर वह धूर्त ठग अपने घर चला गया तब वह स्त्री लज्जाके मारे नीचा मुख करके बैठ रही।

हे भागिनेय ! तुम अपने पासकी लक्ष्मीको छोडकर आगेकी इच्छाको करके मत जाओ नहीं तो हास्यके पात्र होगे।

जम्बूकुमारकी कथा।

तब फिर जंबूकुमार अपने दांतोंकी कांतिको चमकाते हुए कहने लगे—

एक व्यापारी जहाजका काम करता था। एक दिन जहाजपर चढकर वह दूसरे द्वीपमें गया। वहां सर्व माल वेचकर एक रत्न खरीद लिया। तब वह बनिया अपने घरको लौटा। मार्गमें अपने हाथमें रतन रखकर व बारबार देखकर यह विचारने लगा। समुद्रतट पहुंचकर मैं इस महान् रत्नको बेच डालूंगा और हाथी घोडे आदि नाना प्रकारकी वस्तु खरीदूंगा, फिर राजाके समान होकर अपने नगरको जाऊंगा। लक्ष्मीसे पूर्ण हो मंत्री व नौकर चाकर रक्खूंगा। मैं घरमें रह कर स्वस्त्रीके साथ सुखसे जीवन विताऊंगा। मुसक्राते हुए स्त्रियोंको देखूंगा। पुत्र पौत्रादि होंगे उनको देख कर प्रसन्न हूंगा। ऐसा मनमें विचारता जारहा था कि पापके उदयसे व प्रमादसे वह रतन हाथसे समुद्रमें गिर पड़ा, तब उसके मनके सब मनोरथ वृथा रह गए। रतन न दीखने पर हाहाकार करके रोने लगा।

हे मामा ! मैं इस तरह नहीं हूंगा कि धर्मके फलको छोड़कर वर्तमान विषयभोगोंमें फंस कर दुःख भोगूं।

स्वामीके इस उत्तरको सुनकर वह चोर निरुत्तर होगया तथापि वह एक और कथा कहने लगा, जैसे मृदंगको मारनेसे वह ध्वनि निकालता ही है।

विद्युच्चरकी कथा।

एक धनुषधारी शिकारी भील विंध्याचल पर्वत पर रहता था। उसका नाम दृढ प्रहारी था। उसने एक दिन एक वनके हाथीको जो सरोवरमें प्यासा होकर पानी पीने आया था जानसे मार डाला। पापके उदयसे उसी क्षण एक सर्पने भीलको डंस दिया, भील भी मर गया। वह सांप भी धनुषके लगनेसे घायल होकर मर गया। वहां हाथी, भील और सांप तीनों मृतक पड़े थे, इतनेमें एक भूखा स्यार वहां आगया। वहां पर हाथी, भील, सांप व धनुषको पड़ा हुआ देखकर लोभके कारण बहुत हर्षित हुआ। वह स्यार मनमें विचारने लगा कि इस मरे हुए हाथीको छः मासतक निश्चिंत हो खाऊँगा। उसके पीछे एक मासतक इस मनुष्यका शरीर भक्षण करूँगा। उसके पीछे सांपको एक दिनमें खा जाऊंगा। इन सबको छोड़कर आज तो मैं इस धनुषकी रस्सीको ही खाता हूं। उसमें बाण लगा था वह बाण उसके तालूमें घुस गया। पापके उदयसे वह डोरी खाते हुए बहुत कष्टसे मरा।

हे कुमार! जैसे बहुत सुखकी इच्छा करनेसे स्यारका मरण होगया वैसे तुम इस सांसारिक वर्तमानके सुखको छोड़कर अधिक सुखके लिये घरको छोड़ जाओगे तो हास्यको पाओगे।

जम्बुकुमार मामाकी कथाको सुनकर उत्तर देनेके लिये एक रमणीक कथा कहने लगे—

जम्बूस्वामीकी कथा।

एक अति दरिद्री मजदूर था जो वनसे ईंधन लाकर व वेचकर पेट भरता था। एक दिन वनसे कंधेपर भारी बोझा लाया था। दोपहरको उस भारको शिरसे रखकर अपने घरमें ठहरा। वह बिचारा बहुत प्यासा था। तालू सूख गए थे। बोझा लानेका भी कष्ट था। भार रखकर एक वृक्षके नीचे शांतिको पाकर क्षण मात्रके लिये सो गया। नींदमें उस मजदूरने स्वप्न देखा कि वह राज्यपदपर बिराजित है। मणि मोतीसे जड़े हुए सिंहासनपर बैठा है। वारवार चमर ढर रहे हैं। बन्दीजन विरद बखान रहे हैं। हाथी, घोड़े आदि बहुत परिवार हैं। फिर देखा कि राजमहलमें बैठा है। चारों तरफ स्त्रियां बैठी हैं। उनके साथ हास्य-विनोद होरहा है। इतनेहीमें उसकी भूखसे पीड़ित स्त्रीने लकड़ीसे व पैरोंसे ताडकर उसको जगाया। यकायक उठा। उठकर विचारने लगा कि वह राज्यलक्ष्मी कहां चली गई! देखते देखते क्षण मात्रमें नाश होगई!

हे मामा! इसी तरह स्त्री आदिका संयोग सब स्वप्नके समान क्षणमात्रमें छूटनेवाला है व इनका संयोग प्राणीके प्राणोंका अपहरण करनेवाला है। ऐसा समझकर कौन बुद्धिमान दुःखोंके स्थानमें अपनेको पटकेगा।

भूमि निरख कर वनकी ओर चल पड़े। ईर्यापथ शुद्धिसे चल करके धीरे २ जंबू मुनि वनमें श्री सौधर्माचार्यके निकट आये। महान् तेजस्वी जम्बू मुनिको एक निर्वाण लाभकी ही भावना थी, इसीलिये तपकी सिद्धि करना चाहते थे।

कुछ सालके पीछे सौधर्म आचार्यको स्वाभाविक केवलज्ञानका लाभ होगया। अनंत स्वभावधारी सर्वज्ञ केवलीके चरणोंमें रहकर जंबूस्वामी महामुनिने कठिन कठिन तपका साधन किया।

जम्बूस्वामीका तप।

स्वामी बारह प्रकारका तप करने लगे। आत्माकी विशुद्धिके लिये एक दो आदि दिनोंकी संख्यासे उपवास करते थे। शांतभाव धारी एक ग्रास दो ग्रास आदि लेकर भी महान् अवमोदर्य तप करते थे। लोभ रहित स्वामी यथा अवसर भिक्षाको जाते हुए घरोंकी संख्या कर लेते थे। इसतरह वृत्तिसंख्यान तीसरा तप साधन करते थे।

इन्द्रियोंको जीतनेके लिये व काम विकारकी शांतिके लिये रस त्याग नामके चौथे तपको करते थे। आत्मवशी जंबू मुनिराज वन पर्वत आदि शून्य स्थानोंमें बैठकर विविक्त शय्यासन नामका पांचमा तप किया करते थे। महान् उपसर्गोंको जीतनेके लिये शस्त्रके समान कायक्लेश नामके छठे तपको करते थे। श्री जंबूस्वामी परम धैर्यके एक महान् पद थे, महान् वीर्यधारी थे, छः प्रकारके बाहरी तपको सहजमें ही साधन करते थे।

इसीतरह स्वामीने छः प्रकारका अंतरङ्ग तप साधन किया।

मन वचन काय सम्बन्धी कोई दोषकी शुद्धिके लिये प्रथम प्रायश्चित्त: तपको स्वीकार किया। निश्चयरत्नत्रयरूपी शुद्धात्मीक धर्ममें तथा अरहंत आदि पांच परमेष्ठियोंमें विनय तपको करते थे। मुनिराजोंको नमस्कार व उनकी सेवाको नहीं उलंघन करते हुए तीसरा सुखदाई वैय्यावृत्य तप पालन किया करते थे। शुद्धात्माके अनुभवका अभ्यास करते हुए निश्चय स्वाध्यायरूपी चौथे परम तपका साधन करते थे। शरीरादि परिग्रहमें ममत्व भावको विलकुल दूर करके स्वामीने पांचमा व्युत्सर्ग तप साधन किया। सबसे श्रेष्ठ तप ध्यान है। सर्व चितासे रहित होकर चैतन्य भावका ही आलम्बन करके स्वामीने छठा ध्यान तपका आराधन किया। ये छः अंतरङ्ग शुद्ध तप मोक्षके कारण हैं। वैराग्यभावधारी स्वामीने दोष रहित इन सबोंको पाला। यथाजात स्वरूपके धारी मन, वचन, कायको निरोध करके तीन गुप्तियोंको पालते थे। स्वामीने कषायरूपी शत्रुओंकी सेनाको जीतनेके लिये कमर कस ली। शांतभावरूपी शस्त्रको लेकर उन कषायोंका सामना करने लगे। कामदेवकी स्त्री रतिको तो स्वामीने पहिले ही दूरसे ही भस्म कर दिया था। अब कामदेव-रूपी योद्धाको लीला मात्रमें जीत लिया। द्रव्य व भाव श्रुतके भेदसे नाना प्रकार अर्थसे भरी हुई द्वादशांग वाणीके बुद्धिमान जम्बु मुनि पार पहुंच गए थे।

सौधर्माचार्यका निर्वाण।

इस तरह जब जंबुस्वामीको अनेक प्रकार तप करते हुए

अठारह वर्ष एक क्षणके समान बीत गए थे, तब माघ सुदी सप्तमीके दिन सौधर्मस्वामी विपुलाचल पर्वतसे निर्वाण प्राप्त हुए। तब सौधर्मस्वामीका आत्मा अनंत सुखके समुद्रमें मग्न होगया। वे अनंत बल, अनंत दर्शन, अनंत ज्ञानके धारी निरंतर शोभने लगे। अपने कल्याणके लिये मैं उनको नमस्कार करता हूं।

जम्बूस्वामीको केवलज्ञान।

उसी दिन जब आधा पहर दिन बाकी था तब श्री जंबूस्वामी मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न होगया। पहले उन्होंने मोह–शत्रुका क्षय किया। फिर ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अंतराय कर्मका क्षय कर लिया। वे अनन्त चतुष्टयके धारी अरहंत होगए। पद्मासनसे विराजित थे, तब ही केवलज्ञान लाभकी पूजा करनेके लिये देवगण अपने परिवार सहित व अपनी विभूति सहित बड़े उत्साहसे आगये। इन्द्रादिदेवोंने स्वामीको तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया जय जय शब्दोंका उच्चारण किया, तथा बड़े हर्षसे प्रभुकी भक्तिपूर्वक अष्टद्रव्यसे पूजा की। इन्द्रोंने अनुपम गद्य पद्य गर्भित स्तुति पढ़ी। उस स्तुतिमें यह कहा–प्रचण्ड कामदेवके दर्परूपी सर्पको नाश करनेके लिये आप गरुड़ हैं, आपकी जय हो। केवलज्ञान सूर्यसे तीन लोकको प्रकाश करनेवाले प्रभुकी जय हो। इसप्रकार अंतिम केवली जिनवरकी अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करके अपनेको कृतार्थ मानते हुए देवादि सब अपने२ स्थानपर गये।

विपुलाचलसे जम्बूस्वामीका निर्वाण।

पश्चात् श्री जंबूस्वामी जिनेन्द्रने गंधकूटीमें स्थित हो उपदेश किया। स्वामीने मगधसे लेकर मथुरा तक व अन्य भी देशोंमें अठारह वर्ष पर्यन्त धर्मोपदेश देते हुए विहार किया। फिर केवली महाराज विपुलाचल पर्वतपर पधारे। आठों कर्मोंसे रहित होकर निर्वाणको प्राप्त हुए। नित्य अविनाशी सुखके भोक्ता होगये।

पश्चात् अर्हद्दास मुनीश्वर भी समाधिमरण करके छट्ठे देवलोक पधारे। श्रीमती जिनमती आर्यिकाने स्त्रीलिंग छेद दिया और उत्तम समाधिमरण करके ब्रह्मोत्तर नामके छठे स्वर्गमें इन्द्रपद पाया। चारों वधूएं आर्यिका पदमें चंपापुरके श्री वासुपूज्य चैत्यालयमें थीं। वहां प्राण त्यागकर महर्द्धिक देवी हुईं।

विद्युच्चर मुनि मथुरामें।

विद्युच्चर नामके महामुनि तप करते हुए ग्यारह अंगके पाठी होगए। विहार करते हुए पांचसौ मुनियोंके साथ एक दफे मथुराके महान वनमें पधारे। वनमें ध्यानके लिये बैठे कि सूर्य अस्त होगया। मानो सूर्य मुनियोंपर होनेवाले घोर उपसर्गको देखनेको असमर्थ होगया। उसी समय चंद्रमारी नामकी वनदेवीने मुनियोंसे निवेदन किया कि यहां आजसे पांच दिन तक आपको नहीं ठहरना चाहिये। यहां भूत प्रेतादि आकर आपको बाधा करेंगे, आप सहन नहीं कर सकेंगे। इसलिये आप सब इस स्थानको छोड़कर अन्य स्थानमें विहार कर जाओ। ज्ञानियोंको उचित है कि संयम व

एक त्रस इसतरह छः प्रकार प्राणियोंके प्राणोंकी हिंसा करना। छः ये हैं—

स्वानुभूतिको धर्म कहते हैं। जिससे स्वानुभूतिमें असावधानी होजावे उसको प्रमाद कहते हैं। धर्मः स्वात्मानुभूत्याख्या प्रमादो नवधानता। यह कर्मास्रवका द्वार पन्द्रह प्रकारका है। चार विकथा स्त्री, भोजन, देश व राजा। उनके साथ चार कषाय व पांच इन्द्रिय निद्रा व स्नेह। इनके गुणा करनेसे प्रमादके अस्सी भेद होते हैं। मन, वचन, कायकी वर्गणाओंके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका परिस्पंद होना—हिलना, सो योग तीन प्रकारका है। इनके भेद पन्द्रह हैं—सत्य, असत्य, उभय, अनुभय, मनयोग तथा सत्यादि वचन योग व सात प्रकार काय योग, औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्मण। सब मिलके आस्रव भाव सत्तावन हैं। ५ मिथ्यात्व + १२ अविरत + २५ कषाय + १५ योग = ५७ इनका विशेष स्वरूप गोम्मटसारादि ग्रंथोंसे जानना योग्य है। कर्म स्वरूपसे एक प्रकार है। द्रव्य कर्म व भावकर्मके भेदसे दो प्रकार है। द्रव्यकर्म आठ प्रकार व एकसौ अड़तालीस प्रकार है या असंख्यात लोक प्रकार है। शक्तिकी अपेक्षा उनके भेद उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य। यह सब कथन परमागमसे जानना योग्य है।

संवर भावना।

निश्चयसे सर्व ही आस्रव त्यागने योग्य हैं। आस्रव रहित एक अपना आत्मा शुद्धात्मानुभूति रूपसे ग्रहण करने योग्य है।

आचार्योंने आस्रवके निरोधको संवर कहा है। उसके दो भेद हैं--द्रव्यास्रव और भावास्रव। जितने अंशमें सम्यग्दृष्टियोंके कषायोंका निग्रह है उतने अंशमें भाव संवर जानना योग्य है। कहा है--

येनांशेन कषायाणां निग्रहः स्यात्सुदृष्टिनाम्।
तेनांशेन प्रयुज्येत संवरो भावसंज्ञकः ॥ १२३ ॥

भावार्थ--भाव संवरके विशेष भेद पांच व्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, दश धर्म, बारह भावना, बाईस परीषह जय व पांच प्रकार चारित्र है।

रागादि भावोंके न होनेपर जितने अंश कर्मोंका आस्रव नहीं होता है उतने अंश द्रव्यसंवर कहा जाता है। मोक्षका साधन संवरसे होता है। अतएव इसका सेवन सदा करना चाहिये। निश्चयसे भाव संवरका अविनाभावी शुद्ध चैतन्य भावका अनुभव है सो सदा कर्तव्य है।

निर्जरा भावना।

निर्जरा भी दो प्रकारकी है--भाव निर्जरा और द्रव्य निर्जरा। द्रव्य निर्जरा सम्यग्दृष्टीसे लेकर जिन पर्यंत ग्यारह स्थानोंके द्वारा असंख्यात गुणी भी कही गई है। जिस आत्माके शुद्ध भावसे पूर्वबद्ध कर्म शीघ्र अपने रसको सुखाकर झड़ जाते हैं उस शुद्ध भावको भाव निर्जरा कहते हैं। आत्माके शुद्ध भावके द्वारा तपके अतिशयसे भी जो पूर्वबद्ध द्रव्यकर्मोंका पतन होना सो द्रव्य निर्जरा है।

जो कर्म अपनी स्थितिके पाक समयमें रस देकर झडते हैं वह सविपाक निर्जरा है। यह सर्व जीवोंमें हुआ करती है। यह

सविपाक निर्जरा मिथ्यादृष्टियोंके बंधपूर्वक होती है। क्योंकि तब मोहका उदय होता है। इसलिये यह निर्जरा मोक्षसाधक नहीं है। सम्यग्दृष्टियोंके सविपाक या अविपाक निर्जरा संवर पूर्वक होती है। यह मोक्षकी साधक है। ऐसी निर्जरा मिथ्यादृष्टियोंके कभी नहीं होती है। कहा है—

इयं मिथ्यादृशामेव यदा स्याद्बंधपूर्विका।
मुक्तये न तदा ज्ञेया मोहोदयपुरःसरा॥ १२० ॥
सविपाका विपाका वा सा स्यात्संवरपूर्विका।
निर्जरा सुदृशामेव नापि मिथ्यादृशां क्वचित्॥१२१॥

मोक्षकी सिद्धि चाहनेवालोंको उचित है कि निर्जराका लक्षण जानकर उस निर्जराके लिये सर्व प्रकार उद्यम करके शुद्धात्माका आराधन करें।

लोक भावना।

इस छः द्रव्योंसे भरे लोकके तीन भाग हैं—नीचे वेत्रासन या मोढेके आकार है। मध्यमें झालरके समान है, ऊपर मृदंगके समान है, अधोलोकमें सात नरक हैं जिनमें नारकी जीव पापके उदयसे छेदनादिके घोर दुःख सहन करते हैं। कोई जीव पुण्यके उदयसे ऊर्द्धलोकमें स्वर्गोंमें पैदा होकर सागरोंतक सुख सम्पदाको भोगते हैं। मध्यलोकमें तिर्यंच व मनुष्य होकर पुण्य व पापके उदयसे कभी सुख कभी दुःख दोनों भोगते हैं। लोकके अग्रभागके ऊपर मनुष्य लोकके ढाईद्वीप प्रमाण पैतालीस लाख योजन चौड़ा सिद्धक्षेत्र

है, जहां अनन्त सुखको भोगते हुए सिद्ध परमात्मा बसते हैं। इस तरह तीन लोकका स्वरूप जानकर महाऋषिगण मोहको क्षयकर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई मार्गके द्वारा लोकके ऊपर जो सिद्धालय है उसमें जानेका साधन करते हैं।

बोधिदुर्लभ भावना।

एकाग्रमन होकर आत्माका अनुभव करना सो बोधि है, इस बोधिका लाभ जीवोंको बहुत दुर्लभ है यह विचारना बोधि दुर्लभ भावना है। अनादि नित्य निगोदरूप साधारण वनस्पतियोंमें अनंतानंत जीवोंका नित्य स्थान है। अनन्तकाल रहनेपरभी कोई जब कभी वहांसे निकलते हैं। और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पतिके किसी तरह जन्म प्राप्त करते हैं। नित्यनिगोदके सम्बन्धमें कहा है—

अनंतानंतजीवानां सद्मानादिवनस्पतौ।
निःसरंति ततः केचिद्गतेऽनंतेऽप्यनेहसि ॥ १४० ॥

भावार्थ—अशुभ कर्मोंके कम होनेपर व अज्ञान अंधकारके कुछ मिटनेपर एकेन्द्रियसे निकलकर द्वेन्द्रियादि तिर्यंच होते हैं उनमें पर्याप्तपना पाना बहुत कठिन है। प्रायः अपर्याप्त जीव बहुत होते हैं जो एक श्वास (नाड़ी) के अठारहवें भाग आयुको पाकर मरते हैं। इनमें भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच होना बहुत कठिन है। असैनी पंचेन्द्रियसे सैनी पंचेंद्रिय फिर मनुष्य होना बहुत दुर्लभ है। कदाचित् कोई मनुष्य भी हुआ तब आर्यखण्डमें जन्मना कठिन है। आर्यखण्डमें